पुरातत्त्व-निबन्धावली

लेखक
राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

चित्र-सूची

पुरातत्त्व-निबन्धावली

भूमिका

(१)

पुरातत्त्व

१—पुरातत्त्वका महत्त्व

हिन्दीमे पुरातत्त्व-साहित्यकी बडी आवश्यकता है। भारतके सच्चे इतिहासके निर्माणमे "पुरातत्त्व" की सामग्री अत्यन्त उपयोगी है, और, खुदाई आदिके द्वारा अभीतक जो कुछ किया गया है, वह दालमे नमकके बराबर है। और जब हम यूरोपके सभ्य देशोके कार्यसे तुलना करते हैं, तब उसे बहुत अल्प पाते है। काशीकी नागरी-प्रचारिणी-सभाने हिन्दीकी खोजकी रिपोर्टें तथा 'प्राचीन मुद्रा' छापकर; और, उसकी पत्रिकाके योग्य सम्पादक श्रद्धेय ओझाजीने भी हिन्दीमे इस ओर बहुत कार्य किया है। ओझाजी हिन्दीमे इस विषयके युगप्रवर्तक होनेसे चिरस्मरणीय रहेगे।

इतिहासकी सबसे ठोस सामग्री ही पुरातत्त्व-सामग्री है; और, उस सामग्रीसे भारतकी कोई जगह शून्य नही है। गाँवोके पुराने डीहोपर फेके मिट्टीके वर्तनोके चित्र-विचित्र टुकडे भी हमे इतिहासकी कभी-कभी बहुत ही महत्त्वपूर्ण बाते बतलाते है; लेकिन उन्हे समझने के लिये हमारे पास वैसे श्रोत्र और नेत्र होने चाहिये।

२—सर्वसाधारणके जानने योग्य कुछ बातें

वैसे तो बहुतसी बाते है, जिन्हे एक पुरातत्त्व-प्रेमी और पुरातत्त्व-गवेषकको जानना चाहिये; किन्तु यहाँ कुछ ऐसी बाते गिना दी जाती है, जिनको साधारण पाठक भी यदि ध्यानमे रखे, और अपने आसपासकी सामग्रियोके रक्षण और परीक्षणका ख्याल करे, तो बहुत फायदा हो सकता है—

(१) शिला, ताम्रखण्ड और भग्न मूर्तियो तथा दूसरी चीजोपरके लेखोको जहाँ कही भी देखे, उन्हे प्राचीन लिपियोसे यदि मिलावे, तो उससे कालका ज्ञान हो सकता है। यह ख्याल रखे कि, पुरातत्त्वविद् न सर्वज्ञ है और न वह भारतमे सब जगह पहुँच ही सके है, इसलिये आपके गाँवके डीह या महादेव-स्थानपर ढेर की हुई खण्डित मूर्तियोके टुकडोमे भी कभी कोई हीरा निकल आ सकता है।

(२) अपने आसपासकी पहाडियोके पत्थरोसे भिन्न यदि किसी दूसरे रगके पत्थरकी मूर्ति मिले, तो वह कभी-कभी और भी महत्त्वपूर्ण सूचना देनेवाली हो सकती है। मूर्तियोमे अक्सर आसन (पीठिका)के नीचे या प्रभामण्डल (सिरके चारो ओरके घेरे) या पीठपर लेख खुदे होते है।

(३) ईटोकी लम्बाईपर अलग लेख है। जितनी ही असाधारण लम्बाई-की ईटे मिले, उतनी ही उन्हे उस स्थानकी प्राचीनताको बतलानेवाली समझना चाहिये। भर सक अखण्ड ईट खोज निकालने और उसका नाप लेनेकी कोशिश करनी चाहिये। बहुत छोटी ईटे (लाहोरी या लाखोरी) मुसल्मानी कालकी होती है। विचित्र आकार-प्रकारके खपडे, कुएँ बाँधनेकी चन्द्राकार पटियाँ आदि भी कभी-कभी बहुत उपयोगिनी होती है।

(४) मकानकी नीव, कुआँ या तालाब खोदनेमें यदि कोई चीज़ मिले, तो उसकी गहराईको नापकर चीजके साथ नोट कर लीजिये। यह गहराई काल प्रमाणकी एक बहुत ही उपयोगिनी कडी है। इसी तरह जो चीज जिस गाँवके जिस स्थानपर मिले, उसे भी नोट कर लेना चाहिये। स्मरण रहे,

"स्थानहीना न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः"की उक्ति इसपर भी घटती है।

(५) कही-कही गाँवोमे पीपलके नीचे या किसी टूटे-फूटे देवस्थानमें पत्थरके लम्बे चिकने टुकडे मिलते है। उनमे कभी-कभी दस-बारह हजार वर्ष पूर्वके, हमारे पूर्वजोके, हथियार भी सम्मिलित रहते है। यदि वह सगखारे या चकमक जैसे कडे पत्थरके तथा नोकीले और तेज धार वाले हो, तो निश्चय ही समझिये कि, वे वही अस्त्र है, जिनसे हमारे पूर्वज शिकार आदि किया करते थे।

(६) कुएँ आदि खोदनेमे धरतीके बहुत नीचे कभी-कभी मनुष्यकी खोपडियाँ या हड्डियाँ मिल जाती है। हो सकता है कि वह कई हजार वर्षोकी पुरानी, किसी लुप्त जातिके मनुष्यकी, हो। इसलिये उसकी छान-बीन करनी चाहिये और यदि आकृति असाधारण तथा हड्डियाँ बहुत पुरानी या पथराई जैसी मालूम होती हो, तो उनकी रक्षा करनी चाहिये या किसी विशेषज्ञसे दिखाना चाहिये। बहुत नीचे मिले मिट्टीके बर्तनोके बारेमें भी यही समझना चाहिये। ताँबे या पीतलकी तलवार या छुरा, यदि कही मिल जाय, तो उसे धातुके भाव बेच न डालना चाहिये। हो सकता है, वह ५–६ हजार वर्षोकी पुरानी चीज हो, और, कोई सग्रहालय उसे धातुसे कई गुने दामपर खरीद ले।

(७) **पुराणस्थान**—(क) मिट्टीसे भठे तथा दब गये भीटोवाले जहाँ तालाब हो, (ख) जहाँ आसपास पुराने देवस्थानो या पीपलके वृक्षोके नीचे टूटी-फूटी मूर्तियाँ अधिक मिलती हो, (ग) जहाँ खेत जोतने या मिट्टी खोदते वक्त पुराने कुएँ या ईटोकी दीवारे आदि निकल आती हो, (घ) जहाँ बरसातमे मिट्टीके घुल जाने पर ताबे आदिके पैसे तथा दूसरी चीजे मिलती हों (चौकोर और मूर्तिवाले सिक्के अधिक पुराने होते है; और, पानेवालेको, उनका, कई गुना अधिक दाम मिल सकता है); ऐसे स्थान पुरातत्त्वके लिये अधिक उपयोगी होते हैं। गढ या ऊँची जगहसे भी प्राचीनता मालूम होती है; किन्तु हजार वर्ष पूर्वसे जहाँ

बस्ती फिर नही बसी, वहाँकी जमीन बहुत ऊँची नही हो पाती।

(८) गाँवमे, साधारण लोगोंमे, यह भ्रम फैला हुआ है कि, सरकार जहाँ-कही खुदाई करती है, वह किसी खजानेके लिये। उन्हे समझना चाहिये कि, पुरातत्त्वकी खुदाईमे सरकारने जितना खर्च किया है, यदि खुदाईमें निकले हुए सोने-चाँदीके दामसे मुकाबिला किया जाय, तो उसका शतांश भी न होगा। फिर भी सोने-चाँदी या कीमती पत्थरकी जो कोई चीज़ मिलती है, उसे न गलाया जाता है, न बेचा जाता है। वह तो भिन्न भिन्न संग्रहालयोमें, इतिहासके विद्वानो और प्रेमियोके देखने और जानने के लिये, रख दी जाती है। यदि गाँवमे इस तरहके सिक्के आदि किसीको मिले, तो उसे वह गला कर या तोड-फोड करके खराब न कर दे। सम्भव है कि, उससे उसकी अपनी जातिका कोई सुन्दर इतिहास मालूम किया जा सके। बहुतसे भूले वंशोके परिचय और गौरव स्थापन करनेमे इन चीज़ो ने बहुत सहायता की है। सम्भव है, ऐसी चीजको गलाने या तोडनेवाला अपने पूर्व पुरुषोकी कीर्ति और इतिहासको अपनी इस क्रिया द्वारा गला और तोड रहा हो!

३—पुरातत्त्व और पाश्चात्य विद्वान्

पुरातत्त्वके विषयमे पाश्चात्य विद्वान् कितने उत्सुक है, इसका एक उदाहरण लीजिये। कोई बीस महीने हुए, काश्मीर-राज्यके गिलगित स्थानमे, १२–१३ सौ वर्ष पुराने अक्षरोमें, भोजपत्रपर लिखे, बहुतसे संस्कृत-ग्रन्थोका एक ढेर मिल गया। भारतके कितने ही विद्वान् तो उसके महत्त्वको उतना नही समझे, किन्तु उसके बारेमे सचित्र सुन्दर विवरण फ्रांसके आचार्य सिल्वेन् लेवीने प्रकाशित कराया है। उनके पास कुछ पन्ने पहुँच गये थे, जिनके पाठको, उन्होने, उसमें, छापा भी है। वह और उनके सहकारी डा० फुशे आदि उन हस्तलिखित ग्रन्थोके बारेमे इतने उत्सुक हुए कि, उन्होने कई बार काश्मीर-राज्यके अधिकारियोके पास पत्र

भी भेजे। वे व्यग्र रहे कि, कही असावधानीसे वह सामग्री नष्ट या लुप्त न हो जाय! जब मै १९३२ ई० के नवम्बरमे पेरिसमे था, तब उन्हे काश्मीरसे पत्र मिला था, जिसमे लिखा था कि, हस्तलेखोका निरूपण (*decipher*) किया जा रहा है! कहाँ वह आशा रखते थे कि, इन अठारह महीनोमे उन पुस्तकोके नाम आदिके विषयमे कोई विस्तृत विवरण मिलेगा और कहाँ पत्र जा रहा है कि, गुप्त-लिपिमे लिखे ग्रन्थोका निरूपण किया जा रहा है! यदि ग्रन्थोका प्रकाशन या विवरण तैयार न करके अठारह महीने सिर्फ निरूपणमे ही लग जाते है, तो कब उन्हे विद्वानो के सामने आने का मौका मिलेगा! आचार्य लेवीने कहा था कि, पूरे अठारह महीने हो गये, ऐसा अद्भुत ग्रन्थ-समुदाय भारतमे मिला है, जिसे लोग केवल चीनी और तिब्बती अनुवादोसे ही जान सकते थे; परन्तु उसके बारेमे भारतमें इस तरहका आलस्य है, यह भारतके लिये लज्जाकी बात है!

भारतीय पुरातत्त्वके साहित्यके बारेमे यदि आप पूरी जानकारी प्राप्त करना चाहते है, तो उसे आप हालैंड-निवासी डा० फोगल और उनके सहयोगियोके परिश्रमसे निकलनेवाली वार्षिक पुस्तक "*The Annual Bibliography of Indian Archaeology*" से जान सकते हैं।

४—पुरातत्त्वोत्खननके लिये एक सेवक-दलकी आवश्यकता

पुरातत्व-सम्बन्धी खोज और खननका सारा भार हम सरकारपर ही नही छोड सकते। सभी सभ्य देशोमे गैर सरकारी लोगोने इस विषयमे बहुत काम किया है। अर्थ-कृच्छ्रताके कारण गवर्नमेटने पुरातत्त्वविभागके खर्चको बहुतही कम कर दिया है। भारत सरकारके शिक्षा-सदस्यके भाषणसे यह भी मालूम हुआ है कि, सरकार विदेशी विश्वविद्यालयो तथा दूसरी विश्वसनीय सस्थाओको भारतमे पुरातत्त्वसम्बन्धी उत्खननके लिये अनुमति दे देगी। ऐसा करनेसे निश्चय ही भारतके इतिहासकी बहुतसी बहुमूल्य सामग्रीको—जो आगे खुदाईमे निकलेगी—वह सस्थाएँ

भारतसे बाहर ले जायँगी। यद्यपि संस्थाओंके प्रामाणिक होनेपर, सामग्रियोंका भारतसे बाहर जाना—जहाँतक विज्ञानका सम्बन्ध है—हानिकर नहीं है; किन्तु यह भारतीयोंके लिये शोभा नहीं देता। साथ ही यह भी तो उचित नहीं कि हम चीजोंके बाहर चले जानेके डरसे न दूसरोंको खोदने दें और न आपही इस विषयमें कुछ करें। अस्तु। धनियों-को चाहिये कि, पर्याप्त धन देकर किसी विश्वविद्यालय संग्रहालय द्वारा खुदाई करावें। हिन्दी-भाषा-भाषी राजाओं, जमींदारों और धनाढ्योंके विषयमें यह आम तौरसे शिकायत है कि, वह विज्ञान, कला तथा दूसरे संस्कृति-सम्बन्धी कामोंसे उपेक्षा करते हैं। सचमुच यदि वह यह भी नहीं कर सकते, तो उनका अस्तित्व बिलकुल निरर्थक है। वस्तुतः इस श्रेणीका भविष्य बहुत कुछ इस प्रकारके कामों द्वारा जनताकी सहानुभूति प्राप्त करने ही पर निर्भर है।

हमारा देश गरीब है। बहुतसे आदमी होंगे, जो पुरातत्त्वके सम्बन्धमें कुछ कार्य करना चाहते हैं, किन्तु उनके पास धन नहीं, जिससे वह सहायता करें। ऐसे समझदार पुरातत्त्व-प्रेमी भी एक प्रकारसे उत्खननमें सहायता कर सकते हैं। आवश्यकता है, प्रत्येक प्रान्तमें ऐसे उत्साही लोगोंका एक पुरातत्त्व-सेवा-दल कायम करनेकी। दलमें कालेजोंके छात्र और प्रोफेसर तथा इस विषयमें उत्साह रखनेवाले दूसरे शिक्षित सज्जन सम्मिलित हों। सेवादलके सदस्य सालमें कुछ सप्ताह या मास जानकार नेताओंके नेतृत्वमें अपने हाथों खननका काम करें। निकली चीजोंको प्रान्तके संग्रहालय या अन्य किसी सार्वजनिक सुरक्षित स्थानमें रखा जाय। कैम्पका जीवन बिताते हुए अपने पाससे खर्च कर काम करनेवाले लोग आसानीसे मिल सकेंगे। वस्तुओंकी सुरक्षा और नेताके अभिज्ञ होनेका विश्वास हो जाय, तो सरकार भी इस काममें बाधक नहीं होगी और जहाँतक होगा, उसमें वह सहूलियत पैदा करेगी।

———

(२)

काल-निर्णयमें ईंटें और गहराई

इतिहासका विषय भूत-काल है, इसलिये उसे हम प्रत्यक्ष नही देख सकते। किन्तु जिस प्रकार वर्तमान वस्तुओके लिये प्रत्यक्ष बहुत ही जबर्दस्त प्रमाण है, उसी प्रकार भूत वस्तुओके लिये जबर्दस्त प्रमाण उस समयकी वस्तुएँ है। वस्तुएँ प्रत्यक्षदर्शी और सत्यवादी साक्षी है, यदि उनका उस कालमे सच्चा सम्बन्ध मालूम हो जाय। पोथी-पत्रोंमें तो मनुष्य भूल कर सकता या स्वार्थवश हर नई लिखाईमे घटा-बढ़ा सकता है; किन्तु रमपुरवा (चम्पारन) के स्तम्भ-लेखमे एक भी अक्षरका, अशोकके बाद, मिलाया जाना क्या आसान है? सारनाथमें ई० पू० प्रथम या द्वितीय शताब्दीमे, जिस बौद्ध-सम्प्रदायकी प्रधानता थी, वहाँ उस समयकी लिपिमे उसके नामके साथ एक लेख खुदा हुआ था। उसके चार–पाँच सौवर्ष बाद (ईस्वी तीसरी या चौथी शताब्दी मे) दूसरा सम्प्रदाय अधिकारारूढ़ हुआ। इसने उसी लेखमे, नामवाला भाग छिलवाकर, अपना नाम जुड़वा दिया। ऐसे भी भिन्न-भिन्न हाथोके अक्षर एक दूसरे से पृथक् होते है; और, यहाँ तो पाँच शताब्दियो बाद अक्षरोंमें भारी परिवर्तन हो गया था। इसलिये यह जाल साफ मालूम हो जाता है; और, वह "आचार्याणा सर्वास्तिवादिन परिग्रहे" वाला छोटा लेख बतला देता है कि, सारनाथका धर्म-चक्र-प्रवर्तन-विहार ई० पू० प्रथम शताब्दीसे पूर्व, किसी दूसरे सम्प्रदाय के हाथमे था; और, ईस्वी तीसरी या चौथी शताब्दीमे सर्वास्तिवादके हाथमें चला गया। इस तरह इस प्रमाणकी मजबूतीको आप अच्छी तरह समझ सकते है। सातवी शताब्दीके चीनी

भिक्षु युन्-च्वेङ अपने समयमे वहाँ साम्मितीय निकायकी प्रधानता पाते है। युन्-च्वेङका ग्रन्थ १२ शताब्दियोंतक भारतसे दूर पड़ा रहा; इस-लिये जान-बूझकर, मिलावट कम होनेसे, अपने समयके लिये उसकी प्रामा-णिकता बहुत ही बढ़ जाती है। किन्तु मान लीजिये युन्-च्वेङ अपने ग्रन्थ में लिख दे कि, सारनाथका धर्म-चक्र-प्रवर्तन-विहार अशोकके समयसे आजतक साम्मितीयोके हाथमे है, तो उक्त लेखके सामने इस बातकी प्रामा-णिकता कुछ भी नही रह सकती। इस तरह समसामयिक सामग्री पीछे रचित और लिखित ग्रन्थोमे बहुत ही अधिक प्रामाणिक है। हाँ, जैसा कि, मैंने ऊपर कहा है, वहाँ हमें उनकी समसामयिकताको सिद्ध करना होगा। समसामयिकता सिद्ध करनेके लिये निम्न बाते सबसे अधिक प्रामाणिक है—(१) स्वय लेखमे दिया सवत् और नाम, (२) लिपिका आकार, (३) गहराई, (४) प्राप्त वस्तुके आसपास मिली ईटे और अन्य वस्तुएँ।

पहली बात तो सर्वमान्य है ही; लेकिन ऐसा सवत्-काल लिखनेका रवाज गुप्तोके ही समयमे मिलता है। आन्ध्रो, कुषाणो, मौर्योंके लेखोमें तो राजाके अभिषेकका सवत् दिया रहता है; उनका काल-निर्णय कठिन है। बहुतसे लेखोमें तो काल भी नही रहता। ऐसी अवस्थामें, अक्षरोको देखकर, उनसे काल-निश्चय किया जाता है। यद्यपि इसमें दो-एक शताब्दियोके अन्तर होनेकी सम्भावना है; किन्तु जो सामग्री सबसे प्रचुर परिमाणमे मिलती है और मनुष्य-जीवनके सभी अङ्गोपर प्रकाश डालती है, वह अक्षराङ्कित भी नही होती। इसी सामग्रीकी समसामयिकताको सिद्ध करनेके लिये तीसरे और चौथे प्रमाणोकी आवश्यकता होती है।

ऐतिहासिक सामग्रियोमे प्रत्यक्षदर्शी लेख का, अपनी जबान खोलकर सन्-सवत्के साथ घटनाओका वर्णन करना, ऐतिहासिक प्रत्यक्ष है। किन्तु जब वह अङ्क या आकारसे अपने काल मात्रको बतलाता है, तब भी वह अपने साथके बर्तन, दीवार, जेवर, मूर्ति आदिके बारेमे इतनी गवाही दे ही जाता है कि, इतने समयतक हम सब साथ रहे है। उस समयकी सभ्यता आदि

सम्बन्धी बातें तो अब आपको उनकी मूक भाषासे मालूम करनी होंगी। हाँ, यहाँ यह भी हो सकता है कि, भिन्न कालमे बनी वस्तुएँ और लेख पीछे वहाँ इकट्ठे कर दिये गये हों; किन्तु वह तो तभी हो सकता है, जब कि संग्रहालय (म्युज़ियम) की तरह यहाँ भी इकट्ठा करने का कोई मतलब हो। लेखोके साथ कुछ और चीज़े भी सभी जगह मिला करती हैं; और, यह भी देखा गया है कि, कालके अनुसार इनके आकार-प्रकारमें भेद होता रहता है। इसीलिये इन्हे भी काल-निर्णयमे प्रमाण माना जाता है।

दीहातमे भी लोग कहा करते है कि, "धरती माता प्रतिवर्ष जौ-भर मोटी होती जाती है!" यह बात सत्य है, लेकिन इतने सशोधनके साथ—'सभी जगह नही, और मोटाईका ऐसा नियत मान भी नही।' भारत में मोहन्‌जो दडो वह स्थान है, जहाँ आजसे चार-पाँच हजार वर्षकी पुरानी वस्तुएँ मिली है। लेकिन वहाँ आप, इन सब चीज़ो को, वर्तमान तलसे भी ऊपर, टीलोपर पाते है। हडप्पामे भी करीब-करीब वही बात है। हाँ, इस तरहके अपवादोके साथ पृथिवीके मोटे होने का नियम उत्तर भारतमें लागू है। पृथिवी कितनी मोटी होती जाती है, इसका कोई पक्का नाप-नियम नही है। इसके लिये कुछ जगहोकी खोदाईमे मिले भिन्न-भिन्न तलोकी सूची दी जाती है—

काल	गहराई (फीट)	स्थान
ई० पू० ८वी शताब्दी	२१, २०	[1]भीटा (इलाहाबाद)
,, चौथी-पाँचवी ,,	१७	,,

---

[1] **भीटाका पुराना नाम सहजाती था। वहाँकी खुदाईमें एक मुहर भी मिली है, जिसमें "शहजतिये निगमश" (सहजातीके वणिक्-संघका) लिखा है—दे० "बुद्धचर्या" पृष्ठ ५५९,५६१।**

काल	गहराई (फ़ीट)	स्थान
मौर्य-काल		
(ई० पू० तृतीय शतक)	१६	,,
,,	१५	पटना
,,	१३	रमपुरवा (चम्पारन)
,,	गुप्त+६, ९½	सारनाथ (बनारस)
कुषाण-काल		
(ई० पू० प्र० श०)	१३	भीटा (इलाहाबाद)
,, (ई० चतुर्थ-षष्ठ श०)	१०-६	कसया (गोरखपुर)
,,	१०	,,
कुषाण-काल	१०	बसाढ (मुजफ्फरपुर)
,,	९	भीटा (इलाहाबाद)
,,	८	,,
,,	७	पटना

गहराईकी भाँति ईंटे भी काल-निर्णयमे बहुत सहायक होती है, क्योंकि देखा जाता है कि, जितनी ही ईंटे बडी होती है, उतनी ही अधिक पुरानी होती है। यद्यपि यह नियम सामान्यत: सर्वत्र लागू है, तोभी कही कही इसके अपवाद मिलते है। गुप्त-कालकी भी ईंटे कभी-कभी मौर्य-कालकी सी मिली है, किन्तु उनमे वह ठोसपन नही है। (जैसे-जैसे जंगल कटते गये, वैसे ही वैसे लोग लकडीकी किफायत करने लगे; और, इसीलिये, ईधनकी कमीके लिये ईंटोकी मोटाई आदिको कम करने लगे।) मोहन्‌जो दड़ो और हड़प्पा सर्वथा ही इसके अपवाद है। वहाँकी ईंटे तो आज कलकी अँग्रेजी ईंटो जैसी लम्बी–किन्तु, कम मोटी है। नीचेकी सूचीसे भिन्न-भिन्न कालकी ईंटोका कुछ अनुमान हो सकेगा—

काल	आकार (इंच)	स्थान
ई० पू० चतुर्थ श०	$१६ \times १०\frac{१}{२} \times ३$	पिपरहवा (बस्ती)
,,	$१५ \times १० \times ३$	,,
मौर्य—काल		
(ई० पू० तृतीय श०)	$२० \times १४\frac{१}{२} \times ३\frac{१}{४}$	भीटी (बहराइच)
,,	$१९\frac{१}{२} \times १२\frac{१}{२} \times ३\frac{१}{२}$	सारनाथ (बनारस)
,,	$१९ \times १० \times ३$	कसया (गोरखपुर)
,,	$१८ \times १० \times २\frac{३}{४}$	,,
[१]कुषाणोंसे पूर्व	$१७\frac{१}{२} \times १०\frac{३}{४} \times २\frac{१}{४}$	भीटा (इलाहाबाद)
कुषाणोके पूर्व	$१४ \times १०\frac{१}{४} \times २\frac{१}{४}$	सहेटमहेट (गोंडा)
,,	$१४ \times १० \times २$	,,
,,	$१४ \times ९ \times २$	,,
कुषाण	$१५ \times १०\frac{१}{२} \times २\frac{३}{४}$	सारनाथ (बनारस)
गुप्त	$१४ \times ८ \times २\frac{१}{२}$	सहेटमहेट (गोंडा)
,,	$१२ \times ९ \times २$	,,
ईस्वी छठी-सातवी सदी	$१२\frac{१}{२} \times ८\frac{१}{२} \times २$	,,
ई० सातवी-आठवी सदी	$१२ \times ९ \times २$	,,
ई० दसवी-ग्यारहवी सदी	$१२ \times ९ \times २$	,,
,,	$९\frac{१}{२} \times ९\frac{१}{२} \times २$	,,
,,	$७ \times ५ \times २$	,,

---

[१] ई० पू० प्रथम और ईस्वी सन् प्रथम शताब्दियाँ।

(३)

बसाढ़की खुदाई

हाजीपुरसे १८ मील उत्तर, मुजफ्फरपुर जिलेमे, बसाढ़ (बनिया बसाढ) गाँव है; जिसके पासके गाँव बखरामे अशोक-स्तम्भ है। बसाढकी खुदाईमे ईस्वी सन्से पूर्वकी चीजे मिली है। खुदाईके सम्बन्धमे कुछ लिखनेके पूर्व स्थानके बारेमे कुछ लिख देना उचित होगा।

वैशाली प्राचीन वज्जी-गण-तत्रकी[1] राजधानी थी। वज्जीदेशकी शासक क्षत्रियजातिका नाम लिच्छवि था। जैन-ग्रन्थोसे मालूम होता है कि, इसकी ९ उपजातियाँ थी। इन्हीका एक भेद[2] ज्ञातृ जाति था, जिसमे पैदा होनेके कारण जैनधर्म-प्रवर्तक वर्धमान (महावीर)को नातपुत्र या ज्ञातृपुत्र भी कहते है। पाणिनिने भी "मद्रवृज्ज्यो· कन्" (अष्टाध्यायी ४।२।३१) सूत्रमे इसी, वज्जीको वृज्जी कहकर स्मरण किया है। बुद्धके समय यह वज्जी-गण-राज्य उत्तरी भारतकी पाँच प्रधान राजशक्तियो—अवन्ती, वत्स, कोसल, मगध, और वज्जी—मेसे एक था। इस गणराज्यका शासन कब स्थापित हुआ, यह निश्चय रूपसे नही कहा जा सकता। इनके

---

[1] वज्जीदेशमें आजकलके चम्पारन और मुजफ्फरपुरके ज़िले, दरभंगे-का अधिकांश तथा छपरा जिलेके मिर्ज़ापुर, परसा, सोनपुरके थाने एवम् कुछ और भाग सम्मिलित थे।

[2] रत्ती परगनेमें (जिसमें कि बसाढ़ गाँव है) जिन जथरियोंकी सबसे अधिक बस्ती है, वह यही पुराने ज्ञातृ है, जो भूत कालमें इस बलशाली गणतन्त्रके सञ्चालक, और जैन-तीर्थङ्कर महावीरके जन्मदाता थे। देखो ज्ञातृ=जथरिया (६) भी

न्याय, प्रबन्ध आदिके सम्बन्धमें पाली-ग्रन्थोमें जहाँ-तहाँ वर्णन है। बुद्धके निर्वाणके तीन वर्ष बाद, प्राय: ई० पू० ४८० में, वज्जी-गणतंत्रको मगध-राज अजातशत्रुने, विना लड़े-भिडे, जीता था। पीछे तो मगध-साम्राज्यके विस्तारमें लिच्छविजातिने बडा ही काम किया। लिच्छवियोके प्रभाव और प्रभुत्वको हम गुप्त-काल तक पाते है। गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त लिच्छवि-दौहित्र होनेका अभिमान करता है। कितने ही विद्वानोंका मत है कि, गुमनाम गुप्तवंशको साम्राज्य-शक्ति प्रदान करनेमें चन्द्रगुप्त-का लिच्छवि-राजकन्या कुमारदेवीके साथ विवाह होना भी एक प्रधान कारण था। इस विवाह-सम्बन्धके कारण चन्द्रगुप्तको वीर[1] लिच्छवि जातिका सैनिक बल हाथ लगा था। गुप्तवशका सबसे प्रतापी सम्राट् समुद्रगुप्त उसी लिच्छविकुमारी कुमारदेवीका पुत्र था। कौन कह सकता है, उसको अपनी दिग्विजयोमे अपने मामाके वशसे कितनी सहायता मिली होगी। गुप्तवशके बाद हम लिच्छवियोका नाम नही पाते। युन्-च्वेङ्के समय वैशाली उजाडसी थी। बेतियाका राजवश उक्त लिच्छविजातिके जथरिया-वशके अन्तर्गत है ; इसलिये सम्भव है, बेतिया-राजवशके इति-हाससे पीछेकी कुछ बातोंपर प्रकाश पडे।[2]

---

[1] आज भी जथरिया जाति लड़ने-भिड़नेमें मशहूर है।

[2] जिस प्रकार नन्द और मौर्य भारतके प्रथम ऐतिहासिक साम्राज्य-स्थापक थे, वैसे ही वज्जी ऐतिहासिक कालका एक महान् शक्तिशाली गणतन्त्र था। क्या यह अच्छा न होगा कि, मुजफ्फरपुरवाले उसकी स्मृतिमें प्रतिवर्ष एक लिच्छविगणतन्त्र-सप्ताह मनावें, जिसमें और बातोंके साथ योग्य विद्वानोके गणतन्त्र-सम्बन्धी व्याख्यान कराये जायें? लिच्छवि-गणतन्त्र भारतीयोंके जनसत्तात्मक मनोभावका एक ज्वलन्त उदाहरण है, जो पाश्चात्त्योंके इस कथनका खण्डन करता है कि, भारतीय हमेशा एका-धिपत्यके नीचे रहनेवाले रहे है। लिच्छवि-गणतन्त्रपर सारे भारतका अभिमान होना स्वाभाविक है। एक लिच्छवि-जथरियाके नाते, आशा है, मौलाना शफी दाऊदी भी इसमें सहयोग देंगे।

वैशाली नामके बारेमें पाली-ग्रन्थोंमें लिखा है कि, दीवारोको तीन बार हटाकर उसे विशाल करना पडा; इसीलिये नगरका वैशाली नाम पडा। फलत. वैशालीके ध्वसावशेषका दूरतक होना स्वाभाविक है। वैशाली नगर कहाँतक था और कहाँ नगरके बाहरवाले गाँव थे, इसका अभीतक निश्चय नही किया गया। अभीतक जो भी खुदाईका काम हुआ है, वह सिर्फ बसाढ़के गढ़में ही हुआ है। बसाढ़के आसपास कोसोतक पुरानी बस्तियोंके निशान मिलते हैं। बसाढ़ और बनिया गाँव न सिर्फ स्वयं पुरानी बस्तियोंपर बसे है, बल्कि उनके आसपास भी ऐसी बहुत भूमि है, जिसके नीचे भूत कालके सन्देशवाहक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वैसे तो बसाढ़के लोगोको मालूम ही था कि, उनका गाँव राजा विशाल-की राजधानी है; किन्तु सेंट मार्टिन और जनरल कनिघम प्रथम सज्जन थे, जिन्होने बसाढ़के ध्वंसावशेषोके लिये पुरानी वैशाली होनेका सकेत किया। तोभी बसाढमे सनियम खुदाईका काम सन् १९०३ ई० तक नही हुआ था। १९०३-४ ई० के जाडोमे डा० ब्लाश्के अधिनायकत्वमे वहाँकी खुदाई हुई। उसके बाद, १९१३-१४ ई० मे, फिर डाक्टर स्पूनरने खुदाईका काम किया। यह दोनो ही खुदाइयाँ राजा विशालके ही गढपर हुई। डाक्टर ब्लाश् (*Bloch*) अपनी खुदाईमे गुप्त-कालके आरम्भ (चौथी शताब्दीके आरम्भ) तक पहुँचे थे और डाक्टर स्पूनरका दावा मौर्य (ई० पू० तीसरी शताब्दी) तक पहुँचनेका था। यद्यपि जिस मुहरके बलपर उन्होने ई० पू० तीसरी शताब्दी निश्चय किया, उसे स्व० राखाल-दास वन्द्योपाध्याय जैसे पुरालिपिके विद्वान्ने ई० पू० प्रथम शताब्दीका बतलाया, और यह अक्षरोको देखनेसे ठीक जँचता है।

राजा विशालका गढ़ दक्षिणको छोडकर तीन तरफ जलाशयोसे घिरा है; और, वर्षा तथा शीतकालमे दक्षिणकी ओरसे—जिधर बसाढ गाँव है—ही गढपर जाया जा सकता है। डाक्टर ब्लाश्की नापसे गढ उत्तर ओर ७५७ फीट, दक्षिण ओर ७८० फीट, पूर्व ओर १६५५ एव पश्चिम ओर

१६५० फीट विस्तृत है। सारी खुदाईमें सिर्फ एक छोटीसी गणेशकी मूर्ति डा० ब्लाश्को मिली थी, जिससे सिद्ध होता है कि, गढ़ धार्मिक स्थानोंसे सम्बन्ध न रखता था। गुप्त, कुषाण तथा प्राक्-कुषाण मुहरोंको देखनेसे तो साफ मालूम होता है कि, यह राज्याधिकारियोंका ही केन्द्र रहा है। वैसे गढ़को छोडकर बसाढमे दूसरी जगह भी अकसर पुरानी मूर्तियाँ मिलती है। गढसे पश्चिम तरफ, बावन-पोखरके उत्तरी भीटेपर, एक छोटासा आधुनिक मन्दिर है, वहाँ आप मध्यकालीन खण्डित कितनी ही—बुद्ध, बोधि-सत्व, विष्णु, हर-गौरी, गणेश, सप्तमातृका एव जैनतीर्थङ्करोकी—मूर्तियाँ पावेगे।

गढ़की खुदाईमे जो सबसे अधिक और महत्वपूर्ण चीजे मिली, वह हैं महाराजाओ, महारानियो तथा दूसरे अधिकारियोकी स्वनामाङ्कित कई सौ मुहरे। डाक्टर ब्लाश् अपनी खुदाईमे ऊपरी तलसे १० या १२ फीटतक नीचे पहुँचे थे। उनका सबसे निचला तल वह था, जहाँसे आरम्भिक गुप्त-कालकी दीवारोकी नीव शुरू होती है। ऊपरी तलसे १० फीट नीचे "महा-राजाधिराज चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०–४१३)-पत्नी, महाराज श्रीगोविन्द-गुप्तमाता, महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी"की मुहर मिली थी। जिस घरमें वह मिली थी, वह देखनेमें चहबच्चाघरसा मालूम होता था; इसलिये उस समयका साधारण तल इससे कुछ फीट ऊपर ही रहा होगा। डा० स्पूनर और नीचेतक गये। वहाँ उन्हे ई० पू० प्रथम शताब्दीकी वेसालि-अनुसयानकवाली मुहर मिली। डा० ब्लाश्को सबसे बडी ईंट १६½ × १० × २ इच नापकी मिली थी। एक तरहके खपडे भी मिले, जो बिहारमें आजकल पाये जानेवाले खपडोसे भिन्न है। इस तरहके खपडे लखनऊ म्यूजियममे भी रखे है, जो युक्तप्रान्तमें कहीं मिले थे। इनकी लम्बाई-चौड़ाई (इच) निम्न प्रकार है.—

८ × २½	८¼ × २
५½ × २½	८¼ × २⅜
७½ × २	११ × २

यद्यपि गढ़की खुदाईमें हाथी-दाँतका दीवट (दीपाधानी) तथा और भी कुछ चीजें मिली थी; किन्तु सबसे महत्वपूर्ण वह कई सौ मुहरें है। गुप्तकालसे पूर्वकी मुहरे बहुत थोड़ी मिली है, उनमेसे एकपर निम्न प्रकार-का लेख है:—

"वेसालि अनु + + + + ट + + कारे सयानक"

इसमे वेसालि अनुसयानकको वेसालीअनुसंयानक बनाकर डाक्टर फ्लीटने "वैसालीका दौरा करनेवाला अफसर" अर्थ किया है; और, "टकारे" के लिये कहा है—यह एक स्थानके नामका अधिकरण (सप्तमी) मे प्रयोग है। अशोकके लेखोमे पाँच-पाँच वर्षपर खास अफसरोके अनुसयान या दौरा करनेकी बात लिखी है। उसीसे उपर्युक्त अर्थ निकाला गया है। किन्तु सिवा वेसालि शब्दके, जोकि, स्थानको बतलाता है, और अर्थ अनिश्चितसे ही है।

दूसरी मुहरमे है—

"राज्ञो महाक्षत्रपस्य स्वामीरुद्रसिंहस्य दुहितु
राज्ञो महाक्षत्रपस्य स्वामीरुद्रसेनस्य
भगिन्या महादेव्या प्रभुदमाया"

'राजा महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसिहकी पुत्री, राजा महाक्षपत्र स्वामी रुद्रसेनकी बहन महादेवी प्रभुदमाकी।'

महाक्षत्रप रुद्रसिह और उनके पुत्र रुद्रसेन चष्टन-रुद्रदामवशीय पश्चिमीय क्षत्रपोमेंसे थे, जिनकी राजधानी उज्जैन थी। रुद्रसिह और रुद्रसेनका राज्यकाल ईसाकी तीसरी शताब्दीका आरम्भ है। प्रभुदमाके साथका महादेवी शब्द बतलाता है कि, वह किसी राजाकी पटरानी थी। क्षत्रपो और शातवाहनवशीय आन्ध्रोका विवाह-सम्बन्ध तो मालूम ही है; किन्तु प्रभुदमा किसकी पटरानी थी, यह नही कहा जा सकता।

"हस्तदेवस्य" मुहर कुषाण-लिपिमे है। गुप्तकालीन मुहरोमें कुछ

"भगवत आदित्यस्य", "जयत्यनन्तो भगवान् साम्बः", "नमः पशुपते" आदि देवता-सम्बन्धी हैं। कुछ "नागशर्मण.", "बुद्धमित्रस्य", "त्रिपुरक्ष-षष्ठिदत्तः", "ब्रह्मरक्षितस्य" आदि साधारण व्यक्तियोकी है। राज्याधिकारियोकी मुहरोके बारेमें लिखनेसे पूर्व गुप्तकालीन शासनाधिकारियोके बारेमे कुछ लिखना चाहिये। गुप्तसाम्राज्य अनेक भुक्तियोमें[1] बँटा हुआ था। यह भुक्तियाँ आजकलकी कमिश्नरियोसे बडी थी। हर एक भुक्तिमे अनेक 'विषय' हुआ करते थे, जो प्राय: आजकलके जिलोके बराबर थे। विषय कही-कही अनेक 'पथकों'मे विभाजित था; जैसा कि, हर्षके बाँसखेढ़ावाले ताम्रपत्रसे मालूम होता है। नवमी शताब्दीके पालवशीय राजा धर्मपालके लेखसे मालूम होता है, कि उस समय भुक्तियोको मण्डलोमे विभक्त कर, फिर मण्डलको अनेक विषयोमे बाँटा गया था। हो सकता है, साम्राज्य के आकारके अनुसार भुक्तियोका आकार घटता-बढता हो। यद्यपि विषयोके नीचे पथकोका होना प्राय. नही देखा जाना, तो भी यदि पथक थे, तो उन्हे आज कलके परगने एव ग्यारहवी शताब्दीकी पत्तलाके समान जानना चाहिये। भुक्ति, विषय, ग्राम—इन तीन विभागोमे तो कोई सन्देह ही नही है। उस समय भुक्तिके शासकको उपरिक कहा जाता था, जिसे आजकलका गवर्नर समझना चाहिये। उपरिकको सम्राट् ही नियुक्त किया करता था। अपनी भुक्तिके भीतर

---

[1] श्रावस्ती (सहेट-महेट) गोंडा-बहराइच जिलोंकी सीमापर है; इसलिये गोंडा-बहराइच जिलोंको श्रावस्ती-भुक्तिमें मानना ही चाहिये। सातवीं शताब्दीके हर्षवर्द्धनके मधुवनवाले ताम्र-लेखसे मालूम होता है कि, आजमगढ़ श्रावस्ती-भुक्तिमें ही था। दिघवा-दुबौली (जि० सारन) का ताम्रपत्र यदि अपने स्थान पर ही है, तो नवीं शताब्दीमें सारन भी श्रावस्ती-भुक्तिमें था। इस प्रकार गोंडा, बहराइच, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़ और सारन जिले कम-से-कम श्रावस्ती-भुक्तिमें थे।

उपरिक विषय-पतियो को नियुक्त किया करता था, जिन्हे नियुक्तक या कुमारामात्य कहा जाता था। विषय-पति कुमारामात्यका निवास-नगर अधिष्ठान कहलाता था, और, उस नगरके शासनमे निगम या नागरिक-परिषद्का बहुत हाथ रहता था। यह निगम वही सस्था है, जिसके प्रभावका उल्लेख नेगम (=नैगम)के नामसे बुद्धकालमे भी बहुत पाया जाता है। गुप्तकालमे श्रेष्ठी (=नगर-सेठ), सार्थवाह (=बनजारोका सरदार) और कुलिक (प्रतिष्ठित नागरिक) मिलकर निगम कहे जाते थे। इन्हे और प्रथम कायस्थ (प्रधान लेखक)को मिलाकर विषय-पतिकी परामर्श-समिति-सी होती थी।

अब बसाढकी खुदाईमे मिली ऐसी कुछ मुहरोको देखिये——

उपरिक[२]
(१) [१]तीरभुक्त्युपरिकाधिकरणस्य।
(२) तीरभुक्तौ विनयस्थितिस्थाप(क)ाधिकरण(स्य)।

कुमारा०
(१) तीर-कुमारामा[३]त्याधिकरणस्य।
(२) कुमारामात्याधिकरणस्य।
(३) (वै)शाल्यधिष्ठानाधिकरण।
(४) (वै)शालविषय[४] ..।

निगम
(१) श्रेष्ठि-सार्थवाह-कुलिक-निगम।
(२) श्रेष्ठिकुलिकनिगम।
(३) श्रेष्ठिनिगमस्य।

---

[१] तीरभुक्ति=तिरहुत, जिसमें सम्भवतः गंडक, गंगा, कोसी और हिमालयसे घिरा प्रदेश शामिल था।

[२] उपरिककी मुहरमें, दो हाथियोके बीचमें, गुप्तोंका लांछन लक्ष्मी हैं, जिनके बायें हाथमें अष्टदल पुष्प हैं।

[३] मुहरमे दो हाथियोंके बीच लक्ष्मी है, जिनके हाथमे सप्तदल पुष्प है।

[४] सम्भवतः विषय।

श्रेष्ठि	(१) गोमिपुत्रस्य श्रेष्ठिकुलोटस्य। (२) श्रेष्ठिश्रीदासस्य।
सार्थवाह	सार्थवाह दोड्ड....
प्रथम कुलिक[1]	(१) प्रथमकुलिकहरि। (२) प्रथमकुलिकोग्रसिहस्य।
कुलिक	(१) कुलिक भगदत्तस्य। (२) कुलिक गोरिदासस्य। (३) कुलिक गोण्डस्य। (४) कुलिक हरि। (५) कुलिक ओमभट्ट।

इनके अतिरिक्त कुछ मुहरे राजा, युवराज तथा उनसे विशेष सम्बन्ध रखनेवालोकी भी है। जैसे—

(१) महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तपत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्त-माता महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी।

(२) श्रीपर(मभट्टारक)पादीय कुमारामात्याधिकरण।

(३) श्रीयुवराज भट्टारकपादीय कुमारामात्याधिकरण।

(४) युवराजभट्टारकपादीय बलाधिकरणस्य।

इनके अतिरिक्त रणभाण्डागाराधिकरण, दण्डपाशाधिकरण, दण्ड-नायक (न्याय-मन्त्री) और भटाश्वपति (घोडसवार, सेनापति आदि) की मुहरे मिली है—

---

[1] नगरमें श्रेष्ठी और सार्थवाह एक-एक हुआ करते थे। निगमसभाके बाकी सदस्य सद्कुलिक कहे जाते थे, जिनमें प्रमुखको 'प्रथम कुलिक' कहा जाता था। यही कारण है, जो मुहरोंमें सबसे अधिक कुलिकोकी मुहरें है।

(१) महादण्डनायकाग्निगुप्तस्य।

(२) भटाश्वपति यक्षवत्सस्य (?)

युवराज भट्टारकपादीय—कुमारामात्याधिकरण देखकर तो मालूम होता है, तीर-भुक्तिके 'उपरिक' स्वय युवराज ही होते थे। द्वितीय गुप्त-सम्राट् अपनेको लिच्छवि-दौहित्र कहकर जिस प्रकार अभिमान प्रकट करता है, उससे वैशालीको यह सम्मान मिलना असम्भव भी नही मालूम होता।[1]

---

[1] जैनधर्मके लिये वैशालीका कितना महत्व है, यह तो उसके प्रवर्तक वर्धमान महावीरके वहाँ जन्म लेनेसे ही स्पष्ट है। बौद्धधर्ममें भी वैशालीके लिये बड़ा गौरव है। वैशालीमें ही बुद्धने, सन् ५२५-५२४ ई० पू० में, स्त्रियोको भिक्षुणी बनने का अधिकार दिया था। बुद्धने यही अपना अन्तिम वर्षावास किया था। बुद्धके निर्वाणके सौ वर्ष बाद सन् ३८३ ई० पू० में, यहीं, बुद्धके उपदेशोंकी छानबीनके लिये, भिक्षुओंने द्वितीय संगीति (सभा) की थी। बुद्धने भिक्षु-संघके सामने लिच्छवि-गण-तन्त्रको आदर्शकी तरह पेश किया था। भिक्षु-संघके 'छन्द' (=वोट) दान तथा दूसरे प्रबन्धके ढंगोंमें लिच्छवि-गण-तन्त्रका अनुकरण किया गया है।

(४)

श्रावस्ती

बुद्धके समयमे उत्तरभारतमे पाँच बड़ी शक्तियाँ थी—कोसल, मगध, वत्स, वृजी, और अवन्ती। इनमे वृजी (वैशाली)मे लिच्छवियो का गणतन्त्र था। कोसल और कोसलके आधीन गणतन्त्रोके सम्बन्धमे भी बहुत-सी बातोका पता लगता है। यहा कोसलकी राजधानी श्रावस्तीके सम्बन्धमे लिखना है। श्रावस्तीके सम्बन्धमे त्रिपिटक और उसकी टीकाओ (अट्ठकथाओ)मे बहुत कुछ मिलता है। इसके अतिरिक्त फाहियान, यून्-च्वेङ्के यात्राविवरण, ब्राह्मण, और बौद्ध सस्कृत ग्रन्थो तथा जैन प्राकृत-सस्कृत ग्रन्थोमे भी बहुत सामग्री है। किन्तु इन सब वर्णनोसे पालि-त्रिपिटकमे आया वर्णन ही अधिक प्रामाणिक है। ब्राह्मणोके रामायण, महाभारतादि ग्रन्थोका सस्करण बराबर होता रहा है, इसीलिये उनकी सामग्रीका उपयोग बहुत सावधानीसे करना पड़ता है। जैन ग्रन्थ ईसवी पाँचवी शताब्दीमे लिपिबद्ध हुए, इसीलिये परम्परा बहुत पुरातन होनेपर भी, वह पालित्रिपिटकसे दूसरे ही नम्बरपर है। पालि-त्रिपिटक ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीमे लिपिबद्ध हो चुके थे। जो बात ब्राह्मणग्रन्थोके सम्बन्धमे है, वही महायान बौद्ध सस्कृत ग्रन्थोके सम्बन्धमे भी है।

श्रावस्ती उस समय काशी (आजकलके बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, आजमगढ, गाजीपुरके अधिकाश भाग), और कोसल (वर्तमान अवध) इन दो बडे और समृद्धि-शाली देशोकी राजधानी होनेसे ही ऊँचा स्थान रखती थी। इसके अतिरिक्त बुद्धके धर्मप्रचारका यह प्रधान केन्द्र था। इसीलिये बौद्ध साहित्यमे इसका स्थान और भी ऊँचा है। बुद्धने बुद्धत्व

प्राप्तकर पैतालीस वर्ष तक धर्म-प्रचार किया। प्रति वर्ष वर्षाके तीन मास वह किसी एक स्थानपर बिताते थे। उन्होंने अपने पैतालीस वर्षावासोमेंसे पच्चीस यही बिताये। सूत्रो और विनयके अधिक भागका भी उन्होंने यही उपदेश किया। ईसा पूर्व ४८३ वर्षमे बुद्धका निर्वाण हुआ, यही अधिक विद्वानोको मान्य है। उन्होंने अपना प्रथम वर्षावास (ई० पू० ५२७) ऋषिपतन-मृगदाव (सारनाथ, बनारस)मे बिताया। अट्ठकथा[1]के अनुसार चौदहवाँ, तथा इक्कीसवेंसे चौवालीसवे (ई० पू० ५०७—४८२=वि० स० पूर्व ४५०—४२५) वर्षावास उन्होंने यही बिताये।

श्रावस्तीके नाम-करणके विषयमे मज्झिमनिकायके सब्बासवसुत्त (१।१।२)मे इस प्रकार पाया जाता है—"सावत्थी (श्रावस्ती)—सवत्थ ऋषिकी निवासवाली नगरी, जैसे काकन्दी माकन्दी। यह अक्षर-चिन्तको (=वैयाकरणो)का मत है। अर्थकथाचार्य (भाष्यकार) कहते है—जो कुछ भी मनुष्योके उपभोग परिभोग है, सब यहाँ है (सब्ब अत्थि) इस-

[1] "तथागतो हि पठमबोधियं वीसति वस्सानि अनिबद्धवासो हुत्वा यत्थ यत्थ फासुकं होति तत्थ तत्थेव गन्त्वा'वसि। पथमक अन्तोवस्सं हि... धम्मचक्कं पवत्तेत्वा...वाराणसिं उपनिस्साय इसिपतने वसि...॥ चतुद्दसमं जेतवने पंचदसमं कपिलवत्थुस्मि...। एवं वीसति वस्सानि अनिबद्धवासो हुत्वा, यत्थ यत्थ फासुकं होति तत्थ तत्थेव वसि। ततो पट्ठाय पन द्वे सेनासनानि धुवपरिभोगानि अहोसि। कतरानि द्वे?—जेतवनञ्च पुब्बारामञ्च।...। उवुवस्सं चारिकं चरित्वापि हि अन्तो वस्से द्विसु येव सेनासनेसु वसति। एवं वसन्तो पन जेतवने रत्तिं वसित्वा पुन दिवसे ....दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा सावत्थिं पिण्डाय पविसित्वा पाचीन-द्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे दिवाविहारं करोति। पुब्बारामे रत्तिं वसित्वा पुनदिवसे पाचीन-द्वारेन...जेतवने दिवाविहारं करोति।"

—(अङ्गुत्तर० अट्ठकथा, हेवावितारणे ३१४ पृष्ठ)
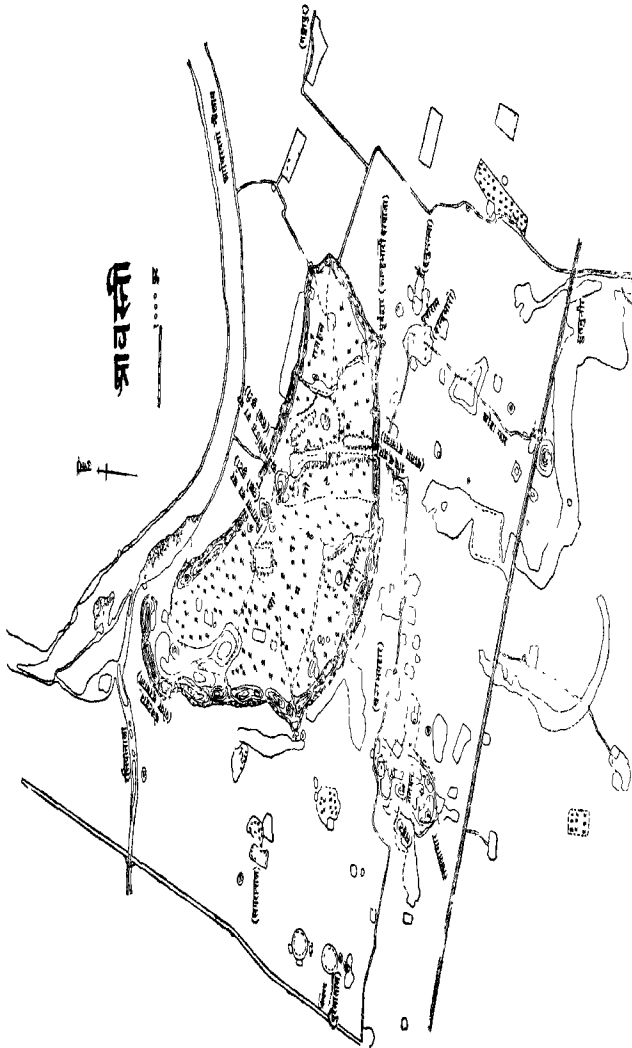
लिये इसे सावत्थी (श्रावस्ती) कहते है, बजारोंके जुटनेपर 'क्या चीज़ है' पूछनेपर "सब है, इस बातसे सावत्थी[१]।"

श्रावस्ती कहाँ थी? "कोसलान पुर रम्म" वचनसे ही मालूम हो जाता है, कि वह कोसल देशमे थी। पाली ग्रन्थोमे कितनी ही जगहोपर श्रावस्तीकी दूसरे नगरोसे दूरी भी उल्लिखित मिलती है—

१—"राजगृह कपिलवस्तुसे साठ योजन दूर, और श्रावस्ती पन्द्रह योजन। शास्ता (=बुद्ध) राजगृहसे पैतालीस योजन आकर श्रावस्तीमें विहरते थे।"[२]

२—"पुक्कसाती (=पुष्करसाती) नामक कुलपुत्र (तक्षशिलासे) आठ कम दो सौ योजन जाकर जेतवनके सदरदरवाजेके पाससे जाते हुए।"[३]

---

[१] सावत्थीति सवत्थस्स इसिनो निवासट्ठानभूता नगरी, यथा काकन्दी माकन्दी'ति। एवं ताव अक्खरचिंतका। अट्ठकथाचरिया पन भणन्ति—यं किंच मनुस्सानं उपभोग परिभोगं सब्बमेत्थ अत्थीति सावत्थी। सत्थ-समायोगे च किं भण्ड अत्थीति पुच्छिते सब्बमत्थीति वचनमुपादाय सावत्थी—

सब्बदा सब्बूपकरणं सावत्थियं समोहितं।
तस्मा सब्बमुपादाय सावत्थी'ति पवुच्चति।।
कोसलानं पुरं रम्मं दस्सनेय्यं मनोरमं।
दस हि सद्देहि अविवित्तं अन्नपानसमायुतं।।
वुड्ढि वेपुल्लतं पत्तं इद्धं फीतं मनोरमं।
आलकमन्दाव देवानं सावत्थी पुरमुत्तम।।
—(मज्झिमनिकाय अ० क० १।१।२)

[२] "राजगहं कपिलवत्थुतो दूरं सट्ठि योजनानि, सावत्थी पन पञ्चदस। सत्था राजगहतो पञ्चचत्तालीसयोजनं आगन्त्वा सावत्थियं विहरति।"
—(म० नि० अ० क० १।३।४)

[३] "पुक्कसाति नाम कुलपुत्तो (तक्कसलातो) अट्ठ हि ऊनकानि द्वे योजनसतानि गतो जेतवनद्वारकोट्ठकस्स पन समीपे गच्छन्तो..."
—(मज्झिम नि० अट्ठ० ३।४।१०)

३—"मज्छिकासंडमें सुधर्म स्थविर क्रुद्ध हो शास्ताके पास (जेतवन) जाकर...। शास्ताने (कहा) यह बडा मानी है; तीस योजन मार्ग जाकर पीछे आवे [१]।"

४—"दारुचीरिय ..सुप्पारक बन्दरके किनारे पहुँचा।....तब उसको देवताने बताया—हे वाहिक, उत्तरके जनपदोंमें श्रावस्ती नामक नगर है, वहाँ वह भगवान् विहरते हैं।.... (वह) एक सौ बीस योजनका रास्ता एक एक रात वास करते हुये ही गया।" [२]

५—"शास्ता जेतवनसे निकलकर क्रमशः अग्गालव विहार पहुँचे। शास्ताने (सोचा)—जिस कुल-कन्याके हितार्थ तीस योजन मार्ग हम आये।" [३]

६—"श्रावस्तीसे सकाश्य नगर तीस योजन।" [४]

---

[१] "मच्छिकासंडे सुधम्मत्थेरो...कुज्झित्वा सत्थुसंतिकं (जेतवने) गन्त्वा। सत्था...मानत्थद्धो एस तिंसयोजनं ताव मग्गं गंत्वा पच्छा-गच्छतु"।

—(धम्मपद-अट्ठ० हेवावितारणे पृ० २।५०)

[२] "दारुचीरियो..सुप्पारकपत्तनतीरं ओक्कामि।...अथस्स देवता आचिक्खि—अत्थि वाहिय, उत्तरेसु जनपदेसु सावत्थिनाम नगरं तत्थ सो भगवा विहरति।...(सो) वीसं योजनसतिकं मग्गं एकरत्तिवासेनेव अगमासि।"

—(धम्मपद-अट्ठ० ८।२ उदान अट्ठ० १।१०)

[३] "सत्था जेतवना निक्खमित्वा अनुपुब्बेन अग्गालवविहारं अगमासि।.....। सत्था—यमहं कुलधीतरं निस्साय तिंसयोजनमग्गो आगतो।"

—(धम्मपद-अट्ठ० १३।७,१५।५)।

[४] "सावत्थितो संकस्सनगरं तिंसयोजनानि"।—(धम्मपद-अट्ठ० १४।२)

७—"उग्र नगर निवासी उग्र नामक श्रेष्ठि-पुत्र अनाथपिंडकका मित्र था।.....छोटी सुभद्रा यहाँ(श्रावस्ती)से एक सौ बीस योजन-पर बसती है।"[१]

८—"उस क्षण जेतवनसे एक सौ बीस योजनपर कुररघरमें।"[२]

९—"तीस योजन........(जाकर) अगुलिमालका।"[३]

१०—"महाकप्पिन एक सौ बीस योजन आगे जा चद्रभागा नदीके तीर बरगदकी जडमे बैठे।"[४]

११—"साकेत छै योजन।"[५]

ऊपरके उद्धरणोमे राजगृह, कपिलवस्तु, तक्षशिला, मच्छिकासंड, सुप्पारक, अग्गालव विहार, सकाश्य, उग्रनगर, कुररघर, अगुलिमालसे भेट होनेका स्थान, चन्द्रभागा नदीका तीर, तथा साकेत—इन तेरह स्थानोसे श्रावस्तीकी दूरी मालूम होती है। इन स्थानोमे कपिलवस्तु (तिलौरा कोट, नेपालतराई), राजगृह (राजगिर, जिला पटना, बिहार), साकेत (अयोध्या, जि० फैजाबाद, यु० प्रा०), तक्षशिला (शाहजीकी ढेरी, जि० रावलपिडी, पजाब), सुप्पारक (सुप्पारा, जिला सूरत, बबई), सकाश्य

---

[१] "अनाथपिंडिकस्स...उग्गनगरवासी उग्गो नाम सेट्ठि पुत्तो सहायको।......चूल सुभद्दा दूरे वसति इतो वीसतियोजनसतमत्थके..."
—(धम्म० अट्ठ० २१।८)

[२] "तस्मि खणे जेतवनतो वीसं योजनसतमत्थके कुररघरे..."
—(धम्म० अट्ठ० २५।७)

[३] "तिसयोजनं...अंगुलिमालस्स"।—(मज्झिम० अट्ठ० १३।४)

[४] "महाकप्पिनराजा....।...वीसं योजनसतं पच्चुग्गत्त्वा चन्द्रभागाय नदियातीरे निग्रोधमूले निसीदि।"
—(धम्मपद-अट्ठ० ६।४)

[५] महावग्ग, पृष्ठ २८७

(सकिसा, जिला फर्रुखाबाद यु० प्रा०) तथा चद्रभागा नदी (चनाब, पजाब) यह सात स्थान निश्चित है।

पालीके शब्दकोश 'अभिधानप्पदीपिका'के अनुसार योजनका मान इस प्रकार है।

"अगुद्विच्छ विदत्थि, ता दुवे सियु।—
रतन, तानि सत्तेव, यट्ठि, ता वीसतूसभ।
गावूतमुसभासीति, योजन चतुगावुत।"

१२ अगुल = विदत्थि = (४ गिरह)
२ विदत्थि (बालिश्त) = रतन (हाथ)
७ रतन = १ यट्ठि (लट्ठा) = (३ १/२ गज)
२० यट्ठि = १ उसभ (ऋषभ) = (७० गज)
८० उसभ = १ गावूत (गव्यूति) = (५६०० गज = (३ १८ मील)
४ गावूत = १ योजन = (१२ ८/११ मील)

अभिधर्मकोशमे[१] २४ अगुल = १ हस्त, ४ हस्त = १ धनु (= २ गज), ५०० धनु = १ कोश (= १००० गज), ८ कोश = १ योजन (= ४·४५ मील) है।

श्रावस्तीके इस फासिलेको आधुनिक नकशेसे मिलानेपर—

	पुरातन		आधुनिक-
	योजन	मील	मील
कपिलवस्तु	१५	१९०·९	६२·४
साकेत	६	७६·३६	५१·२

---

[१] **चतुर्विंशतिरंगुल्यो हस्तो, हस्तचतुष्टयम्।
धनुः, पञ्चशतान्येषां क्रोशो, ... तेऽष्टौ योजनमित्याहुः,
—(अभिधर्मकोश ३।८८–८)**

राजगृह	४५	५७२·७२	२७६·८
तक्षशिला	१९२	२४४३·६२	७२८·८
सुप्पारक	१२०	१७२७·२६	७९६·८
सकाश्य	३०	३८१·८१	१६९·६
चन्द्रभागा नदी	१२०	१७२७·२६	५९०·४

श्रावस्ती और साकेतका मार्ग चालू और फासिला थोडा था, इसलिये इसकी दूरीमे सन्देहकी कम गुजाइश है। ऊपरके हिसाबसे योजन आठ मीलके करीब होगा।

श्रावस्ती कहाँ ?—

कोसल देशकी राजधानी श्रावस्तीको विद्वानोने युक्तप्रान्तके गोंडा जिलेका सहेट-महेट निश्चित किया है। उस समय कोसल नामका दूसरा कोई देश न था, इसीलिये उत्तर दक्षिण लगानेकी आवश्यकता न थी। छठी शताब्दीके (=विक्रम स० ५५८–६५७) बाद जब मध्यप्रदेशके छत्तीसगढका नाम भी कोसल पडा, तो दोनोको अलग करनेके लिये, इसे उत्तर कोसल और मध्यप्रदेशवालेको दक्षिण कोसल या महाकोसल कहा जाने लगा। श्रावस्ती अचिरवती (=रापती) नदीके तीर थी[1]। अचिरवती नगरके समीप ही बहती थी, क्योकि हम देखते है कि नगरकी वेश्याएँ और भिक्षुणियाँ यहाँ साधारणत स्नान करने जाया करती थी। मज्झिम-निकाय अट्ठकथामे[2] कहा गया है, कि यह नदी बहुत पुरातन (काश्यप बुद्ध) कालमें

---

[1] "इध भन्ते भिक्खुनियो अचिरवतिया नदिया वेसियाहि सद्धिं नग्गा एकतित्थे नहायन्ति।....अनुजानामि ते विसाखे अट्ठवरानीति।...."
—(महावग्ग चीवरक्खन्धे, ३२७)

[2] कस्सपदसबलस्स काले अचिरवती नगरं परिक्खिपित्वा सन्दमाना पुब्बकोट्ठकं पत्वा उदकेन भिन्दित्त्वा महन्तं उदकदहं मापेसि, समतित्थं अनुपुब्बगम्भीरं।"
—(म० नि० १।३।६; अ० क० ३७१)

नगरको घेरकर बहती थी। उसने पुब्बकोट्ठकके पास बड़ा दह खोद दिया था। यह दह नहानेका बड़ा ही अच्छा स्थान था। यह स्थान सम्भवत. महेटके पूर्वोत्तर कोनेपर था। इस दहके समीप तथा अचिरवतीके[१] किनारे ही राजमहल था। लेकिन साथ ही सुत्तनिपातकी अट्ठकथासे[२] पता लगता है कि अचिरवतीके किनारेवाले जौके खेत जेतवन और श्रावस्तीके बीचमें पड़ते थे। इसका मतलब यह है कि अचिरवती उस समय या तो जेतवन और श्रावस्तीके पश्चिम ओर होती हुई बहती थी, अथवा पूर्वकी ओर। लेकिन पूर्व माननेपर, उसका राजमहलके (जो कि नौशहरा दर्वाजाके पूर्व तरफ था)के पाससे जाना सभव नही हो सकता। इसलिये उसका श्रावस्ती और जेतवनके पश्चिम होकर, राजगढ दर्वाजेमे होते हुए, वर्तमान नौखानमे होकर बहना अधिक सम्भव मालूम होता है। यह बात यद्यपि पाली उद्धरणके अनुसार ठीक जँचेगी, किन्तु भूमिको देखनेसे इसमे सन्देह मालूम होता है। क्योकि जेतवन और श्रावस्तीके पश्चिमी भागमे कोई ऐसा चिह्न नही है, जिससे कहा जाय कि यहाँ कभी नदी बहती थी। साथ ही पुरैना और अमहा तालोके अति पुरातन स्तूपावशेष भी इसके लिये बाधक है। रामगढ दर्वाजेके पासकी भूमिमे भी ऐसी शक्ति नही है, जो

---

[१] "....राजा पसेनदी कोसलो मल्लिकाय देविया सद्धि उपरि पासादवरगतो होति। अद्दसा खो राजा पसेनदि....तेरसवग्गिये भिक्खू अचिरवतिया नदिया उदके कीलन्ते।...."

—(पाचित्ति; अचेलकवग्ग पृ० १२७)

[२] "भगवति किर सावत्थियं विहरन्ते अञ्ञातरो ब्राह्मणो सावत्थिया जेतवनस्स च अन्तरे अचिरवतीनदीतीरे यवं वपिस्सामीति खेत्त कसति। ....तस्स अज्ज वा स्वे वा लायिस्सामीति उस्सुक्कं कुरुमानस्सेव महामेघो उट्ठहित्वा सब्बरत्तिं वस्सि। अचिरवती नदी पूरा आगन्त्वा सब्बं यव वहि।"

—(सुत्त० नि० ४।१, अ० क० ४१९)

अचिरवती ऐसी पहाडी नदीकी तेज धारके ऐसे जल्दीके घुमावको सह सके। मालूम होता है, मूल परम्परामे ब्राह्मणके जौके खेतका अचिरवतीकी बाढसे नष्ट होना वर्णित था। जिसके लिये खेतोका अचिरवतीके किनारे होना कोई आवश्यक नही। हो सकता है, सिगिया नालाकी तरहका कोई नाला जेतवन और श्रावस्तीके पश्चिम भागमे रहा होगा, या उसके बिना भी जौके खेतका अचिरवतीकी बाढमे नष्ट होना बिल्कुल सभव है। अचिरवती-की बाढमे नष्ट होनेसे ही, खेतोको पीछे अचिरवतीके किनारे, समझ लिया गया। यह परिवर्तन मूल सिहाली अट्ठकथाहीमे सम्भवत. हुआ, जिसके आधारपर बुद्धघोषने, अपनी अट्ठकथाएँ लिखी। अचिरवतीका श्रावस्ती-के उत्तर और पूर्व-पश्चिम बहनेका एक और भी प्रमाण हमे मज्झिमनिकाय-से[1] मिलता है। आनन्द श्रावस्तीमे भिक्षा करके पूर्वारामको जा रहे थे; उसी समय राजा प्रसेनजित् भी अपने हाथीपर सवार हो नगरसे बाहर निकला। राजाने पूर्वद्वार (काँदभारी दर्वाजा)से बाहर पूर्वद्वार और पूर्वाराम-

---

[1] आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं...सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा .....येन पुब्बारामो..तेन उपसंकमि...। तेन खो पन समयेन राजा पसेनदि कोसलो एकपुण्डरीकं नागं अभिरुहित्त्वा सावत्थिया निय्यासि दिवा-दिवस्स। अद्दसा खो राजा....दूरतो'व आगच्छन्तं।....येनायस्मा आनन्दो तेनु'पसंकमि।...एतदवोच—स चे भन्ते,...न किञ्चि अच्चा-यिकं करणीयं; साधु,...येन अचिरवतिया नदिया तीरं तेनुपसंकमतु अनुकम्पं उपादाया'ति।....अथ खो...आनन्दो येन अचिरवतिया नदिया तीरं तेनु'पसंकमि, उपसङ्कमित्त्वा अञ्ञातरस्मि रुक्खमूले पञ्ञत्ते आसने निसीदि।....अयं भन्ते, अचिरवती नदी दिट्ठा आयस्मता चेव...अम्हेहि च, यदा उपरि पब्बते महामेघो अभिप्पवाहेति, अथायं अचिरवती नदी उभतो कूलानि संविस्सन्दन्ती गच्छति।"

—(म० नि० २।४।८)

के बीचमें कहींपर आनन्दको देखा। राजाने उस जगहसे अचिरवतीके किनारे-पर आनन्दको चलनेकी प्रार्थना की। सम्भवत उस समय अचिरवती सहेट-के उत्तरी किनारेसे लगी हुई बहती थी। कच्ची कुटीके पासका स्तूप सम्भवत. अनाथपिण्डकके घरको बतलाता है। अनाथपिण्डकका घर अचिरवतीके पास था, शायद इसीलिये हम जातकट्ठकथामे[1] देखते है, कि अनाथपिण्डक-का बहुतसा भूमिमे गड़ा हुआ धन, अचिरवतीके किनारेके टूट जानेमे बह गया।

श्रावस्ती (१) अचिरवतीके किनारे थी, (२) कोसल देशमे साकेत (अयोध्या)से ६ योजन पर थी, तथा खुद्दकनिकायके पेतवत्थुके[2] अनुसार (३) हिमालय वहाँसे दिखलाई पडता था। यहाँ 'हिमवान्को देखते हुए' शब्द आया है, जिससे साफ है, कि श्रावस्ती हिमालयकी जडमे न होकर वहाँसे कुछ फासिलेपर थी, जहाँसे कि हिमालयकी चोटियाँ दिख-लायी पड़ती थी। महेटसे हिमालय चौबीसही मील दूर है, और खूब दिख-लाई पडता है।

श्रावस्ती नगर

श्रावस्तीकी जनसख्या[3] अट्ठकथाओमे सात कोटि लिखी है, जिस-का अर्थ हम यही लगा सकते है, कि वह एक बडा नगर था। यह बात

---

[1] "अचिरवतीनदीतीरे निहितधनं नदीकूले भिन्ने समुद्दं पविट्ठं अत्थि।"

—(जातक १।४।१०)

[2] "सावत्थि नाम नगरं हिमवन्तस्स पस्सतो।" (पेतवत्थु० ४।६)।

[3] "तदा सावत्थियं सत्तमनुस्सकोटियो वसन्ति। तेसु सत्थुधम्मकथं सुत्वा पञ्चकोटिमत्ता मनुस्सा अरियसावका जाता, द्वे कोटिमत्ता पुथुज्जना"

—(ध० प० १।१, अ० क० ३)।

तो कोसल जैसे बडे शक्तिशाली राज्यकी पुरानी राजधानी होनेसे भी मालूम हो सकती है। महापरिनिर्वाण सूत्रमे[1], जहाँ पर आनन्दने बुद्धसे कुशीनगर छोडकर किसी बडे नगरमे शरीर छोडनेकी प्रार्थना की है वहाँ बडे नगरोकी एक सूची दी है। इस सूचीमे श्रावस्तीका उल्लेख है। इससे भी यह स्पष्ट है। निवासियोमे पाँच करोड लोग बौद्ध थे, इसका मतलब भी यही है कि श्रावस्तीके अधिवासियोकी अधिक सख्या बौद्ध थी। और यह इससे भी मालूम हो सकता है कि बुद्धके उपदेशका यह एक केन्द्र रहा।

उस समय मकानोके बनानेमे लकडीका ही अधिकतर उपयोग होता था। इमारते प्राय सभी लकडीकी थी। यद्यपि श्रावस्तीके बारेमे खास तौर से नही आया है, तो भी राजगृहके वर्णनसे हम समझ सकते है कि शहरो-के चारो तरफके प्राकार भी लकडीकेही बनते थे। पाराजिक[2] (विनय-पिटक)मे यह बात स्पष्ट है। मेगस्थनीजने भी पाटलिपुत्रके चारो ओर लकडीका ही प्राकार देखा था। (उस समय जब चारो ओर जगल ही जगल था, लकड़ीकी इफ़ात थी) लकडीका प्राकार उस धनुष बाणके जमानेके लिये उपयुक्त था, इसीलिये हम पुराने पाटलिपुत्रको भी लकडीके प्राकारसे ही घिरा पाते है। बुलन्दी बागकी खुदाईमे इसके कुछ भाग भी मिले है।

---

[1] "मा भन्ते भगवा इमस्मिं कुड्डनगरके उज्जंगलनगरके साखनगरके परिनिब्बायतु। सन्ति भन्ते अञ्ञानि महानगरानि, सेय्यथीदं चम्पा, राजगहं, सावत्थी, साकेतं, कोसम्बी, वाराणसी ..."

—(दी० नि० २।३।१३)

[2] "अत्थि भन्ते, देवगहदारूनि नगरपटिसंखारिकानि आपदत्थाय निक्खित्तानि। स चे तानि राजा दापेति, हरापेथ।"

—(द्वितीय पराजिका)

श्रावस्तीमे मुख्यतः चार[१] दर्वाजे थे, जिनमे तीन तो उत्तर[२], पूर्व और दक्षिण दर्वाजोके नामसे प्रसिद्ध थे। इनमेसे जेतवनसे नगरमें आनेका दर्वाजा दक्षिण द्वार था। पूर्व्वाराम पूरब दर्वाजेके[३] सामने था। इन्ही तीन द्वारोका वर्णन अधिकतर मिलता है। पश्चिम द्वारका होना भी यद्यपि स्वाभाविक है तथापि इसका वर्णन त्रिपिटक या अट्ठकथामे नहीं देखनेमे आता। अट्ठकथासे पता लगता है कि उत्तर द्वारके बाहर एक गाँव बसता था, जिसका नाम 'उत्तरद्वारगाम' था। यह 'उत्तर[४] द्वार-गाम' नगरके प्राकार तथा नदीके मध्यकी भूमिमे झोपड़ियोका एक छोटा गाँव होगा।

---

[१] "जेतवने रत्तिं वसित्त्वा पुनदिवसे... दक्खिणद्वारेन सावत्थिं पिण्डाय पविसित्वा पाचीन-द्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे दिवाविहारं करोति।"

—(मनि० ९।३।६, अ० क० ३६९)

[२] "पाचीनद्वारे सङ्घस्स वसनट्ठानं कातुं ते युत्तं विसाखे'ति।"

—(धम्मपद प० ४।८ अ० क० १९९)

[३] "पकतियापि सत्था विसाखाय गेहे भिक्खं गण्हित्वा दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा जेतवने वसति। अनाथपिण्डकस्स गेहे भिक्खं गहेत्वा पाचीनद्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे वसति। उत्तरद्वारं सन्धाय गच्छन्तञ्ञेव भगवन्तं दिस्वा चारिकं पक्कमिस्सती'ति जानन्ति।"

—(ध० प० ४।८, अ० क० २००)

[४] "एकदिवसं हि भिक्खू सावत्थियं उत्तरद्वारगामे पिण्डाय चरित्त्वा.. नगरमज्झेन विहारं आगच्छन्ति। तस्मिन् खणे मेघो उट्ठाय पावस्सि। ते सम्मुखागतं विनिच्छयसालं पविसित्वा, विनिच्छयमहामत्ते लञ्छं गहेत्वा सामिके असामिके करोन्ते दिस्वा, अहो इमे अधम्मिका..."

—(ध० प० १९।१, अ० क० ५२९)

विमानवत्थु[1] तथा उदान[2]-अट्ठकथामें 'केवटद्वार' नामक एक और द्वारका वर्णन किया गया है, जिसके बाहर केवटों (मल्लाहों)का गाँव बसा था। उस समय व्यापारके लिये नदियोंका महत्त्व अधिक था। अतः केवट गाँवका एक बड़ा गाँव होना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार हमको पिटक और उसकी अट्ठकथाओंसे उत्तर, पूर्व, दक्षिण द्वार, तथा केवट्ट-द्वार इन चार दर्वाजोका पता लगता है। 'सहेट'के ध्वसावशेष, तथा उसके दर्वाजोंका विस्तृत वर्णन डाक्टर फोगलने १९०७-८ के पुरातत्त्व-विभागके विवरणमें विस्तार-पूर्वक किया है। वहाँ, उन्होने महेट (श्रावस्ती)का घेरा १७,२५० फीट या ३१/४ मीलसे कुछ अधिक लिखा है। यद्यपि श्रावस्ती नगर ईसाकी बारहवी शताब्दीमें मुसलमानों द्वारा वीरान किया गया और इसलिये ईसा पूर्व छठी शताब्दीसे बारहवी शताब्दीके बीचकी अठारह शताब्दियोंमे हेर फेर होना बहुत स्वाभाविक है; तथापि इतना हम कह सकते हैं कि कोसल-राज्यके पतन (प्रायः ईसा पूर्व ४ या ५ शताब्दी)के बाद फिर उसे किसी बड़े राज्यकी राजाधानी बनाने का मौका न मिला। पाँचवी शताब्दीके आरम्भमें फाहियानने भी इसे दो सौ घरोंका गाँव देखा था। युन्-च्वेङने भी इसे उजाड़ देखा। इसलिये इतना कहा जा सकता है कि श्रावस्तीकी सीमा-वृद्धिका कभी मौका नही आया; और वर्तमान 'महेट'का १७,२५० फीटका घेरा श्रावस्तीकी पुरानी सीमाको बढ़ाकर नहीं सूचित करता है।

श्रावस्ती भारतके बहुत ही पुराने नगरोमेंसे है; इसलिये उसके

---

[1] "केवट्टद्वारा निक्खम्म अहु मय्हं निवेसनं।"
—(वि० व० २:२)

[2] "सावत्थिनगरद्वारे केवट्टगामे...पञ्चकुलसतजेट्ठकस्स केवट्टस्स पुत्तो...यसोजो...।"
—(उदान० ३।३, अ० क० ११९)

भीतर नियमपूर्वक खुदाई होनेसे अवश्य हमें बहुतसी ऐतिहासिक सामग्री हाथ लगेगी। हम पटनामे मौर्योंका तल, वर्तमान धरातलसे १७ फुट नीचे पाते हैं। श्रावस्तीमें भी बुद्धकालीन सामग्रीके लिये हमें उतना नीचे जाना पडेगा। डाक्टर फोगलने प्राकारोके अनेक स्थानोपर ईटें पाई है, जो तल और लम्बाई-चौडाईके विचारसे ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीसे ईस्वी दशवीं शताब्दी तककी मालूम होती है। महेटके प्राकारमे जहाँ कही भी जमीन कुछ नीची जान पड़ती है, लोग उसे दर्वाजा कहते हैं, और ये आसपासके किसी वृक्ष या गाँवके नामसे मशहूर हैं। ऐसे दर्वाजे अट्ठाइसके करीब है। डाक्टर फोगलने इनकी परीक्षा करके इनमेसे ग्यारहको ही दर्वाजा माना है, जिनमें उत्तर तरफ एक, पूर्व तरफ एक, दक्षिण तरफ चार, और पश्चिम तरफ पाँच है। इनमेसे कौन त्रिपिटक और अट्ठकथामे वर्णित चारो दर्वाजे हो सकते है, इस पर जरा विचार करना है।

उत्तर द्वार

ऊपरके उद्धरणसे मालूम होता है कि जब बुद्ध उत्तर दर्वाजेकी तरफ जाते थे तो लोग समझ लेते थे कि अब वे विचरणके लिये जा रहे है। इतना ही नही, वहाँ[१] ही हम भद्दियके लिये प्रस्थान करते हुए उन्हे उत्तर द्वारकी ओर जाते हुए देखते है। पर 'भद्दिया' अंगदेशमे (गगाके तटपर मुंगेरके आसपास) एक प्रसिद्ध व्यापारी नगर था। श्रावस्तीसे पूर्व की ओर जानेवाला मार्ग उत्तर द्वारसे था। इसके बाहर अचिरवतीमे[२]

---

[१] "अथेकदिवसं सत्था...भद्दियनगरे...भद्दियस्स नाम सेट्ठिपुत्तस्स उपनिस्सयसम्पत्तिं दिस्वा...उत्तरद्वाराभिमुखो अहोसि।"
—(ध० प० ४।८, अ० क० २८०)

[२] "तेन खो पन समयेन मनुस्सा उलुम्पं बन्धित्त्वा अचिरवतिया नदिया ओसादेन्ति। बन्धने छिन्ने कट्ठानि विप्पकिण्णानि अगमंसु।"
—(पाराजिक २। पृ० ६८)

काठकी डोंगियोंका पुल रहता था। इससे पार होकर पूर्वका रास्ता था। उत्तर तरफके दर्वाजोमें सिर्फ नौसहरा[१] ही एक दर्वाजा है, जिसे डाक्टर फोगलके अन्वेषणने पुराना दर्वाजा सिद्ध किया है। बाजार-दर्वाजेसे, जिसे हम दक्षिण दर्वाजा सिद्ध करेंगे, कच्ची कुटीतक चौड़ी सड़कका निशान अब भी स्पष्ट मालूम होता है। यही नगरकी सर्वप्रधान सड़क थी। दक्षिण दर्वाजेका बाजार-दर्वाजा नाम भी सम्भवतः कुछ अर्थ रखता है। कच्ची कुटीके पाससे एक रास्ता नौसहरा-दर्वाजेको भी जाता है। नौसहरा-दर्वाजा ही श्रावस्तीका उत्तर द्वार है, जिसके बाहर एक गाँव बसा हुआ था। सड़क-के किनारे वाले भागपर कही राजकचहरी थी, जिसमें वर्षासे बचनेके लिये भिक्षु चले गये थे, और वहाँ उन्होने जजोको घूस लेकर मालिकोको बेमा-लिक बनाते देखा।

पूर्वदर्वाजा

यह बहुतही महत्त्वपूर्ण दर्वाजा था। इसके ही बाहर पूर्वाराम था। पूर्वाराम बहुत ही प्रसिद्ध स्थान था, इसलिये उस जगह स्तूप आदिके ध्वस अवश्य मिलने चाहियें। गंगापुर-दर्वाजेको ही डाक्टर फोगलने पूर्व तरफमें वास्तविक दर्वाजा माना है। इसके अतिरिक्त काँदभारी-दर्वाजा भी पूर्व-दक्षिण कोनेपर है, जिसे भी पूर्व ओर लिया जा सकता है; लेकिन (१) हमने ऊपर देख लिया है कि आनन्दको राजा प्रसेनजित्ने पूर्व दर्वाजेके बाहर देखा था, जहाँसे अचिरवती बिलकुल पास थी। काँदभारीके स्वीकार करनेसे वह दूर पड़ जायगी। (२) भगवान् बुद्ध सदाही दक्षिण दर्वाजेसे नगरमें प्रवेश कर, फिर पूर्व दर्वाजेसे निकलकर पूर्वाराम जाते देखे जाते है। यदि

---

[१] "Along the river face,.....only one.....Nausahra Darwaza...has proved to be one of the original City-gates."

कांँदभारी-दर्वाजा पूर्व दर्वाजा होता, तो जेतवनसे बाहरही बाहर पूर्वाराम जाया जा सकता था, जिसका कही जिक्र नहीं है। (३) पुब्बकोट्ठक[1] जो कि अचिरवतीके पास था, वह पूर्वारामके भी पास था, क्योंकि भगवान् सायंकालको स्नानके लिये वहाँ जाते हैं। पासमें रम्यक ब्राह्मणके आश्रममे व्याख्यान भी देते हैं, और फिर पूर्वाराम लौट भी आते हैं।

लेकिन इसके विरुद्ध सबमे बड़ी कठिनाई यह है कि गंगापुर-दर्वाजेके बाहर आसपास कोई ऐसा ध्वसावशेष डाक्टर फोगलके नकशेमे नही दिखाई पडता। साथ ही कांँदभारी-दर्वाजेके बाहर ही हम हनुमनवांके ध्वंसावशेषको देखते हैं। स्थानको देखनेपर कादभारी-दर्वाजा ही पूर्व दर्वाजा, तथा हनुमनवाँ पूर्वाराम मालूम होता है।

दक्षिणद्वार

दक्षिणद्वार नगरका एक प्रधान द्वार था। जेतवन जानेका यही रास्ता था। दर्वाजे और जेतवनके बीचमें अक्सर राजकीय सेनाएँ[2] पडाव डालती थी। कारवाँ[3] भी इसी बीचकी भूमिमें ठहरते थे। यही

---

[1] पिंडपातपटिक्कन्तो....येन पुब्बारामो तेनुपसङ्कमि।....सायन्हसमयं पटिसल्लाणा वुट्ठितो....येन पुब्बकोट्ठको....गत्तानिपरिसिञ्चितुं ....। अथ....आनन्दो अयं भन्ते, रम्मकस्स ब्राह्मणस्स अस्समो अविदूरे,....साधु भन्ते....उपसंकमतु अनुकम्पं उपादायाति।....भगवा ....अस्समं पविसित्त्वा....भिक्खू आमन्तेसि।"

—(म० नि० १।३।६)

[2] "एकस्मिं समये वस्सकाले कोसलरञ्ञो पच्चन्तो कुप्पि।....। राजा अकाले वस्सन्ते येव निक्खमित्वा जेतवनसमीपे खन्धावारं बन्धित्वा चिन्तेसि"। —(जा० १७६, पृ० ४२९)

[3] "सेतब्यवासिनो हि....भातरो कुटुम्बिका....अथेकस्मिं समये ते

दर्वाजा साकेत (अयोध्या) जानेका भी था। दक्षिण द्वार और जेतवन[१] के मध्यमें एक जलाशयका वर्णन मिलता है। तमाशे[२] के लिये भी यही जगह निश्चित थी। श्वेताम्बी कपिलवस्तुके रास्तेमे थी, इसलिये वहाँसे श्रावस्ती आनेमें उत्तरद्वारके सामने नदी उतरना पड़ता था; फिर गाड़ियोंका नगरके दक्षिणमे ठहरना बतलाता है कि श्रावस्ती और जेतवनके बीचकी भूमिमें खुली जगह थी, जो पड़ावके लिये सुरक्षित थी। वैताग़ ताल तथा और भी कुछ नीची भूमि, सम्भवतः पुराने जलाशयोको सूचित करती है। सवाल यह है कि कौनसा प्रसिद्ध दक्षिणद्वार है, जिससे जेतवनमे आना-जाना होता था। डाक्टर फोगलके अनुसार गेलही-दर्वाजा ही वह हो सकता है, क्योंकि यह दर्वाजा सबसे नजदीक है। किन्तु उसके दर्वाजा न होनेमे एक बड़ी भारी रुकावट यह है कि जेतवनका दर्वाजा पूर्वमुख था। यदि गेलही-दर्वाजा उस समय दर्वाजा होता, तो उसके लिये जेतवनका दर्वाजा उत्तर मुँहका बनाना पड़ता। यद्यपि चीनी यात्रीके अनुसार एक दर्वाजा उत्तरको था, किन्तु पालीग्रन्थोमें उसका कुछ भी पता नहीं है। इस प्रकार दक्षिणद्वार

उभोपि भातरो पञ्चहि सकटसतेहि नाना भण्डं गहेत्वा सावत्थिं गन्त्वा सावत्थिया च जेतवनस्य च अन्तरे सकटानि मोचयिंसु।"

—(ध. प. १.६ अ. क. ३३)

[१] "तेन खो पन समयेन सम्बहुला कुमारका अन्तरा च सावत्थि अन्तरा च जेतवनं मच्छके बाधेन्ति।....भगवा पुब्बण्हसमयं.... सावत्थियं पिंडाय पाविसि।......उपसंकमित्वा—भायथ तुम्हे कुमारका दुक्खस्स" (मग्गसमीपे तलाके निदाघकाले उदके परिक्खीणे....।)

—(उदान० ५।४, पृ० १९६)

[२]......(चन्दाभत्थेरो, सहायको च)....एवं अनुविचरन्ता सावत्थियं अनुप्पत्ता नगरस्स च विहारस्स च अन्तरा वासं गण्हिंसु।"

—(ध० प० २६।३०, अ० क० ६७०)

वैतारा और बाजार-दर्वाजा दोनोहीमेंसे कोई हो सकता है। पालीग्रन्थोंमें जेतवन श्रावस्ती (दक्षिणद्वार) से न बहुत दूर था न बहुत समीप, यही मिलता है। गेलही-दर्वाजेसे जेतवन १३८६ फीट या चौथाई मीलसे कुछ अधिक है। अट्ठकथासे मालूम होता है कि लोग जेतवन जाते वक्त नगरकी बडी सडकसे [1] जाते थे। दूसरी जगह हम देखते हैं कि श्रावस्ती जानेवाली सडक जेतवनसे पूर्व होकर जाती थी। इन सारी बातोंपर विचार करनेसे गेलही-दर्वाजा दक्षिणद्वार नही, बाजार-दर्वाजाही हो सकता है क्योंकि इससे जेतवनके पूर्वमुख होनेकी भी वजह मालूम हो सकती है। बाजार-दर्वाजा दक्षिण द्वार होनेके लायक है, इसके बारेमे डाक्टर फोगल लिखते है[2]—"यह १२ फुट चौडा मार्ग एक ऐसे बडे मार्गपर जाकर समाप्त होता है जो सीधे उत्तरकी ओर जाकर 'कच्ची कुटी'के भग्नावशेषके दक्षिणपूर्वमें स्थित एक मैदानमे मिल जाता है। बाजार-दर्वाजा वस्तुतः किसी पुराने नगर-द्वारके ही स्थान पर है ऐसा माननेके लिये सबल कारण है क्योंकि यहीं से एक बड़ी सडक या बाजारका आरम्भ होता है।"

इस प्रकार बाजार-दर्वाजा एक पुराना दर्वाजा सिद्ध होता है, तथा उसकी सड़क उपरोक्त महावीथी होने लायक है। इसके विरुद्ध वैतारा-दर्वाजेके बारेमें डा० फोगलका कहना है कि इमारतोंके ध्वंसावशेषकी अनुपस्थितिमे इस स्थानपर किसी फाटकके अस्तित्वका सिद्ध करना असम्भव है। इस तरह वैतारा-दर्वाजेके दर्वाजा होनेमे भी सन्देह है। तिन्दुकाचीर मल्लिकाराम[3] दक्षिणद्वारके पास था। बाजार-दर्वाजेसे प्रायः

---

[1] "सो एक दिवसम्हि पासादवरगतो सिहपञ्जरं उग्घाटेत्वा महावीथिय ओलोकेन्तो गन्धमालादिहत्थं महाजनं धम्मसवनत्थाय जेतवनं गच्छन्तं दिस्वा......" —(सुवण्णसामजातक ५३९)

[2] Archæological Report, 1907-8.

[3] "भगवा.....जेतवने....। पोट्ठपादो परिब्बाजको समयप्पवादके,

दो सौ गज पूर्व तरफ अब भी एक ध्वंसावशेष है; इसपर एक छोटा सा मन्दिर चीरेनाथके नामसे विख्यात है। क्या इस चीरेनाथका 'तिन्दुकाचीरे' के चीरेसे तो कोई सम्बन्ध नही है? इस प्रकार बाजार-दर्वाजा ही दक्षिणद्वार मालूम होता है, जहाँसे जेतवनद्वार ३७०० फीट पड़ेगा, जो कि गेलही-दर्वाजे (१३८६')की अपेक्षा अधिक तथा युन्-च्वेङके ५,६ (फाहियान—६,७)ली के समीप है।

केवट्टद्वार

केवटद्वारके बारेमें हम सिर्फ इतना ही जानते है कि उसके बाहर पाँच सौ घर मल्लाहोका एक गाँव (केवट्ट गाम) बसता था। मल्लाहोका गाँव नदीके समीप होना आवश्यक है। अचिरवतीकी तरफ नगरका प्रधान द्वार उत्तर-द्वार था। उत्तर-द्वारका ही दूसरा नाम केवट्टद्वार था, इसके माननेके लिये हमे कोई कारण नही मिलता। तब यह दर्वाजा सम्भवत: राजगढदर्वाजा था, जो कि महेटके पूर्व-उत्तर कोनेपर नदीके समीप पड़ता है।

श्रावस्ती नगरके भीतरकी वस्तुओमें राजकाराम, राजप्रासाद, अनाथपिंडक और विशाखाके घर, राजकचहरी, बाजार यह मुख्य स्थान हैं; जिनका थोड़ा बहुत वर्णन हमें अट्ठकथाओ और त्रिपिटकसे मिलता है।

तिन्दुकाचीरे एकसालके मल्लिकाय आरामे पटिवसति....सद्धिं तिसमत्तेहि परिब्बाजकसतेहि। भगवा.....सावत्थिं पिण्डाय पाविसि।.....अतिप्पगो खो ताव,....पिण्डाय चरितुं, यन्नूनाहं....येन पोट्ठपादो परिब्बाजको तेनुपसंकमेय्यन्ति।"

—(दी० नि० १।९)

"नगरद्वारसमीपं गन्त्वा अत्तनो रुचिवसेन सुरियं ओलेकेत्वा...."

—(अ० क० २३९)

राजकाराम

यह भिक्षुणियोंकाआराम था। इसके बनानेके बारेमें धम्मपदअट्ठ-कथामे[1] इस प्रकार कहा गया है—"बौद्ध भिक्षुणियोमें सर्वश्रेष्ठ उत्पलवर्णा एक समय चारिकाके बाद अन्धवनमें वास कर रही थीं। उस समय तक भिक्षुणियोके लिये अरण्यवास निषिद्ध नही ठहराया गया था।....... उत्पलवर्णापर आसक्त उसके मामाके लड़के नन्दने उसपर बलात्कार किया। भगवान्‌ने इसपर राजा प्रसेनजित्‌से नगरके भीतर भिक्षुणीसंघके लिये निवास-स्थान बनानेको कहा। राजाने नगरमे एक तरफ आराम बनवा दिया। इसके बाद भिक्षुणियाँ नगरके भीतर ही वास करती थी।" मज्झिम-निकायमें—"महाप्रजापति गौतमीने पाँच सौ भिक्षुणियोंकी जमातके साथ जेतवनमे[2] जाकर भगवान्‌से भिक्षुणियोको उपदेश देनेके लिये प्रार्थना की।

---

[1] "उप्पलवण्णा......जनपदचारिकं चरित्त्वा पच्चागता अन्ध-वनं पाविसि। तदा भिक्खुणीनं अरञ्ञावासो अपटिक्खित्तो होति। अथ'स्सा तत्थ कुटिकं कत्त्वा मञ्चकं पञ्ञापेत्त्वा साणिया परिक्खिपिंसु। ......मातुलपुत्तो पनस्सा नन्दमाणवो....अभिभवित्त्वा अत्तना पत्थि-तकम्मं कत्वा पायासि।....सो पठविं पविट्ठो।......सत्था पन राजानं पसेनदिकोसलं पक्कोसापेत्त्वा....भिक्खुणीसङ्घस्स अन्तोनगरे वसनट्ठानं कातुं वट्टतीति। राजा....नगरस्स एकपस्से भिक्खुणी-संघस्स वसन'ट्ठानं कारापेसि। ततो पट्ठाय भिक्खुनियो अन्तो गामे एव वसन्ति।" —(ध० प० ५।१०, अ० क० २३७-२३९)

[2] "जेतवने......महापजापती गोतमी पञ्चमत्तेहि भिक्खुनीसतेहि सद्धिं........उपसङ्कमित्वा......अवोच—ओवदतु भन्ते भगवा, भिक्खुनियो......। भगवा आयस्मन्तं नन्दकं आमन्तेसि—ओवद नन्दक, भिक्खुनियो।····। अथ......नन्दको....येन राजकारामो तेनु'पसंकमि। —(म० नि० ३।५।४)

भगवान्‌ने इसपर आयुष्मान् नन्दकको उपदेश देनेके लिये राजकाराम भेजा। अट्ठकथामें[1] राजकारामके बारेमें इस प्रकार लिखा है—'राजा प्रसेनजित्‌का बनवाया, नगरके दक्षिणकोणमें (अनुराधपुरके) थूपारामके समान स्थानपर विहार।' इस आरामका नगरके दक्षिणी किनारेपर होना स्पष्ट है। साथ ही यह दक्षिणद्वारसे बहुत दूर नही था, क्योकि हम आनन्दको भिक्षुणियोके आश्रममें जाकर उन्हे उपदेश देकर, पीछे पिण्डपातके लिये जाते देखते हैं[2]।

अब हमें यह देखना है कि राजकाराम बाजार-दर्वाजेसे किधर हो सकता है। नक्शेके देखनेसे मालूम होगा कि वैतारा-दर्वाजेसे इमली-दर्वाजेतक प्राकारकी जडमें, नगरके भीतरकी तरफ मन्दिरोकी जगह है। इसमे पश्चिमका भाग जैन मन्दिरों द्वारा भरा हुआ है और पूर्वीय भाग ब्राह्मण मन्दिरो द्वारा। मालूम होता है ब्राह्मण मन्दिरके पूर्व, प्राकारसे सटा ही, राजकाराम था, जिसमें महाप्रजापती गौतमी अपनी भिक्षुणियोके साथ रहा करती थी। यून-च्वेङने राजा प्रसेनजित्‌का बनवाया हाल, और प्रजापती भिक्षुणीका विहार अलग अलग वर्णन किया है; किन्तु पाली ग्रन्थोमें नगरके भीतर राजा प्रसेनजित् द्वारा बनवाया भिक्षुणियोका आराम ही आता है, जिसे राजकाराम कहते थे।

अनाथपिण्डकका घर

इसमें सन्देह नही कि बाजार-दर्वाजेसे उत्तर-दक्षिण जानेवाली सडक श्रावस्तीकी महावीथी (सबसे बड़ी सड़क) थी। यह विस्तृत सड़क सीधी

---

[1] "पसेनदिना कारितो नगरस्स दक्खिणानुदिसाभागे थूपारामसदिसो ठाने विहारो....। —(अ० क० १०२१)

[2] आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं......येन'ञ्ञातरो भिक्खु-न'पस्सयो तेनु'पसंकमि। ....भिक्खुनियो धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा ......उट्ठायासना पक्कामि......सावत्थियं पिण्डाय (स० नि० ४६।१।१०)

नगरके उत्तरी भागतक चली गई है । झाड़ियोंसे रहित इस मार्गकी अगल-बगलकी सीमाएँ अबतक स्पष्ट हैं। नगरका बाजार और बड़े बडे धनिकोका घर इसीके किनारेपर होना भी स्वाभाविक है। इस प्रकार अनार्थपिडकके घरको भी इसीके किनारे ढूँढ़ना पड़ेगा। धम्मपद-अट्ठकथासे मालूम होता है कि अनार्थपिडकका[1] घर ऐसे भागपर था, जहाँसे पूर्व और उत्तर दर्वाजोको रास्ता अलग होना था। अनार्थपिडकके घरसे ही उत्तर दर्वाजे[2] की तरफ होने को, विशाखा तभी जान सकती थी, जब कि वहाँसे सीधा रास्ता उत्तर दर्वाजेको गया हो। ऐसा स्थान कच्ची कुटी ही है; जो महावीथीके उस स्थानपर अवस्थित है, जहाँसे एक रास्ता नोसहरा-दर्वाजे (उत्तर-द्वार) को मुडा है। यून्-च्वेङने प्रजापतीके विहारसे इसे पूर्व ओर बतलाया है; लेकिन उसके साथ इसको संगति बैठानेका कोई उपाय नही है, जब कि राजकारामका दक्षिण द्वारके पास प्राकारकी जडमें होना निश्चित है। अनाथपिण्डकका घर सात महल और सात दर्वाजोका था। जातकमे[3] उसके चौथे दर्वाजेका भी जिक्र आया है, जिसपर एक देवताका वास था।

---

[1] "घरं सत्तभूमकं सत्तद्वारकोट्ठकपतिमण्डितं, तस्स चतुत्थे द्वारकोट्ठके एका देवता....।—(जातक० १, पृ० १९७)

[2] "अनार्थपिडिकस्स गेहे भत्तकिच्चं कत्वा उत्तरद्वाराभिमुखो अहोसि। पकतियापि सत्था विसाखाय गेहे भिक्खं गण्हित्वा दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा जेतवने वसति। अनार्थपिण्डिकस्स गेहे भिक्खं गहेत्वा पाचीनद्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे वसति। उत्तरद्वारं सन्धाय गच्छन्तं....विसाखापि......सुत्वा......गन्त्वा......"।

—(ध० प० ४१९, अ० क० २००)

[3] १४२ "अनाथपिण्डिकस्स घरे चतुत्थे द्वारकोट्ठके वसनक मिच्छादिट्ठिदेवता।......

—(जातक २८४, पृ० ६४९)

विशाखाका घर

विशाखाका श्वशुर मिगार सेठ श्रावस्तीके सबसे बड़े धनियोमें था। इसका भी मकान अनाथपिण्डकके मकानके पासमे ही था। क्योकि ऊपरके उद्धरणमे हम पाते हैं कि भगवान्‌के अनाथपिण्डकके घरसे उत्तरद्वारकी ओर जानेकी खबर तुरन्त विशाखाको लग गई। सम्भवत. पक्की कुटी या स्तूप "ए" विशाखाके घरको चिन्हित करते हैं।

राजमहल

यह (१) अचिरवती नदीके किनारे था क्योकि राजा प्रसेनजित् और मल्लिका देवीने अपने कोठेपरसे अचिरवतीमे खेलते-नहाते हुए छवर्गीय भिक्षुओको देखा। (२) पुब्बकोट्ठक[1] इससे बहुत दूर न था क्योकि राजाके नहानेके लिये यहाँ एक खास घाट था। (३) वह[2] विशाखाके घर और पूर्व-द्वारके बीचमें, पूर्वद्वारके समीप पडता था, क्योकि विशाखा राजाके पास वहाँ अधिक चुङ्गी लेनेके विपयमें फरियाद करने जाती है, फिर वहाँसे दूर न होनेकी वजह पूर्वाराम चली जाती है; तब भगवान्‌के मध्याह्नमेंही आनेका

---

[1] "कस्सपदसबलस्सकाले अचिरवती....उदकेन भिन्दित्वा महन्तं उदकदहं मापेसि समतित्थं अनुपुब्बगम्भीरं। तत्थ एको रञ्ञो नहान-तित्थं, एकं नागरानं, एकं भिक्खुसंघस्स, एकं बुद्धानन्ति....।"

—(म० नि० १।३।६, अ० क० ३७१)

[2] "विसाखाय....कोचिदेव अत्थो रञ्ञो पसेनदिम्हि....पटिबद्धो होति। तं राजा पसेनदि....न यथाधिप्पायं तीरेति। अथ खो विसाखा ....दिवादिवस्स उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा....निसीदि।... हन्त! कुतो नु त्वं विसाखे आगच्छसि दिवादिवस्स?"

—(उदान० २।९)

कारण पूछनेपर वह राजदर्बारके कामको बतलाती है। विशाखाका घर महा-वीथीपर अनाथपिण्डकके घरके पासही था, यह हम पहले बतला आये है। (४) राजा प्रसेनजित्‌के हाथीपर सवार होकर नगरसे बाहर जाते वक्त आनन्दसे पूर्वद्वारके बाहर भेंट होना भी बतलाता है कि राजमहल पूर्व-द्वारके समीप था। राजाकी यह यात्रा किसी विशेष कामके लिये न थी, अन्यथा उसे आनन्दसे अचिरवतीके किनारे पेड़के नीचे बैठकर व्याख्यान सुननेकी फुर्सत कहाँ होती? बिना कामके दिलबहलावके लिये नगरसे बाहर निकलनेमे उसका महलके नजदीक वाले दर्वाजेसे ही शहरके बाहर जाना अधिक सम्भव मालूम होता है। इन सब बातोपर विचार करनेसे मालूम होता है कि राजकीय प्रासाद उत्तरमें नौसहरा-दर्वाजेसे बाँकीदर्वाजे तक, और दक्षिणमें महावीथीके मकानसे गङ्गापुर-दर्वाजे तक था। यून्-च्वेङका[२] कहना है—"राजप्रासादसे थोडीही दूर पूर्वकी ओर एक स्तूप है जो पुरानी बुनियादो पर खड़ा है। यह वह स्थान है जहाँ राजा प्रसेनजित् द्वारा बुद्धके उपयोगके लिये बनवायी हुई शाला थी। इसके बाद एक बुर्ज है। यहीपर प्रजापतीका विहार था।" इसके अनुसार राजमहल राजकारामसे पश्चिम था। लेकिन ऐसा स्वीकार करनेपर, वह अचिर-वतीके किनारे नही हो सकता, जिसका प्रमाण अट्ठकथासे भी पुराने विनयग्रन्थोमे मिलता है।

---

[१] "जातिकुलतो....मणिमुत्तादिरचितं भण्डजातं तस्या पण्णाकारत्थाय पेसितं। तं नगरद्वारप्पत्तं सुङ्किका....सुंकं....अतिरेकं गण्हिंसु। दिवादिवस्साति....मज्झन्तिके कालेसि अत्थो। राजनिवेसनद्वारं गच्छन्ती तस्स अत्थस्स अनिट्ठितत्ता निरत्थकमेव उपसङ्कमि, भगवति उपसङ्कमनमेव पन....सत्थकन्ति....इमाय वेलाय इधागता'ति।
—[उ० अ० क० १०५ (११०)]

[२] Beal, pp. 92, 93.

कचहरी

हमें मालूम है, कि उत्तर द्वारसे नगरके भीतर होकर आते हुए भिक्षुओ-को 'विनिच्छयसाला' (कचहरी) मिली थी, जहाँ उन्होने जजोको घूस लेकर अन्याय करते देखा था। कचहरीका राजकीय महलके हलकेसे मिला हुआ होना अधिक सम्भव प्रतीत होता है। इस प्रकार यह कचहरी राजमहलके उत्तर-पश्चिमके कोणवाले भागपर नौसहरा-दर्वाजेके पास ही होगी।

महावीथी

(१) यह नगरकी प्रधान सड़क थी, यह इसके नामसे स्पष्ट है। (२) सुवण्णसामजातकमें[१] उल्लिखित धनी सेठका मकान, सम्भवतः अन्य सेठोकी भाँति, इसी महावीथीपर था। यह वीथी जेतवन जानेवाले द्वार—दक्षिणद्वार—को सीधी जाती थी, तभी तो वह सेठ अपने मकानसे लोगोको गन्धमाला लेकर भगवान्‌के दर्शनार्थ जाते हुए देखकर उनका जेतवन जाना निश्चित कर रहा है। (३) अनाथपिण्डकके मकानसे निकलते ही मालूम हो जाता था, कि भगवान् पूर्व दर्वाजेको जा रहे है, या उत्तरवाले दर्वाजेको। दक्षिणदर्वाजेको जानेवाली वीथी हमे मालूम ही है, जिसकी विशेषता इस समय भी स्पष्ट है। इस प्रकार दक्षिण (बाजार) दर्वाजेसे उत्तर मुँहको जो चौड़ी सड़कसी हमे मालूम पड रही है, यही महावीथी है; जिसके बारेमें कि डा० फोगलने सर्वे रिपोर्टमें[२] लिखा है।

---

[१] **"सावत्थियं किर अट्ठारसकोटिविभवस्स एकस्स सेट्ठिकुलस्स एकपुत्तो अहोसि। सो एकदिवसम्हि पासादवरगतो सीहपञ्जरं उग्घाटेत्वा महावीथियं ओलोकेन्तो गन्धमालादिहत्थं महाजनं धम्मस्सवनत्थाय जेतवनं गच्छन्तं दिस्वा....।**

—(सुवण्णसामजातक ५३९)

[२] "A Passage 12′ wide which gives access to a

दक्षिण दर्वाजेका बाजार-दर्वाजा नाम भी इस विषयमें खास अर्थ रखता है।

गण्डम्बरुक्ख

यद्यपि भगवान्के समयमें इस आमके[१] वृक्षका होना सम्भव नहीं है, किन्तु, परवर्ती कालमे इसका अधिक महत्त्व पाया जाना बिल्कुल निश्चित है। ५२२ ई० पू०की आषाढी पूर्णिमाके दिन नगरमें प्रवेश करनेपर, कहते हैं, गण्ड उद्यानपालने एक पका आम भगवान्को दिया। भगवान्ने खाकर उसे वहीं रोपवा दिया, और उनकी अद्भुत शक्तिसे वह उसी समय बडा वृक्ष हो गया। कुछ भी हो, परवर्तीकालमें बाजार-दर्वाजेके अन्दर बाजारके घरोसे पहिलेही, अर्थात् दर्वाजेसे थोड़ाही आगे एक आमका

---

broad path leading almost due north and widening out into a glade, which is situated south-east of the ruined temple known as the Kachhikuti,........ the Bazar Darwaza it seems to be the starting point of a broad street or bazar......"

A. S. R., 1907-8, p. 86

[१] "सत्था आसाळ्हिपुण्णमदिवसे अन्तोनगरं पाविसि। रञ्ञो उय्यानपालो गण्डो नाम....अम्बपक्कं......आदाय गच्छन्तो अन्तरामग्गे सत्थारं दिस्वा चिन्तेसि—राजा इमं अम्बं खादित्त्वा मय्हं अट्ठ वा सोलस वा कहापणे ददेय्य।....सो तं अम्बं सत्थु उपनामेसि।....सत्था....अम्बपानकंपिबित्वा गण्डं आह—इमं अम्बट्ठिं इधेव......रोपेहीति।....हत्थे धोतमत्ते येव....पण्णासहत्थो अम्बरुक्खो....पुप्फफलसंछन्नो हुत्वा......।"

—(ध० प० १४२, अ० क० ४४८)

वृक्ष था, जो इस प्रकारके चमत्कारका स्मारक था। इस स्थानपर भी कोई स्तूप अवश्य रहा होगा। सम्भवत. यह वृक्ष महावीथीसे राजकाराम जानेवाले मोड़पर ही था।

पञ्चछिद्दकगेह, ब्राह्मणवाटक

पञ्चछिद्दकगेह भी एक बड़े चमत्कारका स्थान है। चमत्कारिक स्थानोंके लिये जनताका अधिक उत्साह सभी धर्मोंमे देखा जाता है। इसका 'पञ्चछिद्दकगेह' नाम कैसे पडा, यह अट्ठकथा[१] में दिया गया है। यद्यपि ऐसे किसी स्थानका वर्णन फाहियान और युन्-च्वेङ्गमेसे किसीने नही किया है; तोभी यह स्थविरवादियोकी पुरानी परम्परापर अवलम्बित है। युन्च्वेङ्गके समयमे भी श्रावस्ती और उसके आसपासके विहार साम्मितीय सम्प्रदायके भिक्षुओके आधीन थे जो कि हीनयानी थे, और महायानकी अपेक्षा विभज्जवाद (स्थविरवाद)से बहुत मिलतेजुलते थे। वस्तुतः युन्-च्वेङ्गका वर्णन श्रावस्तीके विषयमें अत्यन्त संक्षिप्त

---

[१] "एका किर ब्राह्मणी चतुन्नं भिक्खूनं उद्देसभत्तं सज्जेत्वा ब्राह्मणं आह—विहारं गन्त्वा चत्तारो महल्लकब्राह्मणे उद्दिसित्वा आनेहीति। ....। तत्थ संकिच्चो, पण्डितो, सोपाको, रेवतोति सत्तवस्सिका चत्तारो खीणासवसामणेरा पापुणिंसु। ब्राह्मणी सामणेरे दिस्वा कुपिता। अथ तेसं गुणतेजेन (सक्को) जराजिण्णमहल्लकब्राह्मणो हुत्वा तस्मिं ब्राह्मणवाटके ब्राह्मणानं अग्गासने निसीदि। ब्राह्मणो....तं आदाय गेहं अगमासि। ....पञ्च' पि जना आहारं गहेत्वा एको कण्णिकामंडलं विनिविज्झित्वा एको छदनस्स पुरिमभागं एको पच्छिमभागं एको पठविया निमुज्जित्वा सक्कोपि एकेन ठानेन निक्खमित्वाति एवं पञ्चधा अगमंसु। ततो पट्ठाय च पन तं गेहं पञ्चछिद्दकगेहं किर नाम जातं।"

—(ध० प० २६।२३, अ० क० ६६३, ६६४)

है, इसलिये पञ्चछिद्रगेहका छूट जाना स्वाभाविक है। कथा यों है—"एक ब्राह्मणीने बड़े स्थविरोको निमन्त्रित किया। सात वर्षके लड़कों-को आया देखकर ब्राह्मणी असन्तुष्ट हुई। फिर उसने अपने पतिको ब्राह्मणवाटसे ब्राह्मण लेनेको भेजा। उन श्रामणेरोंके तपोबलसे शक्र वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर ब्राह्मणवाटमें ब्राह्मणोके बीच अग्रासनपर जाकर बैठ गया। ब्राह्मण शक्रको लेकर घर लौटा। चार श्रामणेर और शक्र भोजन कर पाँच ओरसे निकल गये। श्रामणेरोमेंसे एक कोनियामें घुसकर निकल गया; एक छाजनके पूर्व भागमें, एक पश्चिम भागमे और एक पृथ्वीमें शक्र भी किसी स्थानसे बाहर चला गया। उस दिनसे उस घरका नाम पञ्चछिद्रकगेह पड गया।" यह ब्राह्मणवाट शायद श्रावस्तीमे ब्राह्मणोका कोई विशेष पवित्र स्थान था, जहाँ ब्राह्मण इकट्ठे हुआ करते थे। घुसुंडी (पुरातन माध्यमिका)के पास के ई० पू० द्वितीय शताब्दीके शिलालेखमे[1] 'नारायणवाट' शब्द आया है। 'यज्ञवाट' भी इसी प्रकारका एक शब्द है। 'वाट' शब्द विशेषकर पवित्र स्थानोंके लिये प्रयुक्त होता था। यह ब्राह्मणवाट कहाँ था, यद्यपि इसके लिये और कोई निश्चित प्रमाण हमारे पास नहीं है, तथापि अनुमान किया जा सकता है, कि यह ब्राह्मणोंके लिये बहुतही पवित्र स्थान रहा होगा। यद्यपि छठी शताब्दी ई० पू० (वि० पू० ४४३–५४२)में यज्ञोंका युग था, अभी मूर्तिपूजा आरम्भ न हुई थी; तोभी मूर्तिपूजाके युगमे इस स्थान की पवित्रताका ख्याल कर अवश्य इसे भी उपयुक्त बनाया गया होगा। हम देख आये हैं, कि श्रावस्तीके दक्षिण दीवारसे सटे हुए वैतारा-दर्वाजेसे शोभनाथ-दर्वाजे तककी भूमि हिन्दू और जैन मन्दिरों-के लिये सुरक्षित थी। भिक्षुणियोके आराम (राजकाराम)को भी हमने यही निश्चित किया है। ऐसी हालतमें राजकाराम और जैन मन्दिरोंके

[1] श्री काशीप्रसाद जायसवाल, एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १६, पृ० २७

बीचकी भूमि, जिसमें कि हिन्दू मन्दिर स्थित है, अधिकतर ब्राह्मणवाट होनेके लायक है। इसके अतिरिक्त दूसरा उपयुक्त स्थान ब्राह्मणवाटके लिये अचिरवतीके किनारेकी तरफ सूर्यकुण्ड या मीरासैयदकी कब्रकी जगहों-पर, ढूंढा जा सकता है।

सड़कें

महावीथीके अतिरिक्त एक ही और सड़क है, जिसका हमें पता है। यह है अनाथपिण्डकके घरसे पूर्वद्वारको जानेवाली।

चुङ्गीकी चौकियाँ

हम देख चुके हैं, कि नगरके दर्वाजोंपर चुङ्गीकी चौकियाँ थीं। चुङ्गी-वालोंने अधिक चुङ्गी ले ली थी, जिसके लिये विशाखाको राजाके पास जाना पडा था।

नगरके भीतर सम्बन्ध रखनेवाले स्थानोंमेंसे जिन जिनके विषयमें त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओमे कुछ आया है, उनका हम वर्णन कर चुके हैं। बाहरवाले स्थानोमे सबसे प्रधान है जेतवन। उसके बाद पूर्वाराम, समयप्पवादकआराम, अन्धवन, ये तीन स्थान है, जिनका वर्णन हमें त्रिपिटक और अट्ठकथामे मिलता है।

---

(५)

जेतवन

जेतवन श्रावस्तीसे दक्षिण तरफ था; चीनी भिक्षुओके अनुसार यह प्राय: एक मील (५, ६, ७ ली)के फासले पर था। पुरातत्त्व-विषयक खोजोसे निश्चित हो चुका है कि **महेट**से दक्षिण **सहेट** ही जेतवन है। चीनी यात्रियोके ग्रन्थोमे हम इसका दर्वाजा पूर्व मुँह देखते है। जेतवनकी खुदाई-मे जो दो प्रधान इमारते निकली है, जिन्हे गधकुटी और कोसबकुटीसे मिलाया गया है, उनका भी द्वार पूर्वको ही है। यह इस बातकी साक्षी देते है कि मुख्य द्वार पूर्व तरफ था। नगरसे दक्षिण होनेपर भी प्रधान दर्वाजा उत्तर मुँह न होकर पूर्व मुँह था, इसका कारण यही था कि श्रावस्तीका दक्षिण द्वार वहाँसे पूर्व तरफ पडता था। जेतवन बौद्धधर्मके अत्यन पवित्र स्थानो-मेसे है। यद्यपि त्रिपिटकके अत्यन पुरातन भाग **दीघनिकाय** (महापरि-निब्बानसुत्त[1])मे जो चार अत्यत पवित्र स्थान गिनाए गए है, उनमे इसका नाम नही है; तो भी दीघनिकायकी **अट्ठकथा**[2]मे इसे चार 'अविजहित'

---

[1] **चत्तारिमानि आनंद ! सद्धस्सकुलपुत्तस्स दस्सनीयानि....ठानानि... इध तथागतो जातोति,....इध तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधि अभिसम्बुद्धोति,....इध तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितन्ति,....इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बाणधातुया परिनिब्बुतोति...।**

—महा० परि० सुत्त, १६

[2] **चत्तारि अविजहितट्ठानानि....बोधिपल्लङ्को....। धम्मचक्कप्पवत्तन-ट्ठानं इसिपतने मिगदाये....। देवो रोहणकाले संकस्सनगरद्वारे पठमपद-**

स्थानोमे रखा है। त्रिपिटकमे सुरक्षित बुद्धके उपदेशोंमे सबसे अधिक जेतवनमे हुए है। **मज्झिमनिकाय**के डेढ सौ सुत्तोमे ६५ जेतवन हीमे कहे गए, संयुक्त और अंगुत्तर निकायमे तो तीन चतुर्थांशसे भी अधिक सुत्त जेतवनमे ही कहे गए है। भिक्षुओके शिक्षापदोमे भी अधिकतर श्रावस्ती—जेतवनमे ही दिए गए है। विनयपिटकके **'परिवार'**ने नगरोके हिसाबसे उनकी सूची इस प्रकार दी है—

कतमेसु सत्तासु नगरेसु पञ्ञत्ता ।

....

दस वेसालियं पञ्ञत्ता, एकवीसं राजगहे कता ।
छ-ऊन-तीनि सतानि, सब्बे सावत्थियं कता ॥
छ आलवियं पञ्ञत्ता, अट्ठ कोसंबियं कता ।
अट्ठ सक्केसु वुच्चन्ति, तयो भग्गेसु पञ्ञत्ता ॥

—परिवार, गाथासंगणिक ।

अर्थात् साढे तीन सौ शिक्षापदोमे २९४ श्रावस्तीमे ही दिए गए। और परीक्षण करनेपर इनमेसे थोड़ेसे ही **पूर्वाराम**में और बाकी सभी जेतवन हीमे दिए गए। इसलिये जेतवनका[1] खास स्थान होना ही चाहिये।

विनयपिटकके चुल्लवग्गमे जेतवनके बनाए जानेका इतिहास दिया गया है। विनयपिटककी पाँच पुस्तके है—**पाराजिक, पाचित्ति, महावग्ग, चुल्लवग्ग**

गण्ठि । जेतवने गन्धकुटिया चत्तारि मञ्चपादट्ठानानि अविजहितानेव होन्ति । . विहारोपि न विजहति येव.. । इदानि नगरं उत्तरतो विहारो दक्खिणतो....।

—दी० नि०, महापदानसुत्त, १४; अ० क० २८२

[1]**इदंहि तं जेतवनं इसिसघनिसेवितं ।**
आउट्ठं धम्मराजेन पीतिसंजननं मम ॥

—सं० नि०, १:५:८, २.२.१०

लाया हुआ हिरण्य द्वारके कोठेके बराबर थोडीसी जगहके लिये काफी न हुआ। गृहपतिने और **हिरण्य** (=अशर्फी) लानेके लिये मनुष्योको आज्ञा दी। राजकुमार जेतने कहा—बस गृहपति, इस जगहपर मत बिछाओ। यह जगह मुझे दो, यह मेरा दान होगा। गृहपतिने उस जगहको जेत कुमार-को दे दिया। जेत कुमारने वहाँ कोठा बनवाया। अनाथपिडक गृहपतिने जेतवनमे विहार, परिवेण, कोठे, उपस्थानशाला, कप्पिय-कुटी, पाखाना, पेशाबखाना, चंक्रम, चंक्रमणशाला, उदपान, उदपानशाला, जताघर, जताघरशाला, पुष्करिणियाँ और मडप बनवाए। भगवान् धीरे धीरे चारिका करते श्रावस्ती, जेतवनमे पहुँचे। गृहपतिने उन्हे खाद्य भोज्यमे अपने हाथो तर्पितकर, जेतवनको आगत अनागत चातुर्दिश सघके लिये दान किया।"

अनाथपिडकने 'कोटिसथारेन" (कार्षापणोकी कोरसे कोर मिलाकर) इसे खरीदा था। ई० पू० तृतीय शताब्दीके भरहुतके स्तूपमे भी 'कोटि-मठनेन केता' उत्कीर्ण है। अतः यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि कार्षापण बिछाकर जेतवन खरीद करनेकी कथा ई० पू० तीसरी शताब्दीमे प्रसिद्ध थी।

पाली ग्रन्थो[1]मे जेतवनकी भूमि आठ करीप लिखी है। 'करीसं चतुर-म्मण' पालिकोष **अभिधम्मप्पदीपिका** (१९७) मे आता है। डाक्टर **रीस डेविड्सने** 'अम्मण' (सिहली अमुण, स० अर्मण) को प्रायः दो एकडके बराबर लिखा है। इस प्रकार सारा क्षेत्रफल ६४ एकड होगा। श्री दयाराम साहनीने (१९०७-८ की Arch. S. R, p 117) लिखा है—

"The more conspicuous part of the mound at the present is 1600 feet from the north-east corner to the south-west, and varies in width from 450′ to

[1] **देखो उपर्युक्त चुल्लवग्गकी अट्ठकथा।**

और **परिवार**। इनमेसे **परिवार तो पहले चारोंका सरल संग्रह मात्र है।** सग्रह-समाप्ति ईसाकी प्रथम या द्वितीय शताब्दीमे हुई जान पड़ती है। किंतु बाकी चार उससे पुराने है। इनमे भी महावग्ग और चुल्लवग्ग, जिन्हे इकट्ठा **'खधक'** भी कहते है, पातिमोक्खको छोड विनयपिटकके सबसे पुराने भाग है; और इनका प्राय. सभी अश **अशोक** (तृतीय सगीति) के समयका मानना चाहिये। चुल्लवग्ग[१] की कथा यो है—

"अनाथपिडक गृहपति राजगृहके **श्रेष्ठी**का वहनोई था। एक बार अनाथपिडक **राजगृह** गया। उस समय राजगृहके श्रेष्ठीने सघ-सहित बुद्धको निमत्रित किया था। अनाथपिडकको बुद्धके दर्शनकी इच्छा हुई। वह अधिक रात रहते ही घरसे निकल पडा और **सीवद्वार**से होकर सीतवन पहुँचा। उपासक बननेके बाद उसने सावत्थीमे भिक्षु-सघ सहित बुद्धको, वर्षा-वास करनेके लिये, निमत्रित किया। अनाथपिडकने श्रावस्ती जाकर चारो ओर नजर दौडाई। उसने विचार किया कि भगवान्का विहार ऐसे स्थानमे होना चाहिये, जो ग्रामसे न वहुत दूर और न बहुत समीप हो। जहाँ आने जानेकी आसानी हो, आदमियोके पहुँचने योग्य हो। जहाँ दिनमे बहुत जमघट न हो और जो रातमें एकात और ध्यानके अनुकूल हो। अनाथपिडकने राजकुमार **जेत**के उद्यानको देखा जो इन लक्षणोसे युक्त था। उसने राजकुमार जेतसे कहा—आर्यपुत्र! मुझे अपना उद्यान आराम बनानेके लिये दो। राजकुमारने कहा—वह (कहापणोंकी) कोटि (=कोर) लगाकर बिछानेसे भी अदेय है। अनाथपिडकने कहा—आर्यपुत्र! मैंने आराम ले लिया। बिका या नही बिका इसके लिये उन्होने कानूनके मत्रियोसे पूछा। महामात्योने कहा—आर्यपुत्र! आराम बिक गया, क्योंकि तुमने मोल किया। फिर अनाथ-पिडकने जेतवनमे कोरसे कोर मिलाकर मोहरे बिछा दी। एक बारका

---

[१] **विनयपिटक सेनासनक्खन्धक, पृ० २५४**

700′, but it formerly extended for several hundred feet further in the eastern direction".

इस हिसाबसे क्षेत्रफल बाईस एकड होना है। यद्यपि अठारह करोड संख्या संदिग्ध है तो भी इसे कार्षापण मानकर (जिसका ही व्यवहार उस समय अधिक प्रचलित था) देखनेसे भी हमे इस क्षेत्रफलका कुछ अनुमान हो सकता है। पुराने 'पंचमार्क' चौकोर कार्षापणोंकी लंबाई-चौडाई यद्यपि एक समान नहीं है, तो भी हम उसे सामान्यत ·७ इंच ले सकते है, इस प्रकार एक कार्षापणसे ·४९ या ½ वर्ग इंच भूमि ढक सकती है, अर्थात् १८ करोड कार्षापणोंसे ९ करोड वर्ग इंच, जो प्राय· १४·३५ एकडके होते हैं[1]। आगे चलकर, जैसा कि हम बतलाएँगे, विहार नं० १९ और उसके आस-पासकी भूमि जेतवनकी नहीं है, इस प्रकार क्षेत्रफल १२००′×६००′ अर्थात् १४·७ एकड रह जाता है, जो १८ करोडके हिसाब-के समीप है। गंधकुटी जेतवनके प्राय. बीचोबीच थी। खेत नं० ४८७ जेतवनकी पुष्करिणी है, क्योंकि नकशा नं० १ का डॉ० इसीका संकेत करता है। आगे हम बतलाएँगे कि पुष्करिणी जेतवन विहारके दर्वाजेके बाहर थी। पुष्करिणीके बाद पूर्व तरफ जेतवनकी भूमि होनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती। इस प्रकार गंधकुटीके बीचोबीचसे ४०० फीट पर, पुष्करिणी-की पूर्वीय सीमाके कुछ आगे बढकर जेतवनकी पूर्वीय सीमा थी। उतना ही पश्चिम तरफ मान लेनेपर पूर्व-पश्चिमकी चौडाई ८००′ होगी। लंबाई जाननेके लिये जेतवन खास के विहार नं० ५ (**कारेरि** गंधकुटी)को सीमापर रखना चाहिये। गंधकुटीसे दक्षिण ६८०′ उतना ही उत्तर ले लेनेसे लंबाई उत्तर-दक्षिण १३६०′ होगी, इस प्रकार सारा क्षेत्रफल

---

[1] दीघनिकाय अट्ठकथा, महापदानसुत्त, २८। "अम्हाकं पन भगवतो पकतिमानेन सोळसकरीसे, राजमानेन अट्ठ करीसे पदेसे विहारो पतिट्ठितोति।"

प्राय. २५ एकड़के होगा। इस परिणामपर पहुँचनेके लिये हमारे पास तीन कारण हैं---(क) गधकुटी जेतवनके बीचोबीच थी, जेतवन वर्गाकर था, इसके लिये कोई प्रमाण न तो लेखमे है और न भूमिपर ही। इसलिये जेतवनको एक आयत क्षेत्र मानकर हम उसके बीचोबीच गधकुटीको मान सकते है। (ख) गधकुटीके पूर्व तरफका डी० ही पुष्करिणीका स्थान मालूम होता है, जिसकी पूर्वीय सीमासे जेतवन बहुत दूर नही जा सकता। (ग) विहार न० १९को राजकाराम मान लेनेपर जेतवनकी सीमा विहार न० ५ तक जा सकती है।

ऊपरके वर्णनसे हम निम्न परिणामपर पहुँचते हैं---

(१) १८ करोड कार्षापण विछानेमे १८·३४८ एकड
(२) साहनीके अनुसार वर्तमानमें २२·२ एकड (१६००′×६००′)
(३) उसमेसे राजकाराम निकाल देनेपर१४ ७ ए० (१२००′×६००′)
(४) गधकुटी, पुष्करिणी, कारेरि कुटीसे २४·९ ए० (१३६०′×८००′)
(५) ८ करीस १, २ (अम्मण--२ एकड़) ६४ एकड

एक और तरहसे भी इस क्षेत्रफलके बारेमे विचार कर सकते हैं। करीस[1] (सस्कृत खारीक) का परिमाण **अभिधानप्पदीपिका** और लीलावती-मे इस प्रकार दिया है---

४ कुडव या पसत (पसर) = १ पत्थ	४ कुडव = प्रस्थ
४ पत्थ = १ आळ्हक	४ प्रस्थ = आढक
४ आळ्हक = १ दोण	४ आढक = द्रोण

[1] **परमत्थजोतिका** II, p. 476. "**तत्थ वीसतिखारिकोति, मागधकेन पत्थेन चत्तारो पत्था कोसलरट्ठेकपत्थो होति, तेन पत्थेन चत्तारो पत्था आढ़कं, चत्तारि आढ़कानि दोणं, चतुदोणं मानिका, चतुमानिकं खारि, ताय खारिया वीसति खारिको तिलवाहोति; तिलसकटं।**"

४ दोण = १ माणी

४ माणी = १ खारी   १६ द्रोण = खारी

विनयमें ४ **कहापण**का एक कस लिखा है। कंसको कर्ष मान लेनेपर यह वजन और भी चौगुना हो जायगा, अर्थात् १६ मनसे भी ऊपर। ऊपरके नाममें २० खारीका एक तिलवाह, अर्थात् तिलो भरी गाड़ी माना है, जो इस हिसाबसे अवश्य ही गाड़ीके लिये असंभव हो जायगा।

सुत्त० नि० अट्ठकथामें कोसलक परिमाण इस प्रकार है।

४ मागधक पत्थ = कोसलक पत्थ

४ को० पत्थ = को० आढ़क

४ को० आ० = को० दोण

४ को० दो० = को० मानिका

४ को० मा० = खारी

२० खारी = १ तिलवाह (=तिलसकट अर्थात् तिल से लदी गाड़ी)

वाचस्पत्यके उद्धरणसे यह भी मालूम होता है कि ४ पल एक कुडवके बराबर है। **लीलावती**ने पलका मान इस प्रकार दिया है—

५ गुजा = माष

१६ माष = कर्ष

४ कर्ष = पल

अभिधानप्पदीपिकासे यहाँ भेद पड़ता है—

४ वीहि (व्रीहि) = गुजा

२ गुजा = माषक

माषक कर्ष (=कार्षापण)का सोलहवाँ भाग है। **विनय**[1] में २० मासेका कहापण (=कार्षापण) लिखा है। **समंतपासादिका**

---

[1] **विनयपिटक पाराजिका, २**

ने इसपर टीका करते हुए इससे कम वजनवाले रुद्रदामा आदिके कार्षापणो का निर्देश किया है तो भी हमे यहाँ उनसे प्रयोजन नही। हम इतना जानते है कि पुराने पंच-मार्कके कार्षापण सिक्कोका वजन प्रायः १४६ ग्रेनके बराबर होता है। यही वजन उस समयके कर्षका भी है। आजकल भारतीय सेर ८० तोलेका है, और तोला १८० ग्रेनके बराबर होता है। इस प्रकार एक मागध खारी आजकलके ४१.८ सेरके बराबर, अर्थात् प्राय. १ मन होगी और कोसलक खारी ४ मनके करीब। करीसका सस्कृत पर्याय खारीक अर्थात् खारी भर बीजसे बोया जानेवाला खेत (तस्य वाप', **पाणिनि** ५: १: ४५) है। पटनामे पक्के ८ मन तेरह सेर धानसे आजकल १६ एकड खेत बोया जा सकता है, इससे भी हमें, जेतवनकी भूमिका परिमाण, एक प्रकारसे, मिलता है।

राजकाराम (सललागार)—अब हमे जेतवनकी सीमाके विषयमे एक बार फिर कुछ बातोको साफ कर देना है। हमने पीछे कहा था कि विहार न० १९ जेतवन-खासके भीतर नही था। **सयुत्त-निकाय**[१] मे आता है—एक बार भगवान् श्रावस्तीके राजकाराममे विहार करते थे। उस समय एक हजार भिक्षुणियोका संघ भगवान्के पास गया। इसपर **अट्ठकथामें** लिखा है—राजा **प्रसेनजित्** द्वारा बनवाए जानेके कारण इसका नाम राजकाराम पडा था। बोधिके पहले भाग (५२७१३ ई० पू०)मे भगवान्के महान् लाभ-सत्कारको देखकर तीर्थिक लोगोने सोचा, यह इतनी पूजा शील-समाधिके कारण नही है। यह तो इसी भूमिका माहात्म्य है। यदि हम भी जेतवनके पास अपना आराम बना सके तो हमे भी लाभ-सत्कार प्राप्त होगा। तीर्थिकोने अपने सेवकोसे कहकर एक लाख कार्षापण इकट्ठा किया। फिर राजाको घूस देकर जेतवनके

---

[१] **सोतापत्ति-संयुत्तं** IV, Chapter II **सहस्सक** or **राजकाराम-वग्ग** V, p. 360

पास तीर्थिकाराम बनवानेकी आज्ञा ले ली। उन्होने जाकर, खंभे खडे करते हुए, हल्ला करना शुरू किया। बुद्धने गधकुटीसे निकलकर बाहरके चबूतरेपर खडे हो आनदसे पूछा—ये कौन है आनद! मानो केवट मछली मार रहे हों। आनदने कहा—तीर्थिक जेतवनके पासमे तीर्थिकाराम बना रहे है। आनद! ये शासनके विरोधी भिक्षु-सघके विहारमे गडबड डालेगे। राजासे कह कर हटा दो। आनद भिक्षु-सघके साथ राजाके पास पहुँचे। घूस खानेके कारण राजा बाहर न निकला। फिर शास्ताने सारिपुत्त और मोग्गलानको भेजा। राजा उनके भी सामने न आया। दूसरे दिन बुद्ध स्वय भिक्षु-सघ सहित पहुँचे। भोजनके बाद उपदेश दिया और अतमे कहा—महाराज! प्रव्रजितोको आपसमे लडाना अच्छा नही है। राजाने आदमियोको भेजकर वहाँसे तीर्थिकोको निकाल दिया और यह सोचा कि मेरा बनवाया कोई विहार नहीं है, इसलिये इसी स्थानपर विहार बनवाऊँ। इस प्रकार धन वापिस किए बिना ही वहाँ विहार बनवाया।

जातकट्ठकथा (निदान)मे भी यह कथा आई है, जहाँसे हमे कुछ और बाते भी मालूम होती है।

तीर्थिकोने जबूद्वीपके सर्वोत्तम स्थानपर बसना ही श्रमण गौतम के लाभ-सत्कारका कारण समझा और जेतवनके **पीछेकी ओर** तीर्थिकाराम बनवानेका निश्चय किया। घूस देकर राजाको अपनी रायमे करके, बढइयोको बुलाकर, उन्होने आराम बनवाना आरभ कर दिया।

इन उद्धरणोसे हमे पता लगता है—(१) जेतवनके पीछेकी ओर पासहीमे, जहाँसे काम करनेवालोका शब्द गधकुटीमे बैठे बुद्धको खूब सुनाई देता था, तीर्थिकोने अपना आराम बनाना आरंभ किया था। (२) जिसे राजाने पीछे बद करा दिया। (३) राजाने वही आराम बनवाकर भिक्षु-सघको अर्पण किया। (४) यह आराम प्रसेनजित् द्वारा बनवाया पहला आराम था। नकशेमे देखनेसे हमें मालूम होता

है कि विहार न० १९ जेतवनके पीछे और गंधकुटीसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर है। फासला गंधकुटीसे प्राय. ९० फीट, तथा जेतवनकी दक्षिण-पूर्व सीमासे बिल्कुल लगा हुआ है। इस प्रकारका दूसरा कोई स्थान नहीं है, जिसपर उपर्युक्त बाते लागू हो। इस प्रकार विहार न० १९ ही राजकाराम है, जो मुख्य जेतवनसे अलग था।

इस विहारका हम एक जगह और (**जातकट्ठकथा**मे) उल्लेख पाते है। यहा उसे **जेतवन-पिट्ठि विहार** अर्थात् जेतवनके पीछे वाला विहार कहा है। मालूम होता है, जेतवन और इस 'पिट्ठि विहार'के बीचमें होकर उस समय रास्ता जाता था। दोनो विहारोके बीचसे एक मार्ग-के जानेका पता हमे **धम्मपदट्ठकथा**से भी लगता है। राजकाराम जेतवन-के समीप था। उसे प्रसेनजित्ने बनवाया था। एक बार उसमे भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाकी परिषद्मे बैठे हुए, बुद्ध धर्मोपदेश कर रहे थे। भिक्षुओने आवेशमे आकर "जीवे भगवान् जीवे सुगत" इस तरह जोरसे नारा लगाया। इस शब्दसे कथामे बाधा पडी। यहाँ स्पष्ट मालूम होता है कि यह राजकाराम अच्छा लम्बा-चौडा था।

ई० पू० छठी शताब्दीकी बनी इमारतोके ढाँचेमे न जाने कितनी बार परिवर्तन हुआ होगा। तीर्थिकाराम बनानेके वर्णनमे खभे उठाने और बढईसे ही काम आरभ करनेसे हम जानते है कि उस समय सभी मकान लकडीके ही अधिक बनते थे। जगलोकी अधिकतासे इसमे आसानी भी थी। ऐसी हालतमे लकडीके मकानोका कम टिकाऊ होना उनके चिन्ह पानेके लिये और भी बाधक है। तथापि मौर्य-तलसे नीचे खुदाई करनेमे हमे शायद ऐसे कुछ चिन्होंके पानेमे सफलता हो। अस्तु, इतना हम जानते है कि जहाँ कही बुद्ध कुछ दिनके लिये निवास करते थे वहाँ उनकी गंधकुटी[1] अवश्य होती थी। यह गंधकुटी बहुत ही पवित्र समझी

---

[1] **बुद्धके निवासकी कोठरीको पहले विहार ही कहते थे। पीछे,**

जाती थी, इसलिये सभी गधकुटियोकी स्मृतिको बराबर कायम रखना स्वाभाविक है। जेतवनके नकशेमे हम विहार न० १,२,३,५, और १९ एक विशेष तरहके स्थान पाते हैं। विहार न० १९ के पश्चिमी भागके बीचकी परिक्रमावाली इमारतके स्थान पर ही राजकाराममे बुद्धकी गंधकुटी थी।

आगे हम जेतवनके भीतरकी चार इमारतोमे 'सललागार'को भी एक बतलाएँगे। **दीघनिकाय**मे आता है—"एक बार भगवान् श्रावस्ती-के सललागारकमें विहार करते थे।" इसपर अट्ठकथामे लिखा है—"सलल (वृक्ष) की बनी गधकुटीमे।" **सयुत्तनिकाय**मे भी—"एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्तीके सललागारमे विहार करते थे।" इसपर **अट्ठकथामे**—"सलल-वृक्ष-मयी पर्णशाला, या सललवृक्षके द्वारपर रहनेसे इस नामका घर।" **दीघनिकाय**की **अट्ठकथा**के अनुसार "सललघर राजा प्रसेनजित्का बनवाया हुआ था।"

(१) सयुत्त और दीघ दोनो निकायोमे सललागारके साथ जेतवन-का नाम न आकर, सिर्फ श्रावस्तीका नाम आना बतलाता है कि सललागार जेतवनसे बाहर था। (२) सललागारका अट्ठकथामे सलल-घर हो जाना मामूली बात है। (३) (क) सललघर राजा प्रसेनजित्-का बनवाया था; (ख) जो यदि जेतवनमे नही था तो कमसे कम जेतवन-के बहुत ही समीप था, जिससे अट्ठकथाकी परपराके समय वह जेतवन-के अतर्गत समझा जाने लगा।

हम ऐसे स्थान राजकाराम (विहार नं० १९)को बतला चुके है, जो आज भी देखनेमे जेतवनसे बाहर नही जान पडता। इस प्रकार सलला-गार राजकारामका ही दूसरा नाम प्रतीत होता है। श्रावस्तीके भीतर भिक्षुणियोका आराम भी, राजा प्रसेनजित्का बनवाया होनेके कारण,

---

मालूम होता है, उसपर फूल तथा दूसरी सुगंधित चीजें चढ़ाई जानेके कारण वह विहार 'गंधकुटी' कहा जाने लगा।

'राजकाराम' कहा जाता था; इसी लिये यह सललागार या सललघर-के नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

गंधकुटी—जेतवनके भीतरकी अन्य इमारतों पर विचार करनेसेपूर्व, गधकुटीका जानना आवश्यक है, क्योकि इसे जान लेनेसे और स्थानों-के जाननेमे आसानी होगी । वैसे तो सारा जेतवन ही 'अविजहितट्ठान' माना गया है, किंतु जेतवनमे गधकुटी[1]की चारपाईके चारो पैरोके स्थान **'अविजहित'** है, अर्थात् सभी अतीत और अनागत बुद्ध इसको नही छोडते । कुटी का द्वार किस दिशाको था, इसके लिये कोई प्रमाण हमें नही मिला । तो भी पूर्व दिशाकी विशेषताको देखते हुए पूर्व मुँह होना ही अधिक संभव प्रतीत होता है । जहाँ इस विषय पर पाली स्रोतसे हम कुछ नही पाते, वहाँ यह बात सतोष की है कि सहेटके अदरके विहार न० १,२,३,५,१९ पाँचो ही विशेष मदिरोका द्वार पूर्व मुखको है । इसीलिये मुख्य दर्वाजा भी पूर्व मुँहहीको रहा होगा । यहाँ एक छोटीसी घटना से, मालूम होता है कि दो स्त्री-पुरुष पानी पीनेके लिये जब जेतवनके भीतर घुसे, तब उन्होंने बुद्धको गधकुटीकी छायामे बैठे देखा। विहार नं २ के दक्षिण-पूर्व-का कुआँ यद्यपि **सर जान मार्शल**[2]के कथनानुसार कुषाण-कालका है, तो भी तथागतके परिभुक्त कुएँकी पवित्रता कोई ऐसी-वैसी वस्तु नही, जिसे गिर जाने दिया गया हो । यदि इसकी ईटे कुषाण-कालकी है, तो उससे यही सिद्ध हो सकता है कि ईसाकी आरभिक शताब्दियोमे इसकी अतिम मरम्मत हुई थी । दोपहरके बाद गधकुटीकी छायामें बैठे हुए, बुद्धके लिये दर्वाजेकी तरफसे कुएँ पर पानी पीनेके लिये जानेवाला पुरुष सामने पडेगा, यह स्पष्ट ही है ।

---

[1] **"जेतवन गंधकुटिया चत्तारि मंचपावट्ठानानि अविजहितानेव होन्ति ।"—दी० नि०, महापदान सुत्त, १४, अ० क० ।**

[2] A.S.I. Report, 1910-11

गंधकुटी अपने समयकी सुदर इमारत होगी । **संयुत्तनिकायकी अट्ठकथा**[1]में इसे देवविमानके समान लिखा है । भरहुत स्तूपके जेतवन-चित्रमे इसकी कुछ कल्पना हो सकती है । गधकुटीके बाहर एक चबूतरा (पमुख) था, जिससे गधकुटीका द्वार कुछ और ऊँचा था। इसपर चढनेके लिये सीढियाँ थीं । पमुखके नीचे खुला आँगन था । चबूतरेको 'गधकुटी पमुख' कहा है । भोजनोपरान यहाँ खडे होकर तथागत भिक्षु-सघको उपदेश देते हुए अनेक बार वर्णित किए गए है । मध्यान्हभोजनोपरात भगवान् पमुखपर खडे हो जाते थे, फिर सारे भिक्षु वंदना करते थे, इसके बाद उन्हे सुगतोपदेश देकर बुद्ध भी गधकुटीमे चले जाते थे ।

सोपानफलक—गधकुटीमे जानेसे पहले, **मणिसोपानफलक**पर खडे होकर, भिक्षु-सघको उपदेश देनेका भी वर्णन आता है । अकाल-मे वर्षा करानेके चमत्कारके समयके वर्णनमे आता है कि बुद्धने वर्षा करा, "पुष्करिणीमे नहाकर लाल दुपट्टा पहन कमरबद बांध, सुगतमहा-चीवरको एक कधा (खुला रख) पहन, भिक्षु-सघमे चारो तरफ घिरे हुए जाकर गधकुटीके आँगनमे रखे हुए श्रेष्ठ बुद्धासनपर बैठकर, भिक्षु-सघके वदना करनेपर उठकर मणिसोपानफलकपर खड़े हो, भिक्षु-सघ-को उपदेश दे, उत्साहित कर सुरभि-गधकुटीमे प्रवेशकर..." यह सोपान सभवत. पमुखसे गधकुटी-द्वारपर चढनेके लिये था, क्योंकि अन्यत्र इस मणिसोपानफलकको गधकुटीके द्वार पर देखते है—"**एक दिन** रात को गधकुटीके द्वारपर मणिसोपानफलकपर खड़े हो भिक्षु-सघ-को सुगतोवाद दे गधकुटीमें प्रवेश करने पर, धम्मसेनापति (=सारि-पुत्र) भी शास्ताको वदनाकर अपने परिवेणको चले गए । महामोग्ग-लान भी अपने परिवेणको ....।"

गंधकुटी-परिवेण—मालूम होता है, पमुख थोडा ही चौड़ा था ।

---

[1] **देव-संयुत्त**

इसके नीचेका सहन गधकुटी-परिवेण कहा जाता था। इस परिवेणमें एक जगह बुद्धासन रखा रहता था, जहाँपर बैठे बुद्धकी वंदना भिक्षु-सघ करता था। इस परिवेणमे बालू बिछाई हुई थी; क्योंकि **मज्झिमनिकाय**[1] अ० क०मे अनाथपिडकके बारेमे लिखा है कि वह खाली हाथ कभी बुद्धके पास न जाता था, कुछ न होनेपर बालू ही ले जाकर गधकुटीके आँगनमे बिखेरता था। **अंगुत्तरनिकाय-अट्ठकथामे**, बुद्धके भोजनोपरांत-के कामका वर्णन करते हुए, लिखा है—"इस प्रकार भोजनोपरांतवाले कृत्यके समाप्त होनेपर, यदि गात्र धोना (=नहाना) चाहते थे, तो बुद्धासनसे उठकर स्नानकोष्ठकमे जाकर, रखे जलसे शरीरको ऋतु-ग्रहण कराते थे। उपट्ठाक भी बुद्धासन ले आकर गधकुटी-परिवेणमे रख देता था। भगवान् लाल दुपट्टा पहनकर कायबधन बाँधकर, उत्तरासग एक कधा (खुला रख) पहनकर वहाँ आकर बैठते थे; अकेले कुछ काल ध्यानावस्थित होते थे। तब भिक्षु जहाँ तहाँसे भगवान्के उपस्थानके लिये आते थे। वहाँ कोई प्रश्न पूछते थे, कोई कर्म-स्थानपूछते थे। कोई धर्मोपदेश सुनना चाहते थे। भगवान्, उनके मनोरथको पूरा करते हुए, पहले यामको समाप्त करते थे।"

बुद्धासन-स्तूप—गधकुटीका परिवेण इस तरह एक बडा ही महत्त्व-पूर्ण स्थान था। जेतवनमे, गधकुटीमे, रहते हुए भगवान् यही आसीन हो प्रायः नित्य ही एक याम उपदेश देते थे, वदना ग्रहण करते थे। इस तरह गधकुटी-परिवेणकी पवित्रता अधिक मानी जानी स्वाभाविक है। उसमे उस स्थानका माहात्म्य, जहाँ तथागतका आसन रखा जाता था, और भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे स्थानपर परवर्ती कालमे कोई स्मृति-चिन्ह अवश्य ही बना होगा। जेतवनकी खुदाईमे स्तूप न० H ऐसा ही एक स्थान मिला है। इसके बारेमे सर जान मार्शल लिखते हैं[2]—

---

[1] **सुत्त १४३ की अट्ठकथा।**

[2] Archæological Survey of India, 1910-11, p. 9

"Of the stupas H, J and K, the first-mentioned seems to have been invested with particular sanctity; for not only was it rebuilt several times but it is set immediately in front of temple No. 2, which there is good reason to identify with the famous Gandhakuti and right in the midst of the main road which approaches this sanctuary from the east...this plinth is constructed of bricks of same size as those monasteries (of Kushan Period)"

जान पड़ता है, यह स्तूप वह स्थान है जहाँ बैठकर तथागत उपदेश दिया करते थे और इसीलिये उसे बार बार मरम्मत करने का प्रयत्न किया गया है। गधकुटी-परिवेणमे, भिक्षुओके ही लिये नही, प्रत्युत गृहस्थोके लिये भी उपदेश होता था—"विशाखा, उपदेश सुननेके लिये, जेतवन गई। उसने अपने बहुमूल्य आभूषण 'महालतापसाधन'को दासीके हाथमे इसलिये दे दिया था कि उपदेश[1] सुनते समय ऐसे शरीर-शृगारकी आवश्यकता नही। दासी उसे चलते वक्त भूल गई। नगरको लौटते समय दासी आभूषणके लिये लौटी। विशाखाने पूछा—तूने कहाँ रखा था? उसने कहा—गधकुटी-परिवेणमे। विशाखाने कहा—गधकुटी-परिवेणमे रखनेके समयसे ही उसका लौटाना हमारे लिये अयुक्त है।"

आभूषणके छूटनेका यह वर्णन **विनयमे** भी आया है। सभवत. बुद्धासन-स्तूपके पूर्वका स्तूप G इसीके स्मरणमे है। **सर जान** कहते है[2]—

This stupa is co-eval with the three buildings of Kushan Period, just described (*ibid*, p. 10).

---

[1] **धम्मपदट्ठकथा, ४।४४, विसाखाय वत्थु।**

[2] A. S. I. Report, 1910—1911

यह गधकुटी-परिवेण बहुत ही खुली जगह थी, जिसमे हजारो आदमी बैठ सकते थे। बुद्धासन-स्तूप (स्तूप H) गंधकुटीसे कुछ अधिक हटकर मालूम होता है। उसका कारण यह है कि उपदेशके समय तथागत पूर्वाभिमुख बैठते थे। उनके पीछे भिक्षु-मंघ पूर्व मुँह करके बैठता था और आगे गृहस्थ लोग तथागतकी ओर मुँह करके बैठते थे। गधकुटी-पमुखसे बुद्धासन तककी भूमि भिक्षुओके लिये थी। इसका वर्णन हमें **उदानमे**[1] मिलता है, जहाँ तथागतका पाटलिगामके नए आवसथागारमें बैठनेका सविस्तार वर्णन है। सभवतः यह परिवेण पहले और भी चौडा रहा होगा, और कमसे कम बुद्धासनमे उतना ही स्थान उत्तर ओर भी छूटा रहा होगा जितना कि न० K से बुद्धासन। इस प्रकार कुषाण-कालकी इमारतके स्थानपरकी पुरानी इमारत यदि कोई रही हो तो, दक्षिण तरफ इतनी वढी हुई न रही होगी, अथवा रही ही न होगी।

गधकुटी कितनी लबी-चौडी थी, यद्यपि इसके जाननेके लिये कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता, तथापि एक आदमीके लिये थी, इसलिये बहुत वडी नही हो सकती। सभवत. विहार न० २ के बीचका गर्भ बहुत कुछ पुरातन गधकुटीके आकारको वतलाता है। गंधकुटीके दर्वाजेमें किवाड[2] लगा था, जिसमे भीतरमे किल्ली (सूचीघटिक) लगानेका भी प्रबध था। इसमे तथागतके सोनेका मच था। इस मचके चारो पैरोके स्थानको अट्ठकथावालोने 'अविजहित' कहा है। गंधकुटीके दर्वाजे द्वारा कई वातोका सकेत भी होता था। **म० नि० अट्ठकथा**[3]में बुद्धघोषने लिखा है—'जिस दिन भगवान् जेतवनमे रहकर पूर्वाराममे दिनको विहार करना चाहते थे, उस दिन बिस्तरा, परिष्कार भाडोको ठीक ठीक करनेका सकेत करते थे। स्थविर (आनद) झाड़ देते, तथा कचड़ेमें

---

[1] **उदान—पाटलिगामियवग्ग (८।६)**

[2] **धम्मपद-अट्ठकथा ४:४४ भी।** [3] **सुत्त २६**

फेकनेकी चीजोको समेट लेते थे। जब अकेले पिडचारको जाना चाहते थे, तब सवेरे ही नहाकर गधकुटीमे प्रवेश कर दर्वाजा बंदकर समाधिस्थ हो बैठते थे। जब भिक्षु-सघके साथ पिडचारको जाना चाहते थे, तब गधकुटीको आधी खुली रखकर...। जब जनपदमे विचरनेके लिये निकलना चाहते थे, तो एक-दो ग्रास अधिक खाते थे और चक्रमण पर आरूढ हो पूर्व-पश्चिम टहलते थे।" भरहुतके जेतवन-पट्टिकामे गध-कुटीके द्वारका ऊपरी आधा भाग खुला है, जिसमे यह भी पता लगता है कि किवाड़ ऊपर-नीचे दो भागोमे विभक्त होता था। गधकुटीका नाम यद्यपि सैकडो बार आता है, किंतु उसका इससे अधिक विवरण देखनेमे नही मिलता।

द्वारकोट्ठक—हम पीछे कह चुके है कि अनाथपिडकके पहली बार लाए हुए कार्षापणोमे जेतवनका एक थोडासा हिस्सा बिना ढँका ही रह गया था। इसे कुमार जेतने अपने लिये माँग लिया और वहाँ पर उसने अपने दामसे कोठा बनवाया जिसका नाम जेतवनबहिद्वारकोष्ठक या केवल द्वारकोट्ठक पड़ा। यह गधकुटीके सामने ही था, क्योकि **धम्मपद-अट्ठकथा**मे आता है—

एक समय अन्य तीर्थिक उपासकोने ..अपने लडकोको कसम दिलाई कि घर आनेपर तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणोको न तो वदना करना और न उनके विहारमे जाना। एक दिन जेतवन विहारके बहिद्वार-कोष्ठकके पास खेलते हुए उन्हे प्यास लगी। तब एक उपासकके लडकेको कहकर भेजा कि तुम जाकर पानी पिओ और हमारे लिये भी लाओ। उसने विहारमे प्रवेश कर शास्ताको वदना कर पानी पी इस बातको कहा। शास्ताने कहा कि तुम पानी पीकर...जाकर औरोको भी, पानी पीनेके लिये यही भेजो। उन्होने आकर पानी पिया। गधकुटीके पासका कुआँ हमे मालूम है। द्वारकोष्ठकमे कुएँपर आते हुए लड़कोको गधकुटीके द्वारपरसे देखना स्वाभाविक है, यदि दर्वाजा गधकुटीके सामने हो।

जेतवन-पोक्खरणी—यह द्वारकोट्ठकके पास ही थी। **जातकट्ठकथा** (निदान) मे एक जगह इसका इस प्रकार वर्णन आता है—

एक समय कोमल राष्ट्रमे वर्षा न हुई। सस्य सूख रहे थे। जहाँ-तहाँ तालाब, पोखरी और सरोवर सूख गए। **जेतवन-द्वार-कोष्टकके** समीपकी जेतवन-पुष्करिणीका जल भी सूख गया। घने कीचड़मे घुसकर लेटे हुए मच्छ-कच्छपोको कौए चील आदि अपनी चोचोमे मार मार, ले जाकर, फडफडाते हुओको खाते थे। शास्ताने मत्स्य-कच्छपोके उस दु खको देखकर, महती करुणामे प्रेरित हो, निश्चय किया—आज मुझे पानी बरसाना है।.. भोजनके बाद सावत्थीसे विहारको जाते हुए जेतवन-पुष्करिणीके **सोपान**पर खडे हो आनद स्थविरसे कहा—आनद, नहानेकी धोती ला, जेतवन-पुष्करिणीमे स्नान करेगे।... शास्ता एक छोरसे नहानेकी धोतीको पहनकर और दूसरे छोरसे सिरको ढाँककर सोपानपर खडे हुए। . पूर्वदिशा-भागमे एक छोटीसी घटाने उठकर... बरसते हुए सारे कोसल राष्ट्रको बाढ जैसा बना दिया। शास्ताने पुष्करिणीमे स्नान कर, लाल दुपट्टा पहिन ....।

यहाँ हमे मालूम होता है कि (१) पुष्करिणी जेतवन-द्वारके पास ही थी, (२) उसमे घाट बँधा हुआ था।

इस पुष्करिणीके पास वह स्थान था, जहाँपर देवदत्तका जीते जी पृथिवीमे समाना कहा गया है। फाहियान और युन्-च्वेङ दोनो ही देवदत्तको जेतवनमे तथागतपर विष-प्रयोग करनेके लिये आया हुआ कहते है, किंतु **धम्मपद अट्ठकथा**का वर्णन दूसरा ही है—

देवदत्त[1]ने, नौ मास बीमार रहकर अतिम समय शास्ताके दर्शन-के लिये उत्सुक हो, अपने शिष्योसे कहा—मै शास्ताका दर्शन करना

---

[1] **ध० प० १।१२। अ० क०** ७४, ७५ (Commentary, Vol I, p. 147) **देवदत्तवत्थु। देखो दी० नि० सुत्त २ की अट्ठकथा भी।**

चाहता हूँ; मुझे दर्शन करवाओ। ऐसा कहनेपर—समर्थ होनेपर तुमने शास्ताके साथ वैरीका आचरण किया, हम तुम्हे वहाँ न ले जायँगे। तब देवदत्तने कहा—मेरा नाश मत करो। मैंने शास्ताके साथ आघात किया, किंतु मेरे ऊपर शास्ताको केशाग्रमात्र भी क्रोध नही है। वे शास्ता वधिक देवदत्तपर, डाकू अगुलिमालपर, धनपाल और राहुलपर—सब पर—समान भाववाले है। तब वह चारपाईपर लेकर निकले। उसका आगमन सुनकर भिक्षुओने शास्तासे कहा...। शास्ताने कहा—भिक्षुओ! इस शरीर से वह मुझे न देख सकेगा...। अब एक योजन-पर आ गया है, आधे योजनपर, गावुत (=गव्यूति) भरपर, जेतवन-पुष्करिणीके समीप...। यदि वह जेतवनके भीतर भी आ जाय, तो भी मुझे न देख सकेगा। देवदत्तको ले आनेवाले **जेतवनपुष्करिणी**के तीरपर चारपाईको उतार पुष्करिणीमे नहाने गए। देवदत्त भी चारपाईसे उठ, दोनो पैरोको भूमिपर रखकर, बैठा। (और) वह वही पृथिवीमे चला गया। वह क्रमशः घुट्टी तक, फिर ठेहुने तक, फिर कमर तक, छाती तक, गर्दन तक घुस गया। ठुड्डीकी हड्डीके भूमिपर प्रतिष्ठित होते समय उसने यह गाथा कही—

इन आठ प्राणोसे उस अग्रपुद्गल (=महापुरुष) देवातिदेव, नर-दम्यसारथी समतचक्षु शतपुण्यलक्षण बुद्धके शरणागत हूँ।

वह अबसे सौ हजार कल्पो बाद अट्ठिस्सर नामक प्रत्येकबुद्ध होगा।—वह पृथिवीमे घुसकर अवीचिनरकमे उत्पन्न हुआ।

इस कथामे और ऐतिहासिक तथ्य चाहे कुछ भी न हो, किंतु इसमें संदेह नही कि देवदत्तके जमीनमे धँसनेकी किंवदंती फाहियानके समय (पाँचवी शताब्दीमे) खूब प्रसिद्ध थी। वह उससे भी पहलेकी सिंहाली अट्ठकथाओमे वैसे ही थी, जिसके आधारपर फाहियानके समकालीन बुद्धघोषने पाली अट्ठकथामे इसे लिखा। फाहियानने देवदत्तके धँसनेके इस स्थानको जेतवनके पूर्वद्वार पर राजपथसे ७० पद पश्चिम ओर, जहाँ

चिचाके धरतीमे धँसनेका उल्लेख किया है, लिखा है।

युन्-च्वेङ्ने इस स्थानके विषयमे लिखा है—

"To the east of the convent about 100 paces is a great chasm; this is where Devadutta went down alive into Hell after trying to poison Buddha. To the south of this, again is a great ditch; this is the place where the Bhikshu Kokali went down alive into Hell after slandering Buddha. To the south of this, about 800 paces, is the place where the Brahman woman Chancha went down alive into Hell after slandering Buddha. All these chasms are without any visible bottom (or bottomless pits)." (Beal, *Life of H. T.*, pp. 93 and 94).

इनमे ऐतिहासिक तथ्य सभवत इतना ही हो सकता है कि मरणासन्न देवदत्तको अतमे अपने किएका पश्चात्ताप हुआ और वह बुद्धके दर्शनके लिए गया, किंतु जेतवनके दर्वाजेपर ही उसके प्राण छूट गए। यह मृत्यु पहले भूमिमे धँसनेमे परिणत हुई। फाह्नियानने उसे पृथिवीके फटकर बीचमे जगह देनेके रूपमे सुना। युन्-च्वेङ्के समय वह स्थान अथाह चँदवकमें परिणत हो गया था। किंतु इतना तो ठीक ही है कि यह स्थान (१) पूर्व-कोट्ठकके पास था; (२) पुष्करिणीके ऊपर था; (३) विहार (गधकुटी) से १०० कदमपर था, और (४) चिचाके धँसनेका स्थान भी इसके पास ही था।

चिंचाके धँसनेका स्थान द्वारके बाहर पासहीमे अट्ठकथामे भी आता है, किंतु कोकालिकके धँसनेका कही जिक्र नहीं आता। बल्कि इसके विरुद्ध उसका वर्णन सुत्तनिपातमे इस प्रकार है—

कोकालिकने जेतवनमे भगवान्‌के पास जाकर कहा—भते, सारि-

पुत्त मोग्गलान पापेच्छु है, पापेच्छाओके वशमें हैं। भगवान्‌ने उसे सारिपुत्त मोग्गल्लानके विषयमे चित्तको प्रसन्न करनेके लिये तीन बार कहा, किन्तु उसने तीन बार उसीको दुहराया। वहाँसे प्रदक्षिणा करके गया तो उसके सारे बदनमे सरसोके बराबर फुसियाँ निकल आईं, जो क्रमश बिलसे भी बडी हो फूट गईं। फिर खून और पीब बहने लगा और वह इसी बीमारीसे मरा।

इसमे कही कोकालिकके धँसने या बुद्धको अपमानित करनेका वर्णन नही है। इसमे शक नही, इसी सुत्तनिपातकी अट्ठकथामे इस कोकालियको देवदत्तके शिष्य कोकालियसे अलग बतलाया है, किंतु उसका भी जेतवनके पास भूमिमे धँसना कही नही मिलता। चिचाके भूमिमे धँसनेका उल्लेख फाहियान और युन्-च्वेङ्ग दोनोहीने किया है। लेकिन युन्-च्वेङ्गने ८०० कदम दक्षिण लिखा है, यद्यपि फाहियानने चूहोसे बधन काटने और धँसनेका स्थान एक ही लिखा है। पालीमे यह कथा[1] इस प्रकार है—

पहली बोधी[1] (५२७-१३ ई० पू०)मे तीर्थिकोने बुद्धके लाभ-सत्कारको देखकर उसे नष्ट करनेकी ठानी। उन्होने **चिचा** परिव्राजिकासे कहा। वह श्रावस्ती-वासियोके धर्मकथा सुनकर जेतवनसे निकलते समय इन्द्रगोपके समान वर्णवाले वस्त्रको पहन गधमाला आदि हाथमे ले जेतवनकी ओर जाती थी। जेतवनके समीपके तीर्थिकाराममे वासकर प्रात· ही नगरमे उपासक जनोके निकलनेपर, जेतवनके भीतर रही हुई सी हो, नगरमे प्रवेश करती थी। एक मासके बाद पूछनेपर कहती थी—जेतवनमे श्रमण गोतमके साथ एक गंधकुटीहीमे सोई हूँ। आठ-नौ मासके बाद पेटपर गोल काष्ठ बाँधकर, ऊपरसे वस्त्र पहन, सायाह्न समय, धर्मोपदेश करते हुए तथागतके सामने खड़ी हो उसने कहा—महाश्रमण, लोगो-

---

[1] **धम्मपद—अ० क०, १३:१९**

को धर्मोपदेश करते हो। मैं तुमसे गर्भ पाकर पूर्णगर्भा हो गई हूँ। न मेरे सूतिका-गृहका प्रबंध करते हो और न घी-तेलका। यदि आपसे न हो सके तो अपने किसी उपस्थापकहीमे—कोसलराजसे, अनाथपिंडकसे या विशाखासे—करा दो.. ।" इसपर देवपुत्रोने, चूहेके बच्चे बन, बंधनकी रस्सीको काट दिया। लोगोने यह देख उसके शिरपर थूककर उसे ढेले, डडे आदिसे मारकर जेतवनसे बाहर किया। **तथागत**के दृष्टिपथसे हटनेके बाद ही महापृथिवीने फटकर उसे जगह दी।

इस कथामे तथागतके आँखोके सामनेसे चिंचाके अलग होते ही उसका पृथिवीमे धँसना लिखा है। बुद्ध इस समय बुद्धासनपर (स्तूप H) बैठे रहे होगे। दर्वाजेके बहि कोष्ठक सामने ही था। द्वारकोट्ठकके पार होते ही उसका आँखोसे ओझल होना स्वाभाविक है और इस प्रकार धँसनेकी जगह द्वारकोट्ठकके बाहर पास ही, पुष्करिणीके किनारे हो सकती है; जिसके पास, पीछे देवदत्तका धँसना कहा जाता है। यह फाहियानके भी अनुकूल है। काल बीतनेके साथ कथाओके रूपमे भी अतिशयोक्ति होनी स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त युन्-च्वेड उस समय आए थे, जिस समय महायान भारतमे यौवनपर था। महायान ऐतिहासिकताकी अपेक्षा लोकोत्तरताकी ओर अधिक झुकता है, जैसा कि महायान करुणा-पुडरीक सूत्र आदिसे खूब स्पष्ट है। इसीलिये युन्-च्वेडकी किवदंतियाँ फाहियानकी अपेक्षा अधिक अतिरंजित मिलती है। और इसीलिये युन्-च्वेडकी कथामे ही चिंचाको हम ८०० कदम और दक्षिण पाते है। युन्-च्वेडका यह कथन कि देवदत्तके धँसनेकी जगह अर्थात् द्वारकोट्ठकके बाहर पुष्करिणीका घाट विहार (=गधकुटी) से १०० कदम था, ठीक मालूम होता है, और इस प्रकार विहार F की पूर्वी दीवारसे बिलकुल पास ही जेतवनके द्वारकोट्ठकका होना सिद्ध होता है। फिर ४८७ नबरवाले खेतकी निचली भूमि ही जेतवनकी पुष्करिणी सिद्ध होती है।

कपल्ल-पूव-पब्भार—इसमे सदेह नही कि कितनी ही जगहोका

आरंभ अनैतिहासिक कथाओंपर अवलबित है, किन्तु इससे वैसे स्थानोंका पीछे बना लिया जाना असत्य नही हो सकता। ऐसा ही एक स्थान जेतवनद्वारकोट्ठकमें 'कपल्ल-पूव-पब्भार' था। कथा यो है—

राजगृह नगर[1]के पास एक सक्खर नामका कस्बा था। वहाँ अस्सी करोड धनवाला कौशिक नामक एक कजूस सेठ रहता था। उसने एक दिन बहुत आगा-पीछा करके भार्यासे पुआ खानेके लिये कहा। स्त्रीने पुआ बनाना आरभ किया। यह जान स्थविर महामोग्गलान उसी समय जेत-वनसे निकलकर ऋद्धिबलसे उस कस्बेमे सेठके घर पहुँचे।...सेठने भार्यासे कहा—भद्रे! मुझे पुओकी जरूरत नही, उन्हे इसी भिक्षुको दे दो।...स्थविर ऋद्धिबलसे सेठ-सेठानीको पुओके साथ लेकर जेतवन पहुँच गए। सारे विहारके भिक्षुओको देनेपर भी वह समाप्त हुआ सा न मालूम होता था। इसपर भगवान्ने कहा—इन्हे जेतवन **द्वारकोट्ठक** पर छोड़ दो। उन्होने उसे द्वारकोट्ठकके पासके स्थानपर ही छोड दिया। आज भी वह स्थान कपल्ल-पूव-पब्भारके ही नामसे प्रसिद्ध है।

यह स्थान भी द्वारकोष्ठकके ही एक भागमे था, और इस जगहकी स्मृतिमे भी कोई छोटा-मोटा स्तूप अवश्य बना होगा।

जेतवनके बाहरकी बातोको समाप्तकर अब हमें जेतवनके अंदरकी शेष इमारतोको देखना है। विनयके अनुसार अनाथपिडकने जेतवनके भीतर ये चीजें बनवाई—विहार, परिवेण, कोठा, उपस्थान- शाला, कप्पियकुटी, पाखाना, पेशाबखाना, चंक्रम (=टहलनेकी जगह), चंक्रमणशाला, उदपान (=प्याऊ), उदपानशाला, जताघर (=स्नान-गृह), जंताघरशाला, पुष्करिणी और मंडप। जातक-अट्ठकथा[2] (निदान)-के अनुसार इनका स्थान इस प्रकार है—मध्यमे गधकुटी, उसके चारो तरफ अस्सी महास्थविरोके अलग अलग निवासस्थान, एककुड्डक

---

[1] **धम्मपदट्ठकथा,** Vol. I, p. 373 [2] **जातक,** १।८।८

(=एकतला), द्विकुड्डक, हसवट्टक, दीघशाला, मंडप आदि तथा पुष्क-रिणी, चंक्रमण, रात्रिको रहनेके स्थान और दिनको रहनेके स्थान।

चुल्लवग्गके[1] **सेनासनक्खंधक**(६)से हमे निम्न प्रकारके गृहोका पता लगता है—

उपस्थानशाला—उस समय भिक्षु खुली जगहमे खाते समय शीतसे भी, उष्णसे भी कष्ट पाते थे। भगवान्से कहनेपर उन्होने कहा—मैं अनुमति देता हूँ कि उपस्थानशाला बनाई जाय, ऊँची कुरसीवाली, ईंट, पत्थर या लकडीसे चिनकर, सीढी भी ईंट, पत्थर या लकडीकी; बाँह-आलंबन भी; लीप-पोतकर, सफेद या काले रंगकी गेरूसे सँवारी, माला लता, चित्रोसे चित्रित, खूँटी, चीवर-बाँस चीवर-रस्सीके सहित।

जेतवनमे भी ऐसी उपस्थानशाला थी, जिसका वर्णन सूत्रोमे बहुत आता है। जेतवनकी यह उपस्थानशाला लकडीकी रही होगी तथा नीचे ईंटे बिछी रही होगी।

जेतवनके भीतर हम इन इमारतोका वर्णन पाली स्रोतसे पाते हैं—करेरिकुटिका, कोसबकुटी, गधकुटी, सललघर, करेरिमडलमाल, करेरि-मंडप, गधमडलमाल, उपट्ठानसाला (=धम्मसभामडप), नहानकोट्ठक, अग्गिसाला, अंबलकोट्ठक (=आसनसाला, पानीयसाला), उपसपदा-मालक। यद्यपि सललघर जेतवनके भीतर लिखा मिलता है; किंतु ज्ञात होता है कि जेतवनमे यहाँ जेतवन-राजकाराम अभिप्रेत है और सललघर राजकारामकी ही गधकुटीका नाम था।

करेरिकुटिका और करेरिमंडलमाल—दीघनिकाय[2]में आता है—एक समय भगवान् जेतवनमे अनाथपिडकके आराम, करेरिकुटिकामें, विहार करते थे। भोजनके बाद करेरिमडलमालमे इकट्ठा बैठे हुए बहुत-

---

[1] **विनयपिटक।**

[2] **दी० नि० महापदानसुत्त।**

से भिक्षुओमें पूर्वजन्म-संबंधी धार्मिक चर्चा चल पडी। भगवान्ने उसे दिव्य श्रोत्र-धातुसे सुना।

इसपर टीका करते हुए आचार्य बुद्धघोषने लिखा है—

करेरि वरुण वृक्षका नाम है। करेरि वृक्ष उस कुटीके द्वारपर था, इसी लिये करेरिकुटिका कही जाती थी, जैसे कोसब वृक्षके द्वारपर होनेसे कोसवकुटिका। जेतवनके भीतर करेरिकुटी, कोसंबकुटी, गंधकुटी, सललघर ये चार बडे घर (महागेह) थे। एक एक सौ हजार खर्च करके बनवाए गए थे। उनमे सललघर राजा प्रसेनजित् द्वारा बनवाया गया था, बाकी अनाथपिंडिक गृहपति द्वारा। इस तरह अनाथपिंडक गृहपति द्वारा स्तभोंके ऊपर बनवाई हुई देवविमान-समान करेरिकुटिकामें भगवान् विहार करते थे[१]।

सूत्रसे हमे मालूम होता है कि जेतवनके भीतर (१) करेरिकुटिका थी, जो संभवतः गंधकुटी, कोसंबकुटीकी भाँति सिर्फ बुद्ध ही के रहनेके लिए थी, (२) उससे कुछ हटकर करेरिमंडलमाल था। बिल्कुल पास होने पर दिव्य कर्णसे सुननेकी कोई आवश्यकता न थी। अट्ठकथासे मालूम होता है कि इस (३) कुटीके द्वारपर करेरीका वृक्ष था, इसीलिये इसका नाम करेरिकुटिका पडा था। इतना ही नहीं, कोसबकुटीका नाम भी द्वारपर कोसब वृक्षके होनेसे पडा था। (४) अनाथपिंडक द्वारा यह करेरिकुटी लकडीके खंभोंके ऊपर बहुत ही सुंदर बनाई गई थी।

---

[१] दी० नि० अट्ठकथा, II, पृ० २६९—

"एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिंडिकस्स आरामे करेरिकुटिकायां। अथ खो संबहुलानं भिक्खूनं पच्छाभत्तं पिंडपात-पटिक्कन्तानं करेरि-मंडल-माले सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं पुब्बे-निवास-परिसंयुत्ता धम्मिय-कथा उदपादि—'इति पुब्बे-निवासो इति पुब्बे निवा-सोति'।"

करेरिमंडलमालपर टीका करते हुए बुद्धघोष कहते हैं—"उसी करेरि-मडप[1]के अविदूर (=बहुत दूर नही) बनी हुई निसीदनशाला (को करेरिमडलमाल कहते है)। वह करेरिमडप, गधकुटी और निसीदनशाला-के बीचमे था। इसीलिये गधकुटी भी करेरिकुटिका, और शाला भी करेरिमडलमाल कहा जाता था।" उदानमे भी—'एक वार[2] बहुतसे भिक्षु करेरिमडलमालमे इकट्ठे बैठे थे' देखा जाता है। टीका करते हुए अट्ठकथामे आचार्य धर्मपाल लिखते है—"करेरि[3] वरुण वृक्षका नाम है। वह गधकुटी, मडप और शालाके बीचमे था। इसीलिये गंधकुटी भी करेरिकुटी कही जाती थी, मडप भी, और शाला भी करेरिमडलमाल। प्रतिवर्ष बननेवाले घास-पत्तीके छप्परको मडल-माल कहते है। दूसरे कहते हैं, अतिमुक्त आदि लताओके मडपको मडलमाल कहते है।

यहाँ दी० नि० अट्ठकथामे 'करेरिमडप, गधकुटी और निसीदनशाला-के बीचमे था।' उदान अट्ठकथामे 'करेरि वृक्ष गधकुटी, मडप और शालाके बीचमें था', जिसमे 'मडप'को 'गधकुटी-मंडप' स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु आगे 'इसीके लिये गधकुटी भी. . ., मडप भी और शाला भी . . ., से मालूम होता है कि यहाँ करेरिकुटी, करेरिमडप, करेरिमडल माला ये तीन अलग चीजे है, और इन तीनोके बीचमे करेरिवृक्ष था।' लेकिन दीघनिकायअट्ठकथाका 'वह करेरिमडप गधकुटी और निसीदन-शालाके बीचमे था'—यह कहना फिर करेरिमडपको सदेहमे डाल देता है। इससे तो मालूम होता है 'करेरिवृक्ष'की जगहपर 'करेरिमडप' भ्रमसे लिखा गया जान पडता है। यद्यपि इस प्रकार करेरिमडपका होना सदिग्ध

---

[1] दीघ० नि० अ० क०।

[2] (उदान—३।८)—"करेरिमंडलमाले सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयं अंतराकथा उदपादि।"

[3] उदानट्ठकथा, पृ० १३५

हो जाता है; तोभी इसमें संदेह नही कि करेरि वृक्ष करेरिकुटीके सामने था, जिसके आगे करेरिमडलमाल। जेतवनमे सभी प्रधान इमारते गंध-कुटीकी भाँति पूर्वमुँह ही थी। करेरिकुटीके द्वारपर पूर्व तरफ एक करेरि-का वृक्ष था, और उससे पूर्व तरफ (१) करेरिमडलमाल था, जिसमें भोजनोपरात भिक्षु इकट्ठे होकर धर्म-चर्चा किया करते थे। (२) यह मंडलमाल प्रतिवर्ष फूससे छाया जाता था, इसलिये कोई स्थायी इमारत न थी।

यहाँ हमे यह कुछ भी नही पता लगता कि करेरिकुटी, कोसबकुटी और गधकुटीसे किस ओर थी। यदि हम **'करेरिकुटी, कोसंबकुटी, गंध-कुटी'** इस क्रमको उनका क्रम मान ले, तो करेरिकुटी कोसंबकुटीसे भी पश्चिम थी। यहाँ सललघरको इस क्रमसे नही मानना होगा क्योकि यह तैर्थिकोकी जगहपर राजा प्रसेनजित्का बनवाया हुआ आराम था। यह जेतवनके बाहर होनेपर भी शायद समीपताके कारण उसमे ले लिया गया था। ऐसा होनेपर विहार न० ५ को हम करेरिकुटी मान सकते है। करेरिका वृक्ष उसके द्वारपर पूर्वोत्तरके कोनेमे था, और **करेरिमंडलमाल** उससे पूर्वोत्तरमे।

उपट्ठानसाला (उपस्थानशाला)—खुद्दकनिकायके उदान ग्रथमे आता है—"एक समय[1] भगवान् श्रावस्तीमे अनाथपिडकके आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय भोजनके बाद, उपस्थानशालामे इकट्ठे बैठे, बहुतसे भिक्षुओमे यह कथा होती थी। इन दोनो राजाओमे कौन बडा .. है, राजा मागध सेनिय बिंबिसार अथवा राजा प्रसेनजित् कोसल।... उस समय ध्यानसे उठकर भगवान् शामके वक्त उपट्ठानशालामे गए और बिछे आसनपर बैठे।"

---

[1] **"तेन खो पन समयेन उपट्ठानसालायं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि।"—उदान, २।२**

इसकी अट्ठकथामें आचार्य धर्मपाल लिखते हैं—

'भगवान्[1] ने . . . भोजनोपरात . . . गधकुटीमें प्रवेशकर फलसमापत्ति सुखके साथ दिवस-भागको व्यतीनकर (सोचा) . . . अब चारो परिषद् (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका) मेरे आनेकी प्रतीक्षामें सारे विहारको पूर्ण करती बैठी है, अब धर्मदेशनाके लिये धर्म-सभा-मडलमे जानेका समय है . . .।'

इससे मालूम होता है कि उपस्थानशाला (१) जेतवनमे भिक्षुओके एकत्र होकर बैटनेकी जगह थी; (२) तथागत सायकालको उपदेश देनेके लिये वहाँ जाते थे। अट्ठकथासे इतना और मालूम होता है—(३) इसीको धर्म-सभा-मंडल भी कहते थे। (४) यह गधकुटीके पास थी; (५) सायकालको धर्मोपदेश सुननेके लिये भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका सभी यहाँ इकट्ठे होते थे; (६) मंडल शब्दसे करेरिमडलकी भाँति ही यह भी शायद फूसके छप्परोसे प्रतिवर्ष छाई जानेवाली इमारत थी, (७) ये छप्पर शायद गधकुटीके पासवाली भूमिपर पड़े थे, इसी लिये 'सारे विहारको पूर्ण करती' शब्द आया है।

गधकुटीके पासवाले गधकुटी-परिवेणके विषयमे हम कह चुके हैं। यह गधकुटीके सामनेका आँगन था। गधकुटीकी शोभाके ढँक जानेके खयालसे इस जगह उपस्थानशाला नही हो सकती। यह सभवतः गंधकुटीसे लगे हुए उत्तर तरफके भू-खंडपर थी, जिसमे स्तूप न० ८ या ९ शायद वृद्धापनके स्थानपर है।

स्थानकोष्ठक—अगुत्तरनिकाय-अट्ठकथाका उद्धरण दे चुके हैं—"भोजनोपरान्तवाले कृत्य (तीसरे पहरके कृत्य—उपदेश आदि) के समाप्त होनेपर, यदि बुद्ध नहाना (=गात्र धोना) चाहते थे, तो बुद्धासनसे उठकर स्नानकोष्ठकमे . . . . . शरीरको ऋतु ग्रहण कराते थे।" (१) यह स्नान-

[1] उदानट्ठकथा, पृ० ७२ (सिंहललिपि)

कोष्ठक गंधकुटीके पास था। (२) गंधकुटीके पासका कुआँ भी इसके पास ही हो सकता है। (३) यह अलग नहानेकी एक छोटीसी कोठरी रही होगी।

इनपर विचार करनेसे विहार न० २ के कुएँके पासवाला स्तूप K स्नानकोष्ठकका स्थान मालूम होता है, जिसके विषयमें सर जान मार्शलने लिखा है—

The character is not wholly apparent. It consists of a chamber, 12′ 8″ square, with a paved passage around enclosed by an outer wall. The floor of the inner chamber and the passage around it are paved in bricks of the same size 13″×9″×2½″ (of Kushana Period) as those used in the walls...... absence of any doorway. In all probability, it was a stupa with a relic-chamber within and a paved walk outside; and the outer wall was added at a later date......A few feet to the south west of this structure is a carefully constructed well; which appears to be of a slightly later date than the building K....The bricks are of the same size as those in the building K....sweet and clear water......

जंताघर (=अग्निशाला)—इसके बारेमें धम्मपद अट्ठकथाके वाक्य ये हैं—

सडे शरीरवाला तिष्य[१] स्थविर अपने शिष्य आदि द्वारा छोड़ दिया गया था। (भगवान्‌ने सोचा) इस समय मुझे छोड़ इसका दूसरा कोई

---

[१] ध० प० ४ : ८, अ० क० १५७

अवलब नही; और गंधकुटीसे निकल विहारचारिका करते हुए, अग्निशाला-मे जा जलपात्रको धो चूल्हेपर रख जल को गर्म हुआ जान, जाकर उस भिक्षु-के लेटनेकी खाटका किनारा पकडा। तब भिक्षु खाटको अग्निशालामें लाये। शास्ताने इसके पास खडे हो गर्म पानीसे शरीरको भिगोकर मल-मलकर नहलाया। फिर वह हल्के शरीर हो और एकाग्रचित्त हो, खाट पर लेटा। शास्ताने उसके सिरहाने खडे हो यह गाथा कह उपदेश दिया—

"देर नही है कि तुच्छ, विज्ञान-रहित, निरर्थक काष्ठखड सा यह शरीर पृथ्वी पर लेटेगा।.....देशनाके अतमे वह अर्हत्वको प्राप्त हो, परिनिर्वृत्त हुआ। शास्ताने उसका शरीरकृत्य कराकर हड्डियां ले चैत्य बनवाया।"

जताघर[1] और अग्निशाला दोनो एक ही चीज है। चुल्लवग्गमे अग्नि-शालाके विधानमे यह वाक्य है—

"अनुज्ञा[2] देता हूँ, एक तरफ अग्निशाला....ऊँची कुर्सीकी..., ईट पत्थर या लकडीमे चुनी ..., सोपान ...आलबनबाहु-सहित.. ।"

महावग्गमे सामणेरका कर्त्तव्य वर्णन करते हुए जंताघरके संबधमें इस प्रकार कहा गया है—

"यदि[3] उपाध्याय नहाना चाहते हो। ...यदि उपाध्याय जताघर-मे जाना चाहते हो, तो चूर्ण ले जाना चाहिए, मिट्टी भिगोनी चाहिए। जताघरके पीठ (=चौकी) को लेकर उपाध्यायके पीछे पीछे जाकर, जता-घरमे पीठ देकर, चीवर लेकर एक तरफ रखना चाहिए। चूर्ण देना चाहिए।

---

[1] 'जंताघरं त्वग्गिसाला" (अभिधानप्पदीपिका २१४)।

[2] "अनुजानामि भिक्खवे एकमन्तं अग्गिसालं कातुं... उच्चवत्थुकं इट्ठिकाचयं सिलाचयं दारुचयं...सोपान...आलंबनवाहं...।" (सेनासन-क्खंधक, ६)

[3] विनयपिटक, महा० व०, p. 43

मिट्टी देनी चाहिए। ....जलमे भी उपाध्यायका परिकर्म करना (= मलना) चाहिए। नहाकर पहले ही निकलकर अपने गात्रको निर्जलकर वस्त्र पहनकर, उपाध्यायके गात्रसे जल सम्मार्जित करना चाहिए। वस्त्र देना चाहिए, सघाटी देनी चाहिए। जताघरके पीठको लेकर पहले ही (निवासस्थानपर) आकर आसन ठीक करना चाहिए... ।"

जताघरका वर्णन और भी है[1]——

"अनुज्ञा देता हूँ (जताघरको) उच्च-वस्तुक करना...किवाड़... सूचिक, घटिक, तालछिद्र...धूमनेत्र......छोटे जताघरमे एक तरफ अग्निस्थान, बड़केे मध्यमे .. । (जताघरमे कीचड होता था इसलिये) ईट, पत्थर या लकड़ीसे गच करना,. ....पानीका रास्ता बनाना... जताघर-पीठ .., ईट, पत्थर या लकडीके प्राकारसे परिक्षेप करना.. ।" इन उद्धरणोमे मालूम होता है कि (१) जताघर संघारामके एक छोर पर होता था। (२) यह नहानेकी जगह थी। (३) ईट, पत्थर या लकडी-की चुनी हुई इमारत होती थी। (४) उसमे पानी गर्म करनेके लिये आग जलाई जाती थी, इसीलिये उसे अग्निशाला भी कहते है। (५) उसमें किवाड, ताला-चाभी भी रहती थी। (६) धुएँकी चिमनी भी होती थी। (७) बडे जताघरोमे आग जलानेका स्थान बीचमे, छोटोमे एक किनारे पर। (८) जताघरकी भूमि ईट, पत्थर या लकडीसे ढकी रहती थी। (९) उसमें पीढेपर बैठकर नहाते थे। (१०) वह ईंट, पत्थर या लकड़ीकी दीवारसे घिरा रहता था।

जेतवनका जताघर भी जेतवनके अगल-बगल एक कोनेमे रहा होगा, जो ऊपर वर्णन किये गए तरीके पर सभवत. ईंट और लकडीसे बना होगा। ऐसा स्थान जेतवनके पूर्व-दक्षिण कोणमे सभव हो सकता है; अर्थात् विहार B के आसपास।

---

[1] **विनयपिकट, चुल्ल वग्ग, खुद्दकवत्थुक्खंधक,** pp. 213, 214

आसनशाला, अंबलकोट्ठक—जातकट्ठकथामें इसके लिये यह शब्द है—

"अंबलकोष्ठक[1] आसनशालामे भात खानेवाले कुत्तेके सबंधमें कहा। उस (कुत्ते)को जन्मसे ही पनभरोने लेकर वहाँ पाला था।" इससे हमे ये बाते मालूम होती है—(१) जेतवनमे आसनशाला थी, (२) जिसके पास या जिसमे ही अबलकोष्ठक नामकी कोई कोठरी थी, (३) जिसमें पानी भरनेवाले अक्सर रहा करते थे; (४) पानीशाला या उदपानशाला भी यही पासमे थी।

यह स्थान भी गंधकुटीसे कुछ हटकर ही होना चाहिए। पनभरोंके सबंधसे मालूम होता है, यह भी जताघर (विहार B)के पास ही कहीपर रहा होगा।

उपसपदामालक—"फिर[2] उसको स्थविरने जेतवनमे ले आकर अपने हाथसे ही नहलाकर, मालकमें खडा कर प्रव्रजित कर, उसकी लँगोटी और हलको मालककी सीमाहीमे वृक्षकी डाल पर रखवा दिया।"

अन्यत्र धम्मपद (८:११ अ० क०)मे भी उपसंपदा-मालक नाम आता है।

यह संभवत: गधकुटीके पास कही एक स्थान था, जहाँ प्रव्रज्या दी जाती थी। जेतवनमे वैसे सभी जगह वृक्ष ही वृक्ष थे, अत: इसकी सीमामें वृक्षका होना कोई विशेषता नही रखता।

आनंदबोधि—आखिरी चीज जो जेतवनके भीतर रह गई वह आनंद-बोधि है। जातकट्ठकथामे उसके लिये यह वाक्य हैं—

"आनद[3] स्थविरने रोपा था, इसलिये आनदबोधि नाम पड़ा। स्थविर द्वारा जेतवनद्वारकोष्ठकके पास बोधि (=पीपल)का रोपा जाना सारे जम्बूद्वीपमें प्रसिद्ध हो गया था।"

भरहुतकी जेतवन-पट्टिकामे भी गंधकुटीके सामने, कोसंबकुटीसे

---

[1] जातक, २४२ [2] ध० प०, २५:१०, अ० क० [3] जातक, २६१

पूर्वोत्तरके कोणपर, वेष्टनीसे वेष्टित एक वृक्ष दिखाया गया है, जो सभवतः आनंदबोधि ही है। यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणसे यह नही मालूम होता कि यह पीपलका वृक्ष द्वारकोष्ठकके बाहर था या भीतर; किंतु अधिकतर इसका भीतर ही होना सम्भव है, क्योकि ऐसा पूजनीय वृक्ष जेतवन खासके भीतर होना चाहिए। पट्टिकामे भी भीतर ही दिखलाया गया है, क्योंकि उसमे द्वारकोष्टक छोड दिया गया है।

वड्ढमान—जेतवनके भीतर यह एक और प्रसिद्ध वृक्ष था। धम्म-पदट्ठकथामे—"आनद, आज वर्द्धमानकी छायामे... चित्त... मुझे वदना करेगा।.... वदनाके समय राजा-मानसे आठ करीस प्रमाण प्रदेशमें.. दिव्य पुष्पोकी घनी वर्षा होगी।" (ध० प० ५·१४, अ० क० २५०)। यह चित्त गृहपति तथागतके सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ शिष्योमे था। तथागतने इसके बारेमे स्वय कहा है—"भिक्षुओ, श्रद्धालु उपासक अच्छी प्रार्थना करते हुए यह प्रार्थना करे, वैसा होऊँ जैसा कि चित्त गहपति।" (अ० नि० ३-२-२-५३)।

सुंदरी—जेतवनके सबधमे एक और प्रसिद्ध घटना (जो अट्ठकथा और चीनी परिव्राजकोके विवरणमे ही नही, वरन् त्रिपिटकके मूलभाग उदानमे भी, मिलती है) सुदरी परिव्राजिकाकी है। उदानमे इसका उल्लेख इस प्रकार है—

"भगवान् जेतवन[1] मे विहरते थे। उस समय भगवान् और भिक्षु-सघ सत्कृत पूजित, पिडपात, शयनासन, ग्लानप्रत्य भैषज्योके लाभी थे, लेकिन अन्य तीर्थिक परिव्राजक असत्कृत ... थे। तब वे तीर्थिक, भगवान् और भिक्षु सघके सत्कारको न सहते हुए, सुदरी परिव्राजिकाके पास जाकर बोले—

'भगिनी! ज्ञातिकी भलाई करनेका उत्साह रखती हो?—मै क्या

---

[1] **उदान, ४:८ (मेघियवग्ग)।**

करूँ आर्यो! मेरा किया क्या नही हो सकता? जीवन भी मैंने ज्ञातिके लिये अर्पित कर दिया है।—तो भगिनी बार बार जेतवन जाया कर।—बहुत अच्छा आर्यो! यह कह..., सुदरी परिव्राजिका बराबर जेतवन जाने लगी। जब अन्य तीर्थिक परिव्राजकोने जाना, कि बहुत लोगोंने सुंदरी .....को बराबर जेतवन जाते देख लिया, तो उन्होने उसे जानसे मारकर वही **जेतवनकी खाई**मे कुआँ खोदकर डाल दिया और राजा प्रसेनजित् कोसलके पास जाकर कहा—महाराज! जो वह सुदरी परिव्राजिका थी, सो नही दिखलाई पड़ती।—तुम्हे कहाँ सन्देह है?—जेतवनमे महाराज—तो जाकर जेतवनको ढूँढो। तब (उन्होने) जेतवनमे ढूँढकर अपने खोदे हुए परिखाके कुएँसे निकालकर खाटपर डाल श्रावस्तीमे प्रवेश कर एक सड़कसे दूसरी सडक, एक चौराहेमे दूसरे चौराहेपर जाकर आदमियों-को शकित कर दिया—"देखो आर्यो! शाक्यपुत्रीय श्रमणोंका कर्म, ये अलज्जी, दु:शील, पापधर्म, मृषावादी, अब्रह्मचारी है।....इनको श्रामण्य नही, इनको ब्रह्मचर्य नही। इनका श्रामण्य, ब्रह्मचर्य नष्ट हो गया है।... कैसे पुरुष पुरुष-कर्म करके स्त्रीको जानसे मार देगा?

उस समय सावत्थीमे लोग भिक्षुओको देखकर (उन्हे) असभ्य और कडे शब्दोसे फटकारते थे, परिहास करते थे...। तब बहुतसे भिक्षु श्रावस्तीसे...पिंडपात करके ...भगवान्‌के पास जाकर बोले...—इस समय भगवान्! श्रावस्तीमे लोग भिक्षुओको देखकर असभ्य और कडें शब्दोसे फटकारते है...। यह शब्द भिक्षुओ! चिरकाल तक नही रहेगा, एक सप्ताहमें समाप्त हो लुप्त हो जायगा ......। (और) वह, शब्द चिरकाल तक नही रहा, सप्ताह भर ही रहा . ।"

धम्मपदअट्ठकथामे भी यह कथा आई है वहाँ यह विशेषता है—...तब तीर्थिको[1] ने कुछ दिनोके बाद गुडोको कहापण देकर कहा—जाओ

---

[1] ध० प०, २२-१, अ० क०, ५७१

सुंदरीको मारकर श्रमण गोतमकी गंधकुटीके पास मालोके कूड़ेमें डाल आओ ...।..राजाने कहा—तो (मुर्दा लेकर) नगरमे घूमो।....(फिर) राजाने सुदरीके शरीरको कच्चे श्मशानमे मचान बाँधकर रखवा दिया। ...गुडोने उस कहापणसे शराब पीते ही झगडा किया (और रहस्य खोल दिया)...। राजाने फिर तीर्थिकोको कहा--जाओ, यह कहते हुए नगरमें घूमो कि यह सुदरी हमने मरवाई...। (फिर) तीर्थिकोने भी मनुष्य-वधका दड पाया।

उदानमे कहा है—(१) तीर्थिकोने खुद मारा। (२) जेतवनकी परिखामे कुआँ खोदकर सुदरीके शरीरको दबा दिया। (३) सप्ताह बाद अपनी ही बदनामी रह गई। लेकिन धम्मपदअट्ठकथामे—(१) तीर्थिको-ने गुडोसे मरवाया। (२) जेतवनकी गधकुटीके पास मालाके कूडेमे सुदरी-के शरीरको डाल दिया। (३) धूर्तोने शराबके नशेमे भडा फोड दिया। (४) तीर्थिकोको भी मनुष्य-वधका दड मिला। यहाँ यद्यपि अन्य अंशोका समाधान हो सकता है, तथापि उदानका 'परिखामे गाडना' और अट्ठकथाका गधकुटीके पास कूडेमे डालना, परस्पर विरुद्ध दिखाई पडते है। आरामोके चारो ओर परिखा होती थी, इसके लिये विनयपिटकमे यह वचन है—"उस[१] समय आराममे घेरा नही था, बकरी आदि पशु भी पौधोका नुकसान करते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—बाँस-वाट, कंटकी-वाट, परिखा-वाट इन तीन वाटो(=रुँधान)से घेरनेकी अनुज्ञा देता हूँ।" यह परिखा आरामके चारो ओर होनेसे गधकुटीके समीप नही हो सकती। दोनोका विरोध स्पष्ट ही है। ऐसे भी उदान मूल सूत्रोसे सबंध रखता है, इसलिये उसकी, अट्ठकथासे अधिक प्रामाणिकता है। दूसरे उसका कथन भी अधिक सभव प्रतीत होता है। परिखा दूर होनेसे वहाँ आदमियोके आने-जानेका उतना भय न था, इसलिये खून करनेका वही स्थान हत्यारोके

---

[१] विनयपिटक चुल्लवग्ग, सेनासन० ६, पृ० २५०

अधिक अनुकूल था। गंधकुटी जो मुख्य दर्वाजेके पास थी। वहाँ लोगोंका बराबर आना-जाना रहता था। शरीर ढाँकने भरके लिये मालाओंके ढेरका गधकुटीके पास जमा करके रखना भी अस्वाभाविक है।

युन्-च्वेङ ने लिखा है—

Behind the convent, not far, is where the Brahmachari heretics killed women and accused Buddha of the murder. (*The Life of Hiuen-Tsang*, p. 93).

फाहियानने इसके लिये कोई विशेष स्थान निर्दिष्ट नही किया है।

परिखा—सुदरीके इस वर्णनसे यह भी पता लगता है कि जेतवनके चारो ओर परिखा खुदी हुई थी। इसलिये बाँस या काँटेकी बाड़ नही रही होगी।

इन इमारतोके अतिरिक्त जेतवनके अदर पेशाबखाने, पाखाने, चक्रमणशालाएँ भी थी; किन्तु इनका कोई विशेष उद्धरण नही मिलता।

जेतवन बननेका समय—जेतवन-निर्माणमे दिए विनयके प्रमाणसे पता लगता है कि बुद्धको राजगृहमे अनाथपिंडकने वर्षावासके लिये निमत्रित किया था। फिर वर्षा भर रहनेके लिये स्थान खोजते हुए उसे जेतवन दिखलाई पडा और फिर उसने बहुत धन लगाकर वहाँ अनेक सुदर इमारतें बनवाई। यद्यपि सूत्र और विनयमे हमे बुद्धके वर्षावासोंकी सूची नही मिलती तो भी अट्ठकथाएँ इसकी पूरी सूचना देती है। अंगुत्तरनिकाय-अट्ठकथा (८।४।५)मे यह इस प्रकार है—

वर्षा०	ई० पू०	
१	(५२७)	ऋषिपतन (सारनाथ)
२	(५२६)	राजगृह (वेलुवन)

वर्षा०	ई० पू०	
३	(५२५)	राजगृह (वेलुवन)
४	(५२४)	,, ,,
५	(५२३)	वैसाली (महावन)
६	(५२२)	मकुल पर्वत
७	(५२१)	तावतिसभवन (त्रायस्त्रिंश लोक)
८	(५२०)	भर्ग (सुमुमारगिरि=चुनार)
९	(५१९)	कौशाबी
१०	(५१८)	पारिलेय्यकवनसंड
११	(५१७)	नाला
१२	(५१६)	वेरजा
१३	(५१५)	चालिय पर्वत
१४	(५१४)	जेतवन
१५	(५१३)	कपिलवत्तु
१६	(५१२)	आलवी
१७	(५११)	राजगृह
१८	(५१०)	चालिय पर्वत
१९	(५०९)	चालिय पर्वत
२०	(५०८)	राजगृह
२१	(५०७)	श्रावस्ती
२२	(५०६)	,,
२३	(५०५)	,,
२४	(५०४)	,,
२५	(५०३)	,,
२६	(५०२)	,,
२७	(५०१)	,,

वर्षा०	ई० पू०	
२८	(५००)	श्रावस्ती
२९	(४९९)	,,
३०	(४९८)	,,
३१	(४९७)	,,
३२	(४९६)	,,
३३	(४९५)	,,
३४	(४९४)	,,
३५	(४९३)	,,
३६	(४९२)	,,
३७	(४९१)	,,
३८	(४९०)	,,
३९	(४८९)	,,
४०	(४८८)	,,
४१	(४८७)	,,
४२	(४८६)	,,
४३	(४८५)	,,
४४	(४८४)	,,
४५	(४८३)	वैशाली (वेलुवगाम)

इसके देखनेसे मालूम होता है कि तथागतने जेतवनमें सर्वप्रथम वर्षावास बोधिके चौदहवे वर्षमे किया था। इसका अर्थ यह भी है कि जेतवन बना भी इसी वर्ष (५१४-५१३ ई० पू०)में था, क्योंकि विनयका कहना साफ है कि अनाथपिडकने वर्षावासके लिये निमन्त्रित किया था और विनयके सामने अट्ठकथाका प्रमाण नही। यहाँ इस बातपर विचार करनेके लिये कुछ और प्रमाणोपर विचार करना होगा।

वर्षावासके लिये जेतवनमें निमंत्रित होना इसलिये जब जेतवनको पहले गये, तो वर्षावास भी वही किया।

(क) कौशांबी[१]मे भिक्षुओके कलहके बाद पारिलेयकमें जाकर रहना, वहाँसे फिर जेतवनमें।

(ख) उदान[२]में एकात विहारके लिये पारिलेयकमें जाना लिखा है, झगड़ेका जिक्र नही।

(ग) सयुत्तनिकाय[३]में एकात विहारका भी जिक्र नही। बिल्कुल

---

[१] "कोसंबियं पिंडाय चरित्त्वा...संघमज्झे ठितको'व...गाथाय भासित्वा...बालकलोणकारगामे...। अथ...पाचीनवंसदाये...। अथ...पारिलेय्यके...यथाभिरत्तं विहरित्त्वा...अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो...सावत्थियं...जेतवने...।"

—महावग्ग, कोसंबक्खन्धक १०, ४०४–४०८, पृष्ठ।

[२] "भगवा कोसंबियं विहरति घोसितारामे। तेन खो पन समयेन भगवा आकिण्णो विहरति भिक्खूहि, भिक्खुनीहि उपासकेहि उपासिकाहि राजूहि राजमहामत्तेहि तित्थियेहि तित्थियसावकेहि आकिण्णो दुक्खं न फासु विहरति।...अथ खो भगवा...अनामंतेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिक्खुसंघं एको अदुतीयो येन परिलेय्यकं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन पारिलेय्यकं तदवसरि। तत्तसुदं भगवा पारिलेय्यके विहरति रक्खितवनसंडे भद्दसालमूले। अञ्ञातरोपि खो हत्थिनागो...येन भगवा तेनुपसंकमि।"

—उदान, ४।५

[३] "एकं समयं भगवा कोसंबियं विहरति घोसितारामे।...कोसंबियं पिंडाय चरित्वा...अनामंतेत्वा उपट्ठाके, अनपलोकेत्वा भिक्खुसंघं, एको अदुतीयो चारिकं पक्कामि।...एकको भगवा तस्मिं समये विहरितुकामो होति।...अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन पारिलेय्यकं

चुपचाप पारिलेयककका चला जाना लिखा है। पीछे चिरकालके बाद आनद-का भिक्षुओके साथ जाना, किंतु हाथी आदिका वर्णन नहीं।

(घ) धम्मपदअट्ठकथा[1] मे झगडेके विस्तारका वर्णन है, और महा-वग्गकी तरह यात्रा करके पारिलेयकमें जाना तथा वहाँ वर्षावास करना। वर्षावासके बाद फिर वहाँसे जेतवन जाना भी लिखा है।

यद्यपि चारो जगहोकी कथाओमे परस्पर कितना ही भेद है, किंतु सयुत्तनिकायसे भी, जो नि सन्देह सबसे पुरातन प्रमाण है, चिरकाल तक पारिलेय्यकमे वास करना मालूम होता है, क्योकि वहाँ भिक्षु आनदसे कहते है—'आयुष्मान् आनद ! भगवान्के मुखसे धर्मोपदेश सुने बहुत दिन हुए।' सयुक्तनिकायके बाद उदानका नबर है। वहाँ झगडेका जिक्र नही, तोभी चिरकाल तक वहाँ रहना लिखा है। यद्यपि इन दोनो पुराने प्रमाणोमें पारिलेय्यकसे श्रावस्ती जाना नही लिखा है, तोभी पारिलेय्यकमे अधिक समयका वास वर्षावासके विरुद्ध नही जाता। विनय और पीछेके दूसरे ग्रन्थोमे वर्णित जेतवन-गमनसे कोई विरोध नही है। यहाँ, हाथीकी सेवाकी कथा सयुत्तनिकायके बाद उदानके समयमे गढी गई मालूम होती है। पारिलेय्यकसे वर्षाके बाद जेतवनमे जाना निश्चित मालूम होता है। पारि-

---

तदवसरि। तत्थ सुदं पारिलेय्यके विहरति भद्दसालमूले।...अथ खो संबहुला भिक्खू...आनंदं उपसंकमित्वा...चिरस्सं सुता खो नो आवुसो आनंद भगवतो सम्मुखा धम्मियकथा।...अथ खो...आनंदो तेहि भिक्खूहि सद्धिं येन पारिलेय्यकं भद्दसालमूलं येन भगवा तेनुपसंकमि।...भगवा धम्मिया कथाय संदस्सेसि।" —सं० नि०, २१।८।९

[1] "कोसंबियं पिंडाय चरित्वा अनपलोकेत्वा भिक्खुसंघं एककोव... बालकलोणकारगामं गंत्वा...पाचीनवंसदाये...येन पारिलेय्यकं तदवसरि ...भद्दसालमूले पारिलेय्यके एकेन हत्थिना उपट्ठहियमानो फासुकं वस्सा-वासं वसि।...अनुपुब्बेन जेतवनं अगमासि।..." (ध० प०, ११५, अ० क०)

लेय्यकका वर्षावास ऊपरकी सूचीमें बोधिसे दसवें वर्ष (५१८ ई० पू०)में है। अत इससे पूर्व ही जेतवन बना था। बोधि-प्राप्तिके समय तथागतकी आयु ३५ वर्षकी थी। सयुत्तनिकायमे राजा प्रसेनजित्से, सभवतः पहली, मुलाकात होनेका इस प्रकार वर्णन आया है—

"भगवान्...जेतवनमे विहरते थे। राजा प्रसेन्जित् कोसल.. भगवान्के पास जा सम्मोदन करके एक तरफ बैठ गया। ..फिर भगवान् से कहा। आप गोतम भी—'हमने अनुत्तर सम्यक् सबोधिको प्राप्तकर लिया'—यह प्रतिज्ञा करते है?—जिसको महाराज! अनुत्तर सम्यक्-सबुद्ध हुआ कहे, ठीक कहते हुए वह मुझे ही कहे।...हे गोतम! जो भी सघी, गणी, गणाचार्य, ज्ञात, यशश्वी तीर्थंकर, बहुत जनोद्वारा साधु-सम्मत, हैं..जैसे—पूर्ण काश्यप, मखलि, गोसाल, निगठ नाथपुत्त, संजय वेलट्ठिपुत्त, पकुध कच्चायन, अजित केसकबल, वह भी पूछने पर 'अनुत्तर सम्यक् सबोधिको जान गए', यह दावा नही करते। फिर क्या कहना है, आप गौतम तो जन्मसे दहर (=तरुण) है, प्रव्रज्यासे भी नए हैं।...भगवान्, आज से मुझे अपना शरणागत उपासक....धारण करे[1]।"

यहाँ राजा प्रसेनजित् जेतवनमे जाकर, निर्ग्रंथ ज्ञातृ-पुत्र (महावीर) आदिका यश वर्णन करके, तथागतको उमरमें कम और नया साधु हुआ कहता है। इससे मालूम होता है कि तथागत अभिसबोधि (३५ वर्षकी आयु) के बहुत देर बाद श्रावस्ती नही गए थे। उस समय जेतवन बन चुका था। 'दहर' कहनेके लिये हम ४५ वर्षकी उम्र तककी सीमा मान सकते हैं। इस प्रकार पुराने सुत्तंतके अनुसार भी अभिसबोधिसे दसवें वर्ष (५१९ ई० पू०)से पूर्व ही जेतवन बन चुका था।

महावग्गमे राजगृहसे कपिलवस्तु, फिर वहाँसे श्रावस्ती जेतवन जानेका वर्णन आया है—

---

[1] **संयुत्तनिकाय, पृ० २३**

"भगवान्[1] राजगृहमें. . . विहार करके. . . चारिका चरण करते हुए . . . शाक्य देशमें कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे।. . . .फिर भगवान् पूर्वाह्ण समय. . . .पात्र चीवर लेकर जहाँ शुद्धोदन शाक्य का घर था वहाँ गए, और रखे हुए आसन पर बैठे। तब राहुलमाता देवीने राहुल कुमारसे कहा। राहुल! यह तेरा पिता है, जा दायज्ज माँग। . . .राहुल कुमार यह कहते हुए भगवान्के पीछे पीछे हो लिया—'श्रमण, मुझे दायज्ज दो', 'श्रमण, मुझे दायज्ज दो'। तब भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्रसे कहा —तो सारिपुत्त तू राहुल कुमारको प्रव्रजित कर. . .। फिर भगवान् कपिलवस्तुमे इच्छानुसार विहार कर श्रावस्तीकी ओर चारिका के लिये चल दिए। वहाँ. . . अनाथपिडकके आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्तके उपस्थागक-कुलने एक लड़के को आयुष्मान् सारिपुत्रके पास प्रव्रज्या देनेके लिये भेजा। आयुष्मान् सारिपुत्र-के चितमे हुआ, भगवान्ने प्रज्ञप्त किया है, एकको, दो सामणेर अपनी सेवामें न रखना चाहिए। और यह मेरा राहुल सामणेर है ही. . ." अट्ठकथासे स्पष्ट है कि यह यात्रा बोधिके दूसरे वर्षमे अर्थात् गयासे वाराणसी ऋषि-पतन, वहाँसे राजगृह आकर फिर कपिलवस्तु जाना। इस प्रकार ५२६ ई० पू०मे जेतवन मौजूद मालूम होता है।

जातकट्ठकथामे इसे इस तरह संक्षिप्त किया है—शास्ता[1] बुद्ध होकर प्रथम वर्षा० ऋषिपतनमे बसकर,. . . . उरुवेलाको जा वहाँ तीन मास बसे, . . भिक्षुसघ-सहित पौषकी पूर्णिमाको राजगृहमें पहुँच दो मास ठहरे। इतने[2]मे वाराणसीसे निकलेको पाँच मास हो गए।. . . . फाल्गुन पूर्णिमाको उस (=उदायि)ने सोचा. . . अब यह (यात्राका) समय है. . .। राजगृहसे निकलकर प्रतिदिन एक योजन चलते थे।. . .(इस प्रकार) राजगृहसे ६० योजन कपिलवस्तु दो मासमे पहुँचे।. . . (वहाँसे) भगवान्

---

[1] महावग्ग (सिंहललिपि), ३९१–९३ [2] जातक, निदान।

फिर लौटकर राजगृह जा, सीतवनमें ठहरे। उस समय अनाथपिडक गृहपति...अपने प्रिय मित्र राजगृहके सेठके घर जा, बुद्धोत्पत्ति सुन,.. शास्ताके पास जा धर्मोपदेश सुन,...द्वितीय दिन बुद्ध प्रमुख संघको महा-दान दे, श्रावस्ती आनेके लिये शास्ताकी प्रतिज्ञा ले...।

यहाँ विनयसे जातकट्ठकथाका, कपिलवस्तुसे आगे जानेके स्थानमें विरोध है। जातकट्ठकथाके अनुसार बुद्ध वहाँसे लौटकर फिर राजगृह आए। लेकिन विनयके अनुसार राहुलको प्रव्रजितकर वे श्रावस्ती जेतवन पहुँचे। जातकके अनुसार बुद्धकी कपिलवस्तुकी यात्रा बोधिसे दूसरे वर्ष (५२६ ई० पू०)की फाल्गुन-पूर्णिमाको आरभ हुई, और वे दो मास बाद वैशाख-पूर्णिमाको वहाँ पहुँचे। वहाँसे फिर लौटकर राजगृह आकर वही उन्होंने वर्षावास किया जो ऊपरकी सूचीसे स्पष्ट है। वही सीतवनमें अना-थपिडक का जातक-अट्ठकथाके अनुसार श्रावस्ती आनेकी प्रतिज्ञा लेना, विनयके अनुसार वर्षावासके लिये निमत्रण स्वीकार कराना होता है। इस प्रकार तथागतका जाना द्वितीय वर्षावासके बाद (५२६-५२५ ई० पू०) हो सकता है।

अब यहाँ दो बातोपर ही हमे विशेष विचार करना है—(१) विनयके अनुसार कपिलवस्तुसे श्रावस्ती जाना और वहाँ जेतवनमे ठहरना। (२) जातक अ० के अनुसार कपिलवस्तुमे राजगृह लौट आना, और सभवतः वर्षावासके बाद दूसरे वर्ष जेतवनमे विहार तैयार हो जानेपर वहाँ जाना। यद्यपि विनय ग्रथकी प्रामाणिकता अट्ठकथासे अधिक है, तथापि इसमें कोई सन्देह नही कि कपिलवस्तुके जाने से पहले अनाथपिडकका तथागत से मिलना नही आता, इसीलिये कपिलवस्तुसे श्रावस्ती जाकर जेतवनमे ठहरना बिल्कुल ही सभव नही मालूम पडता। इसके विरुद्ध जातकका वर्णन सीतवनके दर्शनके (द्वितीय वर्षा०के) बाद जाना अधिक युक्तियुक्त मालूम होता है। विनयने स्पष्ट कहा है कि अनाथपिडकने वर्षावासके लिये निमं-त्रण दिया, और इसीलिये तीन मासके निवासके लिये जेतवनके झटपट

बनवानेकी भी अधिक जरूरत पड़ी; इस प्रकार तथागत जेतवन गए और साथ ही वही उन्होने वर्षावास भी किया—यह अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। यद्यपि वर्षावासोकी सूचीमें तीसरा वर्षावास राजगृहमें लिखा है, तोभी जेतवन बोधिके दूसरे और तीसरे वर्षके बीच (५२६-५२५ ई० पू०)मे बना जान पडता है।

पहिले दिये अट्ठकथाके उद्धरणसे मालूम होता है कि तीर्थिकोने जेत-वनके पास तीर्थिकाराम प्रथम बोधि अर्थात् बोधिके बाद प्रथम पन्द्रह वर्षों (५२७-५१३ ई० पू०)मे बनाना आरंभ किया था। इससे निश्चित ही है कि उस (२१३ ई० पू०)से पूर्व जेतवन बन चुका होगा।

ऊपर दी गई वर्षावासकी सूचीके अनुसार प्रथम वर्षावास श्रावस्तीमें बोधिसे चौदहवे साल (५१४ ई० पू०)मे किया। चूँकि अनाथपिडकका निमत्रण वर्षावासके लिये था, इसलिये यह भी जेतवनके बननेका साल हो सकता है।

सातवाँ वर्षावास त्रयस्त्रिश-लोकमे बतलाया जाता है। उस वर्ष आषाढ़ पूर्णिमा (बुद्धचर्या पृष्ठ ८५)के दिन तथागत श्रावस्ती जेतवनमे थे। इस प्रकार इस समय (५२१ ई० पू०) जेतवन बन चुका था।

साराश यह कि जेतवनके बननेके सात समय हमे मिलते हैं—

(१) सोलहवें वर्ष (५१२ ई० पू०)से पूर्व, (अट्ठकथा) पृ० २५९।
(२) पन्द्रहवे ,, (५१३ ई० पू०)से पूर्व, (अट्ठकथा) पृ० २९४।
(३) दसवे ,, (५१८ ई० पू०)से पूर्व, (विनय सूत्र)पृ० २९६।
(४) ,, ,, ,, ,, (सूत्र) पृ० २९८।
(५) सातवें (५२१ ई० पू०)से पूर्व, (अट्ठकथा) पृ० २९९।
(६) द्वितीय (५२० ई० पू०) (विनय) पृ०, २९९।
(७) तृतीय (५२५ ई० पू०) (अट्ठकथा) पृ०, ३००।

इनमे पहले पाँचसे हमे यही मालूम होता है कि उक्त समयसे पूर्व किसी समय जेतवन तैयार हुआ, इसलिये उनका किसीसे विरोध नही है।

पूर्वाराम

जेतवनके बाद बौद्धधर्मकी दृष्टिमें दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान पूर्वाराम था। पहले हम पूर्वारामकी स्थितिके बारेमे सक्षेपसे विचार कर चुके है। पूर्वाराम और पूर्वद्वारके सबंधमे सयुक्तनिकाय[१] के और उदान[२] के इस उद्धरणसे कुछ प्रकाश पड़ता है।

"भगवान्...पूर्व्वाराममे...सायकाल ध्यानसे उठकर बाहरी द्वारके कोठेके बाहर बैठे थे।....(उस समय) राजा प्रसेनजित् भगवान्के पास पहुँचा।...उस समय सात जटिल, सात निगठ, सात अचेलक, सात एकसाटक और सात परिव्राजक, नख, लोम बढ़ाए अनेक प्रकारकी खारिया लेकर भगवान्के अविदूरसे जाते थे। तब राजा...आसनसे उठकर, उत्तरासगको एक कधेपर कर, दाहिने घुटनेको भूमिपर रख, उन सातो ...की ओर अंजलि जोड़ तीन बार नाम सुनाने लगा—भते! मै राजा प्रसेनजित् कोसल हूँ ..।"

इसपर अट्ठकथा—"बाहरी द्वारका कोठा—प्रासाद—द्वारकोट्ठकके बाहर, विहारके द्वारकोट्ठकसे बाहरका नही। वह प्रासाद **लौहप्रासाद**की भाँति चारो ओर चार द्वारकोट्ठकोसे युक्त, प्राकारसे घिरा था। उनमेसे पूर्व द्वारकोट्ठकके बाहर प्रासादकी छायामे पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके...बैठे थे। अविदूरसे, अर्थात् अविदूर मार्गसे नगर (=श्रावस्ती)मे प्रवेश करते थे।"

इससे हमें निम्न-लिखित बातें मालूम होती है—

(१) पूर्वारामके प्रासादके चारो ओर चार फाटकोंवाली चहारदीवारी थी।

---

[१] ३।२।१, पृ० २४; अ० क० २१६

[२] ६।२

(२) अनुराधपुरका लौहप्रासाद और पूर्वारामका प्रासाद कई अंशोमें समान थे। सभवत: पूर्वारामके नमूनेपर ही लौह-प्रासाद बना था।

(३) इसके चारों तरफ चार दर्वाजे थे।

(४) (जाडेमे) सायकालको पश्चिम द्वारके बाहर बैठकर प्राय: तथागत धूप लिया करते थे।

(५) वहाँ राजा प्रसेनजित् तथा दूसरे सभ्रांत व्यक्ति भी उपस्थित होते थे।

(६) उसके पासहीसे मार्ग था।

(७) इस स्थानसे नगरका पूर्वद्वार बहुत दूर न था, क्योकि जटिलोके लिये 'नगरको जाते थे' न कहकर 'नगरमे प्रवेश करते थे' कहा है।

(८) सभवत: पूर्वाराम[1] की ओर भी, जटिल, निगठ (=जैन), अचेलक, एकसाटक और परिव्राजक साधुओके विहार थे, जहाँसे वे नगरमे जा रहे थे।

पहले[2] यह बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार विशाखाका 'महा-लता आभूषण' एक दिन जेतवनमे छूट गया था। विशाखाने तथागतसे कहा —"भंते[3]! आर्य आनदने मेरे आभूषणको हाथ लगाया...। उसको देकर, (उसके मूल्यसे) चारो प्रत्ययोमे कौन प्रत्यय ले आऊँ? विशाखा! पूर्व द्वारपर, सघके लिये वासस्थान बनाना चाहिए। अच्छा भंते! यह कहकर तुष्टमानसा विशाखाने नव करोड़मे भूमि ही खरीदी। अन्य नव करोडसे विहार बनाना आरंभ किया। ..एक दिन अनाथपिडकके घर भोजन करके शास्ता उत्तर द्वारकी ओर गए।....उत्तर द्वार जाते हुए देख चारिकाको जाएँगे...यह सुन...विशाखाने जाकर...कहा— भंते! कृताकृत जाननेवाले एक भिक्षुको लौटाकर (=देकर) जाएँ।—

---

[1] वर्तमान हनुमनवाँ। [2] देखो पृष्ठ ६४

[3] ध० प०, ४–८; अ० क०, १९९, ३८–३९

तो वैसे (भिक्षु) का पात्र ग्रहण कर।...विशाखाने ऋद्धिमान् समझ महा-मोग्गलानका पात्र पकड़ा।... उनके अनुभावसे पचास-साठ योजनपर वृक्ष और पाषाणके लिये आदमी जाते थे। बडे बडे पाषाणों और वृक्षोको लेकर उसी दिन लौट आते थे।.....जल्दी ही दो-महला प्रासाद बना दिया गया। निचले तलपर पाँच सौ गर्भ (=कोठरियाँ) और ऊपरकी भूमि (=तल)पर पाँच सौ गर्भ, (कुल) एक हजार गर्भोंसे सुशोभित ...था। शास्ता नौमास चारिका करके फिर श्रावस्ती आए। विशाखाके प्रासादमें भी काम नौ मासमे समाप्त हुआ। प्रासादके कूटको ठोस साठ जलघड़ेके बराबर लाल सुवर्णसे बनवाया। शास्ता जेतवनको जा रहे हैं, यह सुन (विशाखाने) आगे जा, शास्ताको अपने विहारमे लाकर..। उसकी एक सहायिका हजार मूल्यवाले एक वस्त्रको ले आकर—सहायिके! तेरे प्रासाद-मे मै इस वस्त्रका फर्श बिछाना चाहती हूँ, बिछानेका स्थान मुझे बतलाओ। वह उससे कम मूल्यवाले वस्त्रको न देख रोती हुई खड़ी थी। तब आनंद स्थविरने कहा—सोपान और पैर धोनेके स्थानके बीचमे पाद-पुछन करके बिछा दो।....विहारकी भूमिको खरीदनेमे नौ करोड, विहार बनवानेमे नौ, और विहारके उत्सवमे नौ, इस प्रकार सब सत्ताईस करोड उसने बुद्ध-शासनमे दान किया। स्त्री होते, तथा मिथ्या-दृष्टिके घरमे बसने वालीका इस प्रकारका त्याग (और) नही है।"

इससे मालूम होता है—

(९) पूर्वाराम ९ मासमे बना था।

(१०) मोग्गलान बनानेमे तत्त्ववधायक थे।

(११) मकान बनवानेमे कुल खर्च २७ करोड हुआ।

(१२) यह दो-महला था। प्रत्येक तलमे ५०० गर्भ थे।

विनयपिटकमे है—

"विशाखा[1]...सघके लिये आलिद (=बरामदा)-सहित, हस्तिनख

[1] विनयपिटक चुल्लवग्ग, सेनासनक्खंधक ६

प्रासाद बनवाना चाहती थी।"

इससे—

(१३) वह बरामदा सहित था।

(१४) वह हस्तिनख प्रासाद था।

संयुक्तनिकायमें—

"भगवान्[1]...पूर्वाराममें...सायकालको...पीछेकी ओर धूपमें पीठ तपाते बैठे हुए थे। आयुष्मान् आनद भगवान्‌के पास गए।...और हाथमे भगवान्‌के शरीरको रगड़ते हुए बोले—आश्चर्य है भते! अब भगवान् ..का छवि वर्ण इतना परिशुद्ध नही रहा। गात्र शिथिल है, सब झुर्रियाँ पड़ गई हैं। शरीर सामने झुका हुआ है। चक्षु.. (आदि) इद्रियोंमे भी विपरीतता दिखलाई पडती है।"

इसपर अट्ठकथामे है—"प्रासाद पूर्व ओर छायासे ढँका था, इसीलिये प्रासादके पश्चिम-दिशाभागमे धूप थी। उस स्थानपर...बैठे थे।...यह हिम पडनेका शीत समय था। उस वक्त महाचीवरको उतारकर सूर्यकिरणोसे पीठको तपाते हुए बैठे थे।"

इनमे ये बाते और मालूम होती हैं—

(१५) उस समय तथागतके शरीरमे झुर्रियाँ पड़ गई थी, आँखों आदिकी रोशनीमे अंतर आ गया था।

(१६) प्रधान द्वार पूर्व ओर था, तभी 'पीछेकी ओर' कहा गया है। संयुक्तनिकायहीमे है—

"मोग्गलान[2] ने...पैरके अँगूठेसे मिगारमाताके प्रासादको हिलाया। ...उन भिक्षुओने (कहा)...यह मिगारमाताका प्रासाद गंभीरनेम, सुनिखात, अचल, असप्रकम्प्य है...।"

---

[1] सं० नि०, ५।६।२६

[2] ५०।२।४

अट्ठकयाने गंभीरनेमका अर्थ 'गंभीर भूमिभागमें प्रतिष्ठित' किया है। और 'सुनिखात'का, कूटकर अच्छी तरह स्थापित।"

इनसे—

(१७) पूर्वाराम ऊँची और दृढ भूमिमे बनाया गया था।

(१८) "कूटकर गाडा गया था"से खभोको गाड़कर, लकड़ियोंका बना मालूम होता है।

मज्झिमनिकायमे—

"हे गौतम, जिस[1] प्रकार इस मिगारमाताके प्रासादमें अतिम सोपान कलेवर तक अनुपूर्व क्रिया देखी जाती है...।"

अट्ठकथामे—

"प्रथम सोपानफलक[2] तक, एक ही दिनमे सात महलका प्रासाद नही बनाया जा सकता। वस्तु शोधन कर स्तभ खडा करनेसे लेकर चित्रकर्म करने तक अनुपूर्व क्रिया।"

इससे भी—

(१९) वह प्रासाद सात महलका था, जो (१२)से विल्कुल विरुद्ध है, और बतलाता है कि किस प्रकार बातोमे अतिशयोक्ति होती है।

(२०) मकान बनानेमे पहले भूमिको बराबर किया जाता था, फिर खभे गाडे जाते थे,...अतमे चित्रकर्म होता था।

मज्झिमनिकायमे ही—

"जिस[3] प्रकार आनद! यह मिगारमाताका प्रासाद हाथी, गाय, घोडा-घोडीसे शून्य है, सोना-चाँदीसे शून्य है; स्त्री-पुरुष-सन्निपातसे शून्य है"। इसकी अट्ठकथामे लिखा है—

---

[1] म० नि०, ३।१।७, गणक-मोग्गलानसुत्त, १०७

[2] अ० क०, ८५५

[3] म० नि०, ३।२।७, चूल सुञ्ञातासुत्त, १२१

"वहाँ काष्ठ-रूप[1], पुस्त-रूप, चित्र-रूपमें बने हाथी आदि है। वैश्रवण माधाता आदिके स्थित स्थानपर चित्रकर्म भी किए गए है। रत्न-परिसेवित जँगले, द्वारबध, मच, पीठ आदि रूपसे स्थित, तथा जीर्ण प्रतिसंस्करणार्थ रखा हुआ मोना-चाँदी है। काष्ठरूपादिके रूपमें, तथा प्रश्न पूछने आदिके लिये आनेवाले स्त्री-पुरुष है। इसलिये वह (मिगारमातु पासाद) उनमे शून्य है,का अर्थ है—इद्रिययुक्त जीवित हाथी आदिका, तथा इच्छानुसार उपभोगयोग्य सोने-चाँदीका, नियमपूर्वक बसनेवाले स्त्री-पुरुषोका अभाव"।

इसमे —

(२१) वह सोने-चाँदीसे शून्य था। अट्ठकथाकी इसपरकी लीपा-पोती सिर्फ यही बतलाती है कि कैसे पीछे भिक्षुवर्ग चमक-दमकके पीछे पड़कर, तावील किया करता था।

दीघनिकायकी अट्ठकथामे—

"(विशाखा)[2] दशवलकी प्रधान उपस्थायिकाने उस आभूषणको देकर नव करोडमे ..करीस भर भूमिपर प्रासाद बनवाया। उसके ऊपरी भागमे ५०० गर्भ, निचले भागमे ५०० गर्भ, १००० गर्भोसे सुशोभित। वह प्रासाद खाली नही शोभा देता था, इसलिये उसको घेरकर, साढ़े पाँच सौ घर, ५०० छोटे प्रासाद और ५०० दीर्घशालाएँ बनवाईं...। अनाथपिडकने ..श्रावस्तीके दक्षिण भागमे **अनुराधपुरके महाविहारसदृश** स्थानपर जेतवन महाविहारको बनवाया। विशाखाने श्रावस्तीके पूर्व भागमे **उत्तमदेवी** विहारके समान स्थानपर पूर्वारामको बनवाया। भगवान्ने इन दो विहारोमे नियमित रूपसे निवास किया। (वह) एक वर्षा

---

[1] अ० क०। रूप=मूर्त्ति।

[2] दी० नि०, आनञ्जसुत्त २०, अ० क० पृ० १४। अं० नि० अ० क० १।७।२ भी।

जेतवनमें व्यतीत करते थे, एक पूर्वाराममें।"

(२२) विहार एक करीस अर्थात् प्राय. ३ एकड भूमिमें बना था।

(२३) चारो ओर हजारो घरो, छोटे प्रासादो, दीर्घशालाओका लिखना अट्ठकथाकारोका अपना काम मालूम होता है।

(२४) अनुराधपुरमें भी जेतवन और पूर्वारामका अनुकरण किया गया था। पूर्वाराम श्रावस्तीके उसी प्रकार पूर्व तरफ था, जैसे अनुराधपुर (सिहल)मे उत्तरदेवी विहार।

जिस प्रकार सुदत्तसेठका नाम अनाथपिडक प्रसिद्ध है; उसी प्रकार विशाखा मिगारमाताके नामसे प्रसिद्ध है। नामसे, मिगार विशाखाका पुत्र मालूम होगा, किंतु बात ऐसी नही है, मिगार सेठ विशाखाका ससुर था। इस नामके पडनेकी कथा इस प्रकार है—

"विशाखा[1] ...अगराष्ट्र (भागलपुर, मुँगेर जिले)के भद्दिय (= मुगेर) नगरमे मेंडक सेठके पुत्र धनंजय सेठकी अग्रमहिषी सुमना देवीके कोखमे पैदा हुई...। बिंबिसार राजाके आज्ञा-प्रवर्तित स्थान (अंग-मगध)मे पाँच अतिभोग व्यक्ति **जोतिय, जटिल, मेंडक, पुण्णक** और **काक-बलिय** थे...। श्रावस्तीमे कोसल राजाने बिंबिसारके पास सदेश भेजा ...हमको एक महाधनी कुल भेजो।...राजाने...धनजयको...भेजा। तब कोसल राजाने श्रावस्तीसे सात योजनके ऊपर साकेत (अयोध्या) नगरमे श्रेष्ठीका पद देकर (उसे) बसा दिया। श्रावस्तीमे मिगारसेठका पुत्र पूर्णवर्द्धनकुमार वयप्राप्त था।...मिगार सेठ (बारातके साथ) कोसल राजाको लेकर गया।...चार मास (उन्होने वही) पूरे किये। ...(धनजय सेठने विशाखाको) उपदेश देकर दूसरे दिन सभी श्रेणियोको इकट्ठा करके राजसेनाके बीचमे आठ कुटुबियोको जामिन देकर—'यदि गए हुए स्थानपर मेरी कन्याका कोई दोष उत्पन्न हो, तो तुम उसे शोधन

[1] अं० नि०, १।७।२, अ० क० २१९

करना'—कहकर नौ करोड़ मूल्यके 'महालना' आभूषणसे कन्याको आभूषित कर, स्नान चूर्णके मूल्यमे ५४ सौ गाडी धन दे...। मिगारसेठीने... सातवें दिन...नगे श्रमणकोको बैठाकर, (कहा)--मेरी बेटी आवे, अर्हतोकी वदना करे...। वह...उन्हे देख... 'धिक्, धिक्' निंदा करती चली गई। ...नगे श्रमणोने सेठकी निदाकी—...क्यो गृहपति! दूसरी नहीं मिली? श्रमण गौतम की श्राविका (शिष्या) महाकालकर्णीको किसलिये इस घरमे प्रवेश कराया।... (सेठ) आचार्यो! बच्ची है...आप चुप रहे—यह कह नगोको बिदाकर, आसन पर बैठ सोनेकी कर्छूल लेकर विशाखा द्वारा परोसे (खाद्यको) भोजन करता था।...उसी समय एक मधूकरीवाला भिक्षु घरके द्वारपर पहुँचा...। वह ...स्थविरको देखकर भी...नीचे मुँहकर पायसको खाता ही रहा। विशाखाने .. स्थविरसे (कहा)—माफ करे भते! मेरा ससुर पुराना खाता है। उस (सेठ)ने अपने आदमियोसे कहा, ..इस पायसको हटाओ, इसे (=विशाखाको) भी इस घरसे निकालो। यह ऐसे मगल घरमें मुझे अशुचि-खादक बना रही है...। विशाखाने ..कहा—तात! इतने वचन मात्रसे मैं नही निकलती। मैं कुभदासीकी भॉति पनघटसे तुम्हारे द्वारा नही लाई गई हूँ। जीते मा बापकी लडकियाँ इतने मात्रसे नही निकला करती,.. आठो कुटुबिकोको बुलाकर मेरे दोषादोषकी शोध कराओ।...सेठने आठ कुटुबिकोको बुलाकर कहा—यह लडकी सप्ताह भी न परिपूर्ण होते, मंगल घरमे बैठे हुए मुझे अशुचि-खादक बतलाती है।...ऐसा है अम्म?—तातो! मेरा ससुर अशुचि खानेकी इच्छावाला होगा, मैने ऐसा करके नही कहा; एक पिडपातिक स्थविरके घर-द्वारपर स्थित होनेपर, यह निर्जल पायस भोजन करते हुए, उसका ख्याल (मनमें) नही करते थे। मैंने इसी कारणसे—'माफ करो भते! मेरा ससुर इस शरीरसे पुण्य नहीं करता, पुराने पुण्यको खाता है,'...कहा—आर्य, दोष नही है, हमारी बेटी तो कारण कहती है, तुम क्यो क्रुद्ध होते हो।... (फिर कुछ और

इल्जामोके जाँच करनेपर)—वह और उत्तर न दे, अधोमुख हो बैठ गया। फिर कुटुंबिकोने उससे पूछा—क्यो सेठ, और भी दोष हमारी बेटीका है? —नही आर्यो!—क्यो फिर निर्दोषको अकारण घरसे निकलवाते हो? उस समय विशाखाने कहा—पहले मेरे ससुरके वचनसे मेरा जाना ठीक न था। मेरे आनेके दिन मेरे पिता ने दोष शोधनके लिये तुम्हारे हाथमे रखकर (मुझे) दिया था। अब मेरा जाना ठीक है। यह कह, दासो दासोंको यान तैयार करनेके लिये आज्ञा दी। तब सेठने उन कुटुबिकोको लेकर कहा —अम्म! अनजाने मेरे कहनेको क्षमा कर।—तात, तुम्हारे क्षतव्यको क्षमा करती हूँ; किंतु मै बुद्धशासनमे अनुरक्त कुलकी बेटी हूँ, हम बिना भिक्षुसघके नही रह सकती। यदि अपनी रुचिके अनुसार भिक्षु-सघकी सेवा करने पाऊँगी, तो रहूँगी।—अम्म! तू अपनी रुचिके अनुसार अपने श्रमणोकी सेवा कर।

तब विशाखाने निमन्त्रितकर दूसरे दिन ..बुद्धप्रमुख भिक्षुसघ को बैठाया।...मेरा ससुर आकर दशबलको परोसे (यह खबर भेजी)।... (मिगार सेठने बहाना करदिया) ..। आकर दशबलकी धर्मकथाको सुने ...। मिगारसेठ जाकर कनातसे बाहर ही बैठा। ..देशनाके अतमें सेठने **सोतापत्ति-फल**मे प्रतिष्ठित हो कनातको हटा..पचगसे वदनाकर, शास्ताके सामने ही—'अम्म! तू आजसे मेरी माता है'—यह कह विशाखाको अपनी माताके स्थानपर प्रतिष्ठित किया। तभीसे विशाखा 'मिगारमाता' प्रसिद्ध हुई।"

स्थानको देखनेपर हनुमनवाँही पूर्वाराम मालूम होता है।

तीर्थिकाराम

समयप्पवादक-परिव्वाजकाराम—पहिले[1] पाँच प्रकारके अन्य तीर्थिक—जटिल, निर्ग्रंथ आदि बतलाए है। अचेलक[1] एकदम नगे रहते

[1] ध० प० २२१८, अ० क० ५७८

थे। अट्ठकथामें—एक दिन भिक्षुओंने निर्ग्रंथोको देखकर कथा उठाई—आवुसो! सव तरह बिना ढँके हुए अचेलकोसे यह निर्ग्रंथ (=जैन) श्रेष्ठ-तर है, जो एक अगला भाग भी तो ढाँकते है, मालूम होता है ये सलज्ज हैं। यह सुन निर्ग्रथोंने कहा—इस कारणसे नही ढाँकते है, पाँशु धूलि भी तो पुद्गल (=जीव) ही है। प्राणी हमारे भिक्षा-भाजनमे न पडे, इस वजहसे ढाँकते है।" एकशाटक और परिव्राजकोका जिक्रकर चुके हैं। इन सभी मतोंके साधुओके आराम श्रावस्तीके बाहर फैले हुए थे। ये अधिकतर श्रावस्तीके दक्षिण और पूर्व तरफमे रहे होंगे, जिधर कि पूर्वाराम और जेतवन थे। चिंचा और सुदरीके वर्णनमे भी पता लगता है कि जेतवन-की ओर तीर्थिकोंके भी स्थान थे। इनमे **समयप्पवादक तिंदुकाचीर एक-सालक** मल्लिकाका आराम बहुत ही बडा था। हमने इसको **चौरेनाथ**के मदिरकी जगहपर निश्चित करनेके लिये कहा है। दीघनिकायमें कहा है—"पोट्ठपाद[1] परिव्राजक समयप्पवादक . . . मल्लिकाके आराममें तीस सौ परिव्राजकोकी बडी परिषद्के साथ निवास करता था।" अ० क०में—उस स्थानपर चक, तारुक्ख, पोक्खरसाति, "आदि ब्राह्मण, निर्ग्रंथ, अचे-लक, परिव्राजक आदि प्रव्रजित एकत्र हो अपने अपने समय (=सिद्धान्त)-का व्याख्यान करते थे; इसीलिये वह आराम समयप्पवादक (कहा जाता था). . . ।"

मज्झिमनिकायमे—

"समणमडिकापुत्र उग्गहमाण परिव्राजक समयप्पवादक. . .मल्लिकाके आराममें सात सौ परिव्राजकोकी बडी. . . . परिषद्के साथ वास करता था। उस समय पंचकग गृहपति दोपहरको श्रावस्तीसे भगवान्के दर्शनके लिये निकला। तब पचकग गृहपतिको ख्याल हुआ—भगवान्के दर्शनका यह समय नही है, भगवान् इस समय ध्यानमे हैं. . .। क्यो न. . . मल्लिकाके

---

[1] दी० नि०, ९

आराममें चलूँ।"

ये दोनों उद्धरण दीघनिकाय और मज्झिमनिकायके हैं; जो कि त्रिपिटकके अत्यंत पुराने भाग हैं[१]। इनसे हमें ये बातें स्पष्ट मालूम होती है—

(१) यह एक बडा आराम था, जिसमे ७०० से तीन हजार तक परिव्राजक निवास कर सकते थे।

(२) नगरसे जेतवन जानेवाले द्वार (=दक्षिण द्वार)के बाहर था।

(३) यहाँ बैठकर ब्राह्मण और साधु लोग नाना प्रकारकी दार्शनिक चर्चाएँ किया करते थे।

(४) बुद्ध तथा उनके गृहस्थ और विरक्त शिष्य यहाँ जाया करते थे।

जेतवनके पीछे आजीवकोकी भी कोई जगह थी। क्योकि जातकअट्ठ-कथामे आता है—

"उस समय[२] **आजीवक** जेतवनके पीछे नाना प्रकारका मिथ्या तप करते थे। उक्कुटिक प्रधान, वग्गुलिब्रत, कटकाप्रश्रय, पचातप, तपन आदि।"

परिव्राजकारामका बनना रुक जानेसे, जेतवनके बहुत समीप और कोई किसी ऐसे आरामका होना असंभव नही मालूम होता। शायद जेत-वनके पीछेकी ओर खुली ही जगहमे वे तपस्या करते रहे होगे।

सुतनु-तीर—[३]सयुक्तनिकायसे पता लगता है, सुतनुतीर पर भी

---

[१] "आयुष्मान् सारिपुत्र...(जेतवनसे) श्रावस्तीमें पिंडके लिये चले।...बहुत सबेरा है......(इसलिये) जहाँ अन्य तीर्थिकों, परि-ब्राजकोंका आराम था वहाँ गए।"

—अं० नि० ७।८।११, ९।२।८, १०।३।७

[२] जातकट्ठकथा १।१४।५

[३] "एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध सावत्थीमें सुतनुके तीर विहार करते थे।"—सं० नि०, ५१।१।३

भिक्षुओंका कोई विहार था। 'तीर' शब्दसे तो पता लगता है, सुतनु कोई जलाशय (=छोटी नदी, या बडा तालाब) होगा। संभवतः वर्तमान ओडाझार, खडौआझार सुतनुतीरको सूचित करते है। ऐसा होनेपर वर्तमान खजुहा ताल प्राचीन सुतनु है।

अंधवन—श्रावस्तीके पास एक और प्रसिद्ध स्थान अंधवन था। संयुत्तनिकाय-अट्ठकथामे —

"काश्यप[1] सम्यक्-सबुद्धके चैत्यकी मरम्मतके लिये धन एकत्रित करा कर आते हुए यशोधर नामक धर्मभाणक आर्यपुद्गलकी आँखे निकालकर, वहाँ (स्वय) अधे हुए पाँच सौ चोरोके बसनेसे... **अंधवन** नाम पडा। यह श्रावस्तीसे दक्षिण तरफ गव्यूति भर दूर राजरक्षासे रक्षित (वन) था..। यहाँ एकातप्रिय (भिक्षु)...जाया करते थे।"

फाहियान[2]ने इसपर लिखा है—

"विहारसे चार 'ली' दूर उत्तर-पश्चिम तरफ एक कुज है।... पहले ५०० अन्धे भिक्षु इस वनमे वास करते थे। एक दिन उनके मगल के लिये बुद्धदेवने धर्मव्याख्या की, उसी समय उन्होने दृष्टिशक्ति पाली। प्रसन्न हो उन्होने अपनी अपनी लकडियोको मिट्टीमे दबाकर प्रणाम किया। उसी दम वे लकड़ियाँ वृक्षके रूपमे, और शीघ्र ही वनके रूपमें परिणत हो गईं। ...इस प्रकार इसका यह नाम (अधवन) पडा। जेतवनवासी अनेक भिक्षु मध्याह्न भोजन करके (इस) वनमे जाकर ध्यानावस्थ होते है।"

इससे मालूम होता है—

(१) काश्यप बुद्धके स्तूपसे श्रावस्तीकी ओर लौटते समय यह स्थान रास्ते मे पड़ता था।

(२) श्रावस्तीसे दक्षिण एक गव्यूति या प्राय. २ मील पर था।

---

[1] स० नि०, ५।१।१०, अ० क०, ११४८

[2] ch. XX

(३) जेतवनसे उत्तर-पश्चिम ४ 'ली' (=१ मील से कम) था। दूरी और दिशाएँ इन पुरानी लिखंतोमे शब्दश. नहीं ली जा सकती। इसलिये **पुरैना**का ध्वस अधवन मालूम होता है। यह **भीटी**से श्रावस्तीके आनेके रास्तेमे भी है। भीटी को सर जान मार्शल[1] ने काश्यप-स्तूप निश्चित किया है।

पांडुपुर—श्रावस्तीके पास पाँडुपुर नामक गाँव था। धम्मपद-अट्ठकथामे "श्रावस्तीके अविदूर पाँडुपुर नामक एक गाँव था। वहाँ एक केवट वास करता था"।

इस गाँवके बारेमें इसके अतिरिक्त और कुछ मालूम नही है।

मैंने इन थोडेसे पृष्ठोमे श्रावस्ती और उसके पासके बुद्धकालीन स्थानो-पर विचार किया है। सुत्त, विनय और उसकी अट्ठकथाओकी सामग्री शायद ही कोई छूटी हो। यहाँ मुझे सिर्फ भौगोलिक दृष्टिमे ही विचार करना था, यद्यपि कही कही और बाते भी आ गई है [2]।

---

[1] A.S.R., 1910-11, p. 4

[2] जेतवनके नकशोंके लिये देखो Arch. Survey of India की १९०७-०८ और १९१०-११ की रिपोर्टें।

(६)

ज्ञातृ=जथरिया

पण्डित ज० श० एम० ए० ने मेरे बसाढ की खुदाई नामक लेखमें आये कुछ वाक्योके खण्डनमे, एक लेख लिखा। उसको पढनेसे मालूम होता है कि, मेरे लेखसे उन्हे दु:ख हुआ है। सभवत: कुछ और भी भूमिहार-बन्धुओको दु:ख हुआ हो। अपने उक्त कथनको सत्यके समीपतम समझते हुए भी वस्तुत मुझे दु:ख है कि, उससे इन भाइयोको मानसिक कष्ट पहुँचा। उन चन्द पङ्क्तियोमें मैं अपने भावोको सक्षेपसे भी नही प्रकट कर सका था (और, इस छोटे लेखमे भी शायद न कर सकूँगा); तोभी कुछ गलतफहमियोको हटा देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

शर्माजीके लेखको दो भागोमें विभक्त किया जा सकता है—(१) उन्होने युक्तिसे मेरी बातोका खण्डन करना चाहा है; (२) मुझे भूमिहार ब्राह्मणोका विरोधी समझा है।

जर्थारया वशके लिच्छवि (ज्ञातृ) न होनेके बारेमें आपने कहा है—

(१) "जेथरियावंश या बेनिया-राजवशसे लिच्छवि क्षत्रियोकी ज्ञातृ अथवा किसी भी शाखासे कोई भी सम्पर्क नही। वे इतने कालसे विहारके निवासी भी नही कि, उनका कोई भी सम्बन्ध लिच्छवि जातिसे ठहराया जा सके। वे विशुद्ध ब्राह्मण है तथा महाकवि बाणभट्टके वंशज सोनभदरियों और अथर्वोंको छोडकर अन्यान्य भूमिहार ब्राह्मणोकी तरह पश्चिमके जिलोसे मुसलमानी शासनकालमे या उसके कुछ पूर्व बिहारमे आकर बस गये हैं।"

(२) "जयस्थल"से ही जैथरकी उत्पत्ति सर्वथा भाषा-विज्ञानके अनुकूल है, 'ज्ञातृ'से नही। ज्ञातृ शब्दका अपभ्रश "जैथरिया"मान लेना अनुचित और अपने भाषाविज्ञान-सम्बन्धी ज्ञानकी अल्पज्ञता दिखाना है।" "भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे 'ज्ञातृ' शब्दका "जैथरिया" वन जाना कदापि सम्भव नही।"

(३) "केवल ज्ञातृ शब्दके आधारपर जैथरिया लोगोको ज्ञातृवशीय लिच्छवि क्षत्रिय मान लेना तो लालबुझक्कड़की बूझको भी मात कर देना है।"

(४) "सम्भव है, लिच्छवि-वश (जो बुद्धके समयमे ही व्रात्य हो चुका था) पतित होकर नीच जातियोमे मिल चुका हो; अथवा, यदि, तिर्हुतके अहीर ही उनके वशज हो, तो क्या आश्चर्य?"

मैं आरम्भमे यह कह देना चाहता हूँ कि, ज्ञातृ और जेथरियाके एक होनेकी खोजका श्रेय मुझे नही है, बल्कि हमारे देशके गौरवस्वरूप और भारतके प्राचीन इतिहासके अद्वितीय विद्वान् श्रद्धेय डा० काशीप्रसाद जाय-सवालने पहले पहल इसका पता लगाया था। मैंने प्रमाणकी कुछ कड़ियाँ भर और जोड दी है। ज्ञातृ और जथरिया क्यो एक है:—

(१) "भाषा-विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञानकी अल्पज्ञता" क्या, अज्ञताको स्वीकार करते हुए भी ज्ञातृसे ज्ञातर, जथर या जेथर, फिर 'इया' लगा कर जथरिया स्वीकार करनेमे मै गलतीपर नही हूँ; और, न "लाल बुझक्कड़की बूझको" मात कर रहा हूँ। ज्ञातृ (=ज्ञातर=जतर=जथर), इका (=इया)=जथरिया, जेथरिया।

(२) जैन धर्मके सस्थापक वर्द्धमान महावीरको नात-पुत्त और ज्ञातृ-पुत्र कहा जाता है, क्योकि वह ज्ञातृकुलमे उत्पन्न हुए थे। उनका गोत्र काश्यप था, यह सभी जैन ग्रन्थोमे मिलता है। जेथरियोका भी गोत्र काश्यप है। यह आकस्मिक नही हो सकता।

(३) बसाढ़ (=वैशाली) जिस परगने मे है, वह रत्ती कहा जाता

है। यह परगना आजकल भी जेथरियोंका केन्द्र है। रत्ती=लत्ती-नत्ती=नाती=नादि (पाली) है। बुद्धके समय वज्जीदेशमे नादिका नामक ज्ञातृवंशियोका एक बड़ा गाँव था, जिसका संस्कृत रूप ज्ञातृका होता है।

(४) ज्ञातृ लोग जिन लिच्छवियोके[1] ९ विभागोके एक प्रमुख विभाग-मे थे, ई० पू० छठी-पाँचवी शताब्दियोमे उनकी शक्ति इतनी प्रबल थी कि, मगधराजको भी डरके मारे गगातटपर पाटलिग्राममे एक किला बनाना पडा; और आगे चलकर पाटलिपुत्र (=पटना) नगरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। मगध-साम्राज्यमे सम्मिलित होनेपर भी लिच्छवि प्रभावहीन नही हो गये, यह तो इसीसे प्रकट है कि, चौथी शताब्दीमे उनकी सहायता से गुप्तोको अपना साम्राज्य कायम करनेमे सफलता मिली। ईसाकी चौथी-पाँचवी शताब्दियोमे लिच्छवियोकी शक्तिको ही प्रकट करनेके लिये लिच्छवि-कुमारी कुमारदेवीका पुत्र सम्राट् समुद्रगुप्त अपनेको "लिच्छवि-दौहित्र" कहकर अभिमान करता है। ईसाकी पाँचवी शताब्दीतक जो लिच्छवि जाति अपने अस्तित्वको ही कायम नही रख सकी थी, बल्कि पूरी पराक्रम-शालिनी थी, वह इसके बाद बिलकुल नष्ट हो गयी या "पतित होकर नीच जातियोमे मिल" गई, यह विश्वास करनेके लिये कोई कारण नही। विशेष कर जब कि, उक्त लक्षणोवाली एक जातिको हम उसी स्थानपर पाते है।

(५) ज्ञातृ (लिच्छवि) वश जिस वैशालीके आसपास ई० पू० छठी शताब्दीसे ईसाकी पाँचवी शताब्दीतक बसता था, वही अब भी जथरिया वंशका प्राधान्य है। छपरा जिलेके मसरख थानेके जेथरडीहमें ज्ञातृओंका

---

[1] लिच्छवियोंके नौ वर्गोंमें जेथरियोंके अतिरिक्त दिघवइत भी मालूम होते हैं। यदि मुजफ्फरपुर—चम्पारन जिलोंके पर्गनों और प्रधान जातियोंको मिलाकर खोज की जाये, तो शायद और भी कुछ वर्गों का पता लग जाये।

निवास हो सकता है। (छपरा जिलेका वह हिस्सा तो प्राचीन वज्जीदेशका भाग ही है। उस समय गडककी धार घोघाडी और मही नदियोसे होकर बहती थी।) मेरी तुच्छ रायमे जेथरियो (=ज्ञातृओ) की वजहसे उक्त स्थानका नाम जेथरडीह पडा होगा। जेथरडीहके कारण जातिका नाम जेथरिया नही पडा। एक कहावतको मैंने भी सुना है कि, जेथरिया "ब्राह्मण" लोग नीमसारसे किसी कुष्टि राजाको अच्छा करनेके लिये आये। पीछे भूमिका दान लेकर वही रह गये। नीमसारसे आनेका मतलब यह है कि, वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। फिर वह मगहके ब्राह्मणोसे ही क्यो सम्बन्ध जोड सके, सरवरियोसे क्यो नही, जो कि, अपनेको कान्यकुब्ज भी कहते है? मगधके बाभनो (="भूमिहार ब्राह्मणो") को मै शुद्ध प्राचीन मगध-देशीय ब्राह्मणोकी सन्तान मानता हूँ। इस वशने वाण जैसे महाकविको ही नही पैदा किया, बल्कि भगवान् बुद्धके सबसे प्रधान तीन शिष्यो (सारिपुत्र, मौद्गल्यायन और महाकाश्यप) को पैदा करनेका गौरव भी इसे ही है। सम्राट् अशोकके गुरु मौद्गलि-पुत्र तिष्य भी इसी कुलके रत्न थे। बौद्ध महापुरुषो और महान् दार्शनिकोंके पैदा करने-मे मगध-ब्राह्मण (=बाभन)-कुल सबसे आगे रहा; इसीके लिये बौद्धद्वेषी ब्राह्मणोके प्रभुत्वमे उन्हे और उनके मगध देशको नीच कहना और लिखना शुरू किया गया।

जेथरियोको ज्ञातृओके साथ सम्बन्ध न जोडने देनेके लिये "पश्चिमके जिलोसे मुसलमानी शासनकालमे या उसके कुछपूर्व बिहारमे आकर उनका बसना" कहना व्यर्थकी खीचातानी है। आप बगौछियो (हथुआ राजवश) को नवागन्तुक कहना चाहते हैं, फिर हथुआकी ८०-८५ पीढियाँ कैसे गुजरी? मेरी समझमे व्यर्थके ब्राह्मण बनानेके प्रयत्नमे (जिसका मूल निकट भविष्यमें ऐसा न रहेगा) एक कीर्तिशाली जातिके इतिहासको नष्ट करना है।

(६) गणराज्योके क्षत्रियोने कभी अपनेको ब्राह्मणोके चरणोका दास नही होने दिया। बौद्ध-जैन-ग्रन्थोंको देखनेसे पता लगता है कि,

इन क्षत्रियोंको शुद्ध आर्यरक्तकी रक्षाका बहुत खयाल था। जहाँ उस समयके ब्राह्मण अनुलोम, प्रतिलोम—दोनो प्रकारके विवाहोको करके अपने रक्तमें आर्य-भिन्न-रक्त मिला रहे थे, वहाँ यह क्षत्रिय लोग आर्योंके गौरवर्ण, अभि-नीलनेत्र और तुग नासाकी रक्षाके लिये न अनुलोम ही विवाह जायज मानते थे, न प्रतिलोम ही। पीछे बौद्धधर्मके प्रभावके बढनेके साथ, जातिवादका खयाल जब ढीला होने लगा, तब इन्होने ब्राह्मणोकी कन्याओको भी लेना शुरू किया। पहले जातिभेद इतना कडा न था। पीछे, जब गुप्तोके कालके बाद कन्नौजके प्रभुत्वके समयमे जातियोका अलग-अलग गुट बनना शुरू हुआ, तब कितने ही गणतन्त्रोके क्षत्रिय ब्राह्मणोमे चले गये, कितने ही क्षत्रियोमे। मल्ल क्षत्रियोके बगौछिया भूमिहार ब्राह्मण (हथुआ राजवश), राजपूत (मझौली राजवश) और सैंथवार (पडरौना राजवश)—इन तीन वर्गोंमे बँटनेकी बात मै किसी दूसरे लेखमे कह चुका हूँ। (याद रहे, जहाँ लोग बगौछिया नामका कुत्ते-बिल्लीकी कहानीसे व्याख्यान कर देना चाहते है, वहाँ मल्लोके एक कुलका गोत्र ही व्याघ्रपद था, जिससे यह नाम अधिक सार्थक हो सकता है।) इसी प्रकार टटिहा या तटिहा भूमिहारों और राज-पूतोको ही ले लीजिये। उनके नाम, मूल, गोत्र सब एक है; और बतलाते है कि, यह दोनो एक ही वशकी सन्ताने है। ऐसे और भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते है।

गणक्षत्रियोके रक्तकी शुद्धताकी बात मै कह चुका हूँ। जेथरियोके आर्य-रक्तके बारेमे मै श्रद्धेय जायसवालजीकी ही कही बातको कहता हूँ। एक बार वह बसाढ गये थे। वहाँ उन्होने एक भूमिहार लड़केको भैस चराते देखा, जिसका शरीर ही देदीप्यमान गौरवर्णका नही था, बल्कि आँखे भी नीली थी। मैने स्वय चम्पारनमे एक नीली आँखो वाले गोरे नौजवानको जब जेथरिया कहा, तो उसे आश्चर्य होने लगा, कि मै कैसे जान गया। आज भी आप इन भूमिहारोमे आर्योंके शरीरलक्षण जितनी प्रचुरता से पायेगे, उतने ब्राह्मणोमे नही पायँगे। कारण, ब्राह्मणोने, चाहे

किसी लोभसे ही सही, बहुत पहलेसे ही अनुलोम विवाह करके अपने भीतर आर्य-भिन्न रुधिरको प्रविष्ट करना शुरू किया, जबकि, इस बातमे यह गण-क्षत्रिय दक्षिणी अफ़्रिकाके गोरोकी भाँति वर्ण (=रग)के कट्टर भक्त थे। हजारो वर्षो तक आर्यरक्तकी शुद्धताके कायम रखनेका प्रयत्न अब भी इन्हें इतने अधिक आर्यरक्तका धनी बनाये हुए है।

(७) जेथरियोकी क्षत्रिय-वीरताकी बात मै पहले ही कह चुका हूँ।

मेरे लेखको पढ़कर श्री ज० श० को खयाल हुआ है कि, मै भूमिहार ब्राह्मणोका विरोधी हूँ। इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होने अपने लेख मे ये वाक्य लिखे है —

(१) " 'गगा' मे पारसाल भी उन्होने हथुआ राजवशके सम्बन्धमें ऐसीही ऊटपटॉग बाते लिख डाली थी।"

(२) 'क्या साकृत्यायनजीको भूमिहार ब्राह्मण-समाजसे ही विरक्ति है? क्या इसी कारण एक-एककर उन्होने उसके सभी दृढ अङ्गोपर आक्रमण करना अपना कर्तव्य बना रखा है? यह कार्य नितान्त हेय है।"

मै हनुमानजी नही हूँ कि, अपने हृदयको चीरकर हृद्गत् भावोको प्रकट कर सकूँ। यदि उक्त लेखक मेरे छपराके भूमिहार मित्रोसे पूछे, तो शायद उन्हे मेरे भाव मालूम हो जायँ। बाबू गुणराजसिह (वकील, छपरा), जिनका घर वर्षो तक मेरा घर रहा है, भूमिहार ब्राह्मण ही है। इस खयालको हटानेके लिये मै छपरेके दर्जनो सम्भ्रान्त शिक्षित भूमिहार बन्धुओ को पेश कर सकता हूँ।

दो वर्ष पूर्व (१९३१ ई०) मुझे गया जिलेके गॉवोमें घूमनेका मौका मिला था। वहाँ मुझे कितने ही भारद्वाज तथा दूसरे गोत्रोके बाभनोके गॉव मिले थे। सचमुच उस समय बार-बार मेरे सामने इन्ही कुलोमे उत्पन्न भगवान् बुद्धके महान् शिष्योकी तस्वीरे आ जाती थी; और, इस महान् जातिके सम्मुख मेरा मस्तक झुक जाता था।

मै भूमिहार जातिको नीचे गिरानेके लिये "एक-एक कर उसके सभी

दृढ़ अङ्गोंपर आक्रमण करना अपना कर्तव्य" नही समझ रहा हूँ। इतिहासके एक तुच्छ विद्यार्थीके नाते जब कही इतिहासकी कोई अनमोल बात पाता हूँ, तब उसका सग्रह जरूर करना चाहता हूँ। लिच्छवियोका शक्तिशाली गणतन्त्र, उनकी स्वतन्त्रप्रियता, न्यायप्रियता हमारे देशके लिये गौरवकी चीज़ है। हमारी भविष्यकी सन्तान (जो कि प्रजातन्त्रकी अनन्य भक्त होगी) तो वैशालीको तीर्थ मानेगी। ऐसी दशामे यदि मै किसी समुदायको उन्ही प्रजातन्त्र-सस्थापकोका रक्त-सम्बन्धी समझता हूँ, तो उसमे आक्रमण करनेकी गध कहाँसे आती है। मेरी समझमे जेथरिया युवक एक ज्ञान-जड, कूपमण्डूक, भिखमगी जाति[1] बननेकी अपेक्षा भारतके अद्वितीय पराक्रमी प्रजातन्त्रके संस्थापक होनेको अधिक गौरवकी बात समझेगे।

लेखकने मेरे विचारोको तो "पुरातत्त्वाङ्क" के "भारतमे मानव विकास" नामक लेखमे पढ लिया होगा। मै तो ब्राह्मण जातिका बनना आर्योंपर अनार्योंके प्रभावके कारण मानता हूँ। भारतमे आनेसे पूर्व यह स्वर्गकी ठेकेदारी आर्योंने एक फिर्केको नही दे रखी थी। मै जब ब्रह्मा बाबा-को ही नही मानता हूँ, तो उनके मुखसे पैदा होनेके कारण किसीको बडा कैसे मानूँगा? अहीर जातिको छोडकर भूमिहारोकी जातिको ही मै बिहारमे सबसे अधिक आर्य-रक्तवाली मानता हूँ। अहीर पीछेसे आये; इसलिये उनमे अधिक आर्य-रक्त रहना स्वाभाविक है,, लेकिन भूमिहारोमे आर्य-रक्तका आधिक्य उनके अपने संयमका फल है।

मेरे लेखसे लेखकको बुरा न मानना चाहिये, क्योकि वह एक नास्तिक द्वारा लिखा गया है; और, उसका प्रभाव भी वैसे ही चन्द इने-गिने नास्तिको पर ही पडेगा। ईश्वर या खुदा, पोथियो और पट्टेदारोपर जिसका विश्वास है, वह मेरी चद पङ्क्तियोसे क्यो डरने लगा? लेकिन भूत कालमे

---

[1] मै अपने ब्राह्मण पाठकोंसे क्षमा माँगता हूँ; कहीं वे भी रुष्ट न हो जायँ! —लेखक।

भूमिहार जाति (=गणक्षत्रिय) अपने बुद्धिस्वातन्त्र्यसे बड़ी बनी, पोथियो और व्यवस्थाओकी गुलामीसे नही।

एक बात और भी है। मान लीजिये कि, यदि जेथरिया कहने लगे कि, हम लिच्छवि गणतन्त्रके सस्थापक वही ज्ञातृ हैं, तो क्या मगहके बाभन—जिनके पूर्वसे ही ब्राह्मण होनेमे कोई सन्देह नही—उनसे ब्याह-शादी करना छोड़ देगे? फिर सामाजिक तौरसे तो कोई हानि नही?

वज्जी गणतन्त्र और उसके सचालक ज्ञातृवशके पुण्य स्मरणमें कुछ लिखनेका मौका देनेके लिये मै श्री० ज० श० का आभारी हूँ। यदि कोई अरुचिकर बात यहाँ फिर लिखी गई हो, तो यह समझ कर वे क्षमा करेंगे कि, यह किसी जातिके द्वेषवश नही, बल्कि नास्तिकताके कारण लिखी गई।

---

(७)

थारू

हिमालयकी तराईमे यह रहस्यपूर्ण थारू-जाति निवास करती है। पश्चिममे बहराइच जिलेके उत्तरसे पूर्वमे दरभगा जिलेके उत्तरतक पहाडके किनारे इसी जातिकी प्रधानता है। तराईकी भूमिमे मलेरियाका वड़ा भय है, और यह जाति वही बसती है। मुँह देखते ही मालूम हो जाता है कि यह अपने आस-पासके रहनेवालोसे भिन्न—उत्तरी पहाड़ोमें रहनेवाली (मंगोल)—जातिसे सम्बन्ध रखती है। रग इनका गेहुँआ या पक्का होता है—काले बहुत कम होते है। कदमे आसपासके लोगोसे विशेष अन्तर नही है।

यहाँ मुझे विशेषकर चम्पारन और मुज़फ्फरपुर जिलोके उत्तर तरफ बसनेवाले थारुओके बारेमे ही कहना है। इनके भेद और पदवियाँ निम्न-प्रकार है—

भेद	पदवी
बाँतर	(महतो)
चितवनिया	(,,)
गढवरिया	(,,)
रववसिया	(दिसवाह)
रउतार	(महतो)
न(ल)म्पोछा	(महतो, राय)
सेंठा	(महतो)

भेद	पदवी
कोचिला	(खॉव)
महाउत	(राउत)
मझिअउर	(माझी)
गोरत	(महतो)
कनफटा	(नाथ)
कुम्हार	(राना)
मर्दनिया	(मर्द)
खउहट	(महनो)

थारू लोग बढईका काम अपने आप कर लेते है। तेल भी खुद निकालते है। यद्यपि थरुहट (थारुओके देश) मे धोबी नही होता, तोभी अपनेमे दक्षिणके लोगोसे उनके कपडे-लत्ते अधिक साफ रहते है। खेती ही थारुओका एक मात्र व्यवसाय है, और इसमे उनकी-सी दूसरी कोई परिश्रमी जाति नही। एक हलपर थारू तीन जोडी बैल रखते है। सबेरे ही हल जोतते है और दस बजे दिनको छोड देते है। फिर दूसरी जोडीसे दो बजे तक काम लेते है, इसके बाद फिर तीसरी जोडी। थरुहटमे धान ही की खेती होती है, इसलिये भात ही इनका प्रधान खाद्य है। खानेके लिये मुर्गियाँ भी ये लोग पालते है। थारुओमे 'भगत' मिलना बहुत कठिन है। मास और शराबके ये बडे प्रेमी है।

इनकी पोशाक अपने आस-पासके लोगोकी ही भाँति होती है। हाँ, मिरजईकी जगह ये लोग नैपाली बगलबन्दी पहनते है। स्त्रियाँ साडी पहनती है और शिर नगा रखना अधिक पसद करती है।

विवाह अधिकतर ये लोग अपनी ही उप-जातियोमे करते है। युवक और युवतीमे प्रेम हो जाने पर वे घरसे निकल जाते है, और बाहर किसी गाँवमे जाकर वर्षों तक रहते है। फिर लौटकर पति-गृहमे रहते है। कभी

बाँतर और चितवनियोमें भी इस प्रकार प्रेम हो जाता है, फिर जातिमे मिलने के लिये बिरादरीको भात-भोज देना पडता है। इस प्रकारके विवाह अन्य उप-जातियोमे भी होते है। प्रौढ विवाह ही इनमे अधिक होते है, लेकिन अब अपने पडोसी 'अधिक सभ्य' बाजियोका प्रभाव इनपर भी पड रहा है, और धीरे-धीरे इनमे भी बाल-विवाहकी प्रथा बढ रही है। गढवरियोमें बाल-विवाह अधिक होता है और चितवनियोमें बहुत कम। गरीब होनेपर लडकीको घर लाकर विवाह किया जाता है, नही तो बरात जाती है। बरातमे २०, ३० आदमी साधारणत जाते है। रासधारी, झुमरा, पूर्वी, नाटक इनमेसे कोई नाच भी होता है, जिनमे पहले दो गीत प्राय थारू-भाषामे होते है। ब्राह्मण और नाई विवाह-विधि कराते है। पुरोहित नैपाली या बाजी ब्राह्मण होते है।

जन्मके वक्त गाना-बजाना कुछ नही करते। छठी बरही, और हिन्दुओकी भाँति होती है। अन्नप्राशनका कोई नियम नही। नाक-कान वर्षके भीतर ही छेद दिया जाता है। मृत्युमें थारू लोग विशेष उत्सव करते है। छोटे बच्चेको भी मरने पर जलाते है। नाच-बाजा विवाहकी भाँति होता है। थारुओकी यह विशेषता बर्मी लोगोसे बहुत मिलती है। मरनेके बाद दस दिनमे दशगात्र और बारह दिनके बाद ब्राह्मण-भोजन और जातिभोजन होता है।

प्राय प्रत्येक थारूके घरमे गृह-देवता है, जिसे 'गन' कहते है। उसके लिये दूध, पाट (रेशम), कबूतर, मुर्गे बलि चढाये जाते है। 'बरम' स्थान हर गाँवका ग्राम-देवता है। इसके अतिरिक्त हलका ऊपरी भाग गाडकर जखिन (यक्षिणी), कोल्हूकी जाठ गाडकर मसान भी पूजते है। मलग, औलियाबाबा आदि कितने ही और भी देवता होते है। थरुहटमे मन्त्र-तन्त्र भूत-प्रेत बहुत चलता है। बाहरके भोले-भाले लोग समझते है, थरुहट जादूगरनियोका स्थान है। थरुहटमे जादूगरनियोको डाइन कहते है। हर गाँवमे दस-पाँच डाइने होती है। लोगोका विश्वास है कि डाइने आदमीको

जादूसे मार डालती है, हैजा महामारीको बुलाती है। इसीलिये लोग डाइनोंसे बहुत डरते और घृणा करते हैं। इन्ही सबसे बचानेके लिये हर थारू-गाँवका एक गुरु होता है, जिसे गृहस्थ अपने घरके प्रत्येक आदमी पीछे चार पसेरी धान हर साल देता है। बनिहारको दो पसेरी और खोकइता (मजूर)को एक पसेरी देते है। गुरुका काम है, भूत-प्रेत, मन्त्र-तन्त्र, हैजा आदिसे आदमियोकी रक्षा करना।

थारुओका प्राचीन कालहीसे एक सगठन चला आता है। कई गाँवोका एक हल्का होता है, इसे 'दह' कहते है। हर एक दहमे एक प्रधान होता है, जिसे मधस्त (मध्यस्थ) कहते है। उसके नीचे १६ या १७ पंच होते हैं। इन पचोके नीचे 'हजारिया पच' होते है, जिनमे प्राय प्रत्येक घरका मुखिया होता है। जातिसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी मामले इसी पचायतके सामने पेश होते हैं। फैसला हमेशा सर्वसम्मतसे हुआ करता है। मधस्त और पचोके मरनेपर, वह अधिकार उनके बडे लडकोको मिलता है। यह दह सभी थारुओका एक नही है। गढवरिया, चितवनिया सभीकी अपनी-अपनी अलग पचायते है। भिखनाठोरी (जिला चम्पारन)के पास गढ़-वरियोकी प्रधानता है। यहाँ इनके बरहगाँवाँ और लौरइयाँ दो दह है। बरहगाँवाँ अग्रेजी इलाकेमे है और इसके मधस्त राजमन महतो है। लौर-इयाँ नेपाल राज्यमे है, जिसके मधस्त लेखमन महतो है।

भिखनाठोरीसे उत्तर-नेपाली तराईमें चितावनका इलाका है। यहाँ चितवनियाँ थारू रहते है। यहाँके थारुओपर नैपालियोका प्रभाव अधिक है। बरहगाँवाँ आदिके थारू भी चितावनकी भाषाहीको शुद्ध थारू-भाषा कहते है। पाठकोको यह सुनकर बहुत ही आश्चर्य होगा कि चितावनके थारुओंकी भाषा, स्वर, शब्द आदिमे गया जिलेकी मगही (मागधी) भाषासे बिलकुल एक है। हलई, गेलही, लन्ल्ही आदि सभी शब्द शुद्ध मगहीके है। गेलसुनमे सिर्फ थको ससे (गेलथुन) बदल दिया गया है। सम्बोधनमे रे, हे का प्रयोग अधिक होता है, और मागहीका गे भी कम

प्रयुक्त नही होता। छोड़ गे, चल गे साधारण प्रयोग हैं। चितवनिया अपनेको चित्तौरगढसे आया बतलाते है, और भाषा उन्हे खीचकर मगधमें ले जा रही है; और चेहरा और आँखे उत्तरकी ओर खीच रही हैं।

ठोरीसे दक्षिण-पूर्व ५ मीलपर पिपरिया गॉव है। यह भी थरुहटके अन्दर ही है। पिपरियाके पास ही रमपुरवाके दो अशोक-स्तम्भ है। एक ही स्थानपर दो-दो अशोक-स्तम्भ विशेष महत्त्व रखते है। पुरातत्त्वकी खुदाईमे एक स्तम्भके ऊपरका बैल भी मिला था। परम्परासे जनश्रुति चली आ रही है कि एक खम्भेके ऊपर पहले मोर था। खम्भेकी पेंदीमे तो मोर खुदे अब भी मौजूद है। खुदाईमे यद्यपि कोई मोर नही मिला, तोभी इसमे तो सन्देह नही कि दूसरे खम्भेके शिखरपर जरूर कुछ था। दीघनिकायके महापरिनिर्वाण-सूत्रसे हम जानते है, कि पिप्पली वनके मौर्योंने भी गौतमबुद्धकी अस्थियोका एक भाग पाया था, जिसपर उन्होने स्तूप बनवाया। इसी मौर्यवशका राजकुमार चन्द्रगुप्त पीछे मगधके मौर्य-साम्राज्यका संस्थापक हुआ। ऐसी अवस्थामे सम्राट् अशोकने बुद्धभक्त अपने पूर्वज मौर्योंके आदि स्थानपर यदि ये दो स्तम्भ गडवाये हो, तो कोई आश्चर्य नही। जिस प्रकार यह पाषाण-स्तम्भ मगध-साम्राज्यमे सम्बद्ध है, वैसे ही शुद्ध थारू-भाषाभी आधुनिक मागधी भाषासे अपना स्पष्ट सम्बन्ध बतलाती है, लेकिन मगोल-जातीय थारुओने कैसे मागधी भाषाको अपनाया, यह बडे ही रहस्यकी बात है।

मानवशास्त्र-वेत्ताओके अन्वेषणके लिये थारू-जाति एक बडा ही रहस्य-पूर्ण विषय है। देखे, उसे कब कोई शरच्चन्द्र मिलता है। जब तक कोई वैसा सागोपाग वैज्ञानिक रीतिसे अनुसधान करनेवाला नही मिलता, तब तक साधारण शिक्षित लोगोहीको उनकी उस सामग्रीकी रक्षा करनेका प्रयत्न करना चाहिये, जो वर्तमान कालमे बडी शीघ्रतासे लुप्त होती जा रही है। उनकी भाषा दिन-पर-दिन पडोसी भाषाओसे प्रभावित हो बिगड़ती जा रही है। लोग अपनी परम्परागत कथाओको भूलते जा रहे हैं।

उनके सामाजिक रीति-रवाज बडी शीघ्रतासे परिवर्तित हो रहे है। उनका संगठन शिथिल और निर्बल होता जा रहा है। यदि दरभगा, मुजफ्फरपुर, चम्पारन, गोरखपुर, बस्ती, गोडा, और बहराइचके जिलोके कुछ शिक्षित इस विषयको अपने हाथमे ले ले, और अपनी सीमावाले थारुओकी भाषा, पुरानेगीत, जनश्रुति, रीति-रवाज, सगठन आदिका अन्वेषणकर प्रकाशित करे, तो इससे मानव इतिहासके एक महत्त्वपूर्ण अशपर बडा अच्छा प्रकाश पड सकता है। सामग्री सग्रह करनेमे वाह्य प्रभावसे बहुत कम प्रभावित तथा अशिक्षित वृद्ध थारू ही अधिक सहायक होगे।

---

(८)

महायान बौद्धधर्मकी उत्पत्ति

बुद्ध ने ४५ वर्षोंतक ईश्वरवाद, आत्मवाद, पुस्तकवाद, जातिवाद और कितने ही अन्यवादोके विरोधी, जडवादकी सीमाके पासतक पहुँचे, अपने बुद्धि-प्रधान एव सदाचार-परायण धर्मका उपदेश कर ४८३ ई० पू०में निर्वाण प्राप्त किया। जैसे जैसे समय बीतता गया और जैसे-जैसे नाना प्रकृतिके लोग बुद्धधर्ममे सम्मिलित होते गये, वैसे ही वैसे उसमे परिवर्तन होता गया। इस प्रकार बुद्धके निर्वाणके १०० वर्ष बाद, वैशालीकी सगीतिके समय, बौद्ध धर्म, स्थविरवाद और महासाघिक नामक दो निकायो (=सम्प्रदायों) मे विभक्त हो गया। इसके सवा सौ वर्ष बाद और भी विभाग होकर उसके अठारह निकाय बन गये, जिनका वशवृक्ष, पाली "कथावत्थु" की "अट्ठ कथा" के अनुसार, इस प्रकार है—
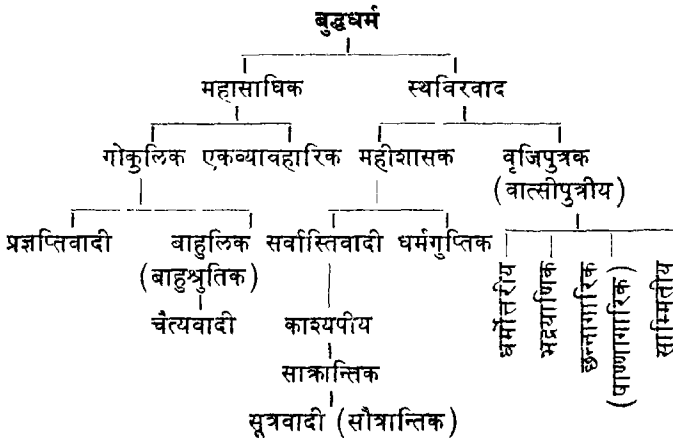
बुद्धके जीवनमें ही उनके शिष्य गन्धार, गुजरात (सूनापरान्त), पैठन (हैदराबाद-राज्य) तक पहुँच चुके थे। धीरे-धीरे भिक्षुओके उत्साह एव अशोक, मिलिन्द, इन्द्राग्निमित्र आदि सम्राटोकी भक्ति और सहायतासे इसका प्रसार और भी अधिक हो गया। अशोकका सबसे बडा काम यह था कि, उन्होने भारतकी सीमाके बाहरके देशोमे, धर्म-प्रचारकोके भेजे जानेमे, बहुत सहायता की। अशोक (ई० पूर्व तृतीय शताब्दी) के बाद बौद्ध धर्म सभी जगह फैल चुका था। उस समयतक अठारह निकाय पैदा हो चुके थे, इसलिये राजाकी सहायता, चाहे एक ही निकायके लिये रही हो लेकिन दूसरे निकायोंने भी अच्छा प्रचार किया। शुगों और काण्वोके बाद; आन्ध्र या आन्ध्रभृत्य सम्राट् हुए। इनकी सर्वपुरातन राजधानी प्रतिष्ठान (पैठन)[1] महाराष्ट्रमे थी। पीछे धान्य कटक भी दूसरी राजधानी बना, जो

---

[1] पीछे पैठनके इन शातवाहनोका शकोंसे भी विवाह-सम्बन्ध हुआ। इन्हें अपने देशके नामपर, रट्ठिक (राष्ट्रिक) या महारट्ठिक भी कहते थे। पीछे नाटकोंमे शक या शकारके लिये "रट्ठिअ-साल" (राष्ट्रिक-श्यल) शब्द प्रयुक्त होनेका भी यही कारण है। वैसे भारतमें अचिरागत शकोंका रंग अधिक गोरा होनेसे, रनिवासोंमे, शक-कन्याओंकी काफी माँग भी थी। इससे भी राजाका साला होना हो सकता है। रट्ठ या महारट्ठ नाम पड़नेसे पूर्व पैठनके आसपासका प्रदेश अन्धक कहा जाता था; और, इसी लिये शातवाहनोंको आन्ध्र भी कहा जाता था। पीछे, राजनीतिक कारणोंसे, उन्हें अपनी राजधानी धान्यकटकमे बनानी पड़ी, जोकि, तेलगू देशमें है; और, उसीसे इस प्रदेशका नाम आन्ध्र हो गया। अन्धक और वृष्णि, दोनों ही पड़ोसी जातियाँ थीं। वृष्णियोंके वासुदेवके आर्य होनेपर अन्धकोंका आर्य होना निर्भर है।

आगे चलकर, कोसलकी राजधानी श्रावस्तीकी भाँति, प्रधान बन गया और पैठन सिर्फ युवराजकी राजधानी रह गया। शातकर्णी या शातवाहन (शालिवाहन) आन्ध्र राजा, यद्यपि कुछ समयतक, उत्तरीय भारतके भी शासक थे, तोभी पीछे उन्हे दक्षिणपर ही सन्तोष करना पड़ा। बौद्ध-धर्मपर इनका विशेष अनुराग था, यह उनके पहाड काटकर बने गुहा- विहारोमे खुदे शिलालेखोसे मालूम पडता है। राजधानी धान्यकटक (अमरावती)मे उनके बनाये भव्य स्तूप, नाना मूर्तियाँ, लताओ तथा चित्रोसे अलकृत सगमरमरकी पट्टिकाएँ, स्तम्भ, तोरण आज भी उनकी श्रद्धाके जीवित नमूने है। वस्तुत बौद्धोके लिये, शातवाहन राजवश, ई० पूर्व प्रथम शताब्दीसे ईस्वी तीसरी शताब्दीतक, पुराने मौर्यों या पिछले पाल-वशकी तरह था। पहाड खोदकर गुहा बनानेका कार्य यद्यपि मौर्योंने आरम्भ किया था, और, वे उसमे कहाँतक तरक्की कर चुके थे, यह बराबरकी चमकते पालिशवाली गुहाओसे मालूम होता है; तोभी गुहाओको बहुत अधिक और सुन्दर ढगसे बनवानेका प्रयत्न आन्ध्रोके ही राज्यमे हुआ। नासिक, कार्ला आदिकी भाँति अजन्ता और एलोराकी गुहाओका भी श्रीगणेश इन्हीके समयमे हुआ था, और पीछेतक बढता गया।

अन्धक-साम्राज्यमे महासाङ्घिको और धर्मोत्तरीयोके होनेका कार्ला[१] और नासिकके गुहालेखोसे पता लगता है। पाली अभि-धम्मपिटकके "कथावत्थु" ग्रन्थमे कितने ही निकायोके सिद्धान्तोका खण्डन किया गया है। उनका विश्लेषण उसकी अट्ठकथाके अनुसार निम्न प्रकार है—

---

[१] *Epigraphica Indica*, Vol. VII, pp. 54, 64, 71.

"कथावत्थु" में खण्डित सिद्धान्तोंकी तुलनात्मक सूची

	कुल सिद्धान्त	अर्वाचीन								प्राचीन								केवल अपने	दूसरों के सम्मिलित
		अन्धक								महा-सांघिक		स्थविरवाद							
		अन्धक	अपरशैल	पूर्वशैल	राजगिरिक	सिद्धार्थिक	वैपुल्य	उत्तरापथ	हेतुवाद	महासांघिक	गोकुलिक	काश्यपीय	भद्रयाणिक	महाशासक	वात्सीपुत्रीय	सर्वास्तिवाद	साम्मितीय		
(अर्वाचीन	..	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६		१०
१ अन्धक	७२													२		१	८	६२	७
२ अपरशैलीय	७	१		६															११
३ पूर्वशैलीय	३९	१	६									V		१			३	१८	९
४ राजगिरिक	११	१															१	२	९
५ सिद्धार्थिक	९	१															१		१
६ वैपु० (वेतुल्ल)	८	१																७	१०
७ उत्तरापथक	४४	७							१					१		१		३४	१
८ हेतुवाद	८							१										७	
																		१३०	

(प्राचीन)																			
९ महासांघिक	२४													१	१	१	६	२०	४
१० गोकुलिक	१																	१	०
११ काश्यपीय	१																	१	०
१२ भद्रयाणिक	१	१																	१
१३ महीशासक	९	२		१				१	१	१							३	१	८
१४ वात्सीपुत्रीय	१															१	१		१
१५ सर्वास्तिवादी	४	१						१					१		१		२	१	३
१६ साम्मितीय	२२	८		३	१	१				४			१	३	२	२		३	१९
																		२७	
सम्मिलित	८०																	१५७	
अनिश्चित	१७																	५७	
																		२१४	

इस नकशेसे मालूम होगा कि, कुल २१४ (२१६) सिद्धान्त है, जिनपर "कथावत्थु" ने बहस की है। उनमे १३० अन्धक आदि अर्वाचीन निकायोके है, ४० सिद्धान्त बहुतोके सम्मिलित है, १७[1] सिद्धान्तोके विषयमे अट्ठकथा चुप है, और २७ ही ऐसे है, जो पुराने १८ निकायोंसे सम्बन्ध रखते है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि, कथावत्थु मुख्यत अर्वाचीन निकायोके ही विरुद्ध लिखी गयी है। इन अर्वाचीन आठ निकायोमे अपरशैलीय, पूर्वशैलीय, राजगिरिक और सिद्धार्थिक अन्धकोके ही भेद है। इनमे अन्धकोके ८२ सिद्धान्तोका खण्डन हुआ है। वैपुल्यवादियो और हेतुवादियोके रहनेका स्थान यद्यपि नही लिखा है, तोभी आगे चलकर वैपुल्यवादियोको हम आन्ध्रदेशका बतलायेगे। उत्तरापथक पजाव या हिमालयके मालूम होते है, किन्तु हेतुवादियोके बारेमे कुछ नही कहा जा सकता। महासाघिकोसे ही पिछले अन्धक-निकायोका जन्म हुआ मालूम होता है। ऐसा माननेके लिये दो कारण है, एक तो कितने ही विवादग्रस्त विषय इनके सम्मिलित है, दूसरे आन्ध्र-साम्राज्यमे महासाघिकोका[2] बहुत अधिक प्रचार

---

[1] मिलाकर देखनेसे अनिश्चित सत्रह सिद्धान्तोंवाले निकाय इस प्रकार मालूम होते हैं—

अन्धक ४+१, पूर्वशैलीय १, उत्तरापथक ५, महासांघिक ५, साम्मितीय अन्धक १।

भूत भविष्य-कालोंके अस्तित्वका सिद्धान्त (कथा० १।७) किसका है यद्यपि यह यहाँ नहीं दिया है, तो भी युन्-च्वेङ (हुएन्-साङ) द्वारा अनुवादित "विज्ञप्तिमात्रता-सिद्धि"की टीकामें यह सिद्धान्त सर्वास्तिवादियों और साम्मितियोंका बतलाया गया है। (देखिये "विज्ञप्ति-मात्रता-सिद्धि", डाक्टर पूसिनका फ्रेंच अनुवाद, पृ० १५७)।

[2] महासांघिकोंके भीतर चैत्यवाद-निकाय भी था। धान्यकटकमें इसकी प्रधानता थी, यह अमरावतीमें मिले शिलालेखोंसे मालूम होती

और प्रभाव था। इस प्रकार इन्हींसे आगे चलकर अन्धकोंकी उत्पत्ति हुई।
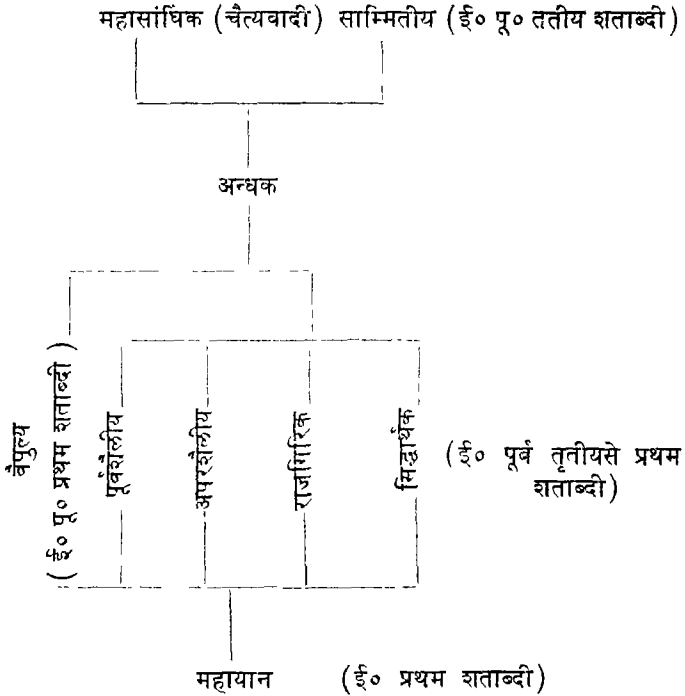
है। धान्यकटकके स्तूपका नाम ही "महाचैत्य" था। मंजुश्रीमूलकल्प, १० पटलमें है—

"श्रीपर्वते महाशैले दक्षिणा-पथ-संज्ञके।
श्रीधान्यकटकके चैत्ये जिनधातु-धरे भुवि।"

इसी चैत्यके नामसे वहाँ वाले चैत्यवादी कहे जाते थे।

पूर्वशैलीय—"कथावत्थु" की अट्ठकथा (११९)मे इसे तृतीय संगीति-के बाद उत्पन्न होनेवाले अन्धक-निकायोमे गिना गया है। महासांघिकोका (धान्यकटक-महाचैत्यका) चैत्यवाद-निकाय पुराने अठारह निकायोमे सम्मिलित किया गया है, किन्तु इन अन्धक-निकायोको हम उनमे सम्मि-लित नही पाते। इसलिये मालूम होता है, यह चैत्यवादियोके भी पीछेका है। यद्यपि चैत्यवादियोका नाम अठारह निकायोमे होनेसे अट्ठकथाचार्य उन्हे तृतीय संगीतिसे पूर्वका बतलाते है। तोभी धान्यकटकके चैत्यकी प्रसिद्धि, शुङ्गोंके बाद, आन्ध्रोके प्रतापी कालमे हुई होगी। अत. यहाँके विहारके भिक्षुओका पृथक् व्यक्तित्व खारबेल और शुङ्गोके बाद ही स्था-पित होना चाहिये। यदि यह ठीक हो, तो चैत्यवादको हम ई० पूर्व द्वितीय शताब्दीके अन्तिम भागमे मान सकते है, और, तब पूर्वशैलीय आदि चारो अन्धकनिकायोकी उत्पत्ति ई० पू० प्रथम शताब्दीमे माननी होगी। भोटिया-ग्रन्थोसे[1] मालूम होता है कि, पूर्वशैल और अपरशैल धान्यकटकके पूर्व और पश्चिमकी ओर दो पर्वत थे। इन्हीके ऊपरके विहार पूर्वशैलीय और अपर-शैलीय कहे जाते थे। धान्यकटक आन्ध्रदेशमे वर्तमान धरनीकोट (जि० गुटूर) है। चौदहवी शताब्दीके लिखे सिहली-ग्रन्थ "निकायसग्रह" से यह भी मालूम होता है कि, इन्होने "राष्ट्रपालगर्जित"[2] ग्रन्थको बुद्धके नामसे प्रसिद्ध किया था। भोट (तिब्बत)मे शर्-री (पूर्वशैल) कही जाने-वाली पीतल मूर्तियोका दाम कई गुना अधिक होता है।

अपरशैलीय—धान्यकटकके पश्चिमकी पहाडीपर बसनेवाला यह निकाय भी चैत्यवादियोसे निकला मालूम होता है। शेष पूर्वशैलीयकी भाँति, इसके बारेमे, जानना चाहिये। भोटिया-ग्रन्थोमे इसका भी जिक्र आता है।

---

[1] क्लोङ-ईल्-ग्सुं-बुम् (ल्हासा) ग, पृ० ८ ख।

[2] सम्भवतः चीनी त्रिपिटकका "राष्ट्रपालपरिपृच्छा"। (*Nanjio's* 873 स्कन्-जुर ४९।९)।

इसके सिद्धान्तोंपर पहले कुछ कहा जा चुका है। "निकायसग्रह"के अनुसार इन्होंने "आलवक-गर्जित" सूत्रको बनाकर बुद्धके नामसे प्रकाशित किया।

राजगिरिक—अन्धक थे; किन्तु आन्ध्रमे राजगिरि कहाँ है (जहाँपर कि, इनका केन्द्र था), नही कहा जा सकता। "कथावत्थु" में इनके ११ सिद्धान्तोका खण्डन किया गया है, जिनमेसे आठ इनके तथा "सिद्धार्थको" के एक है। इससे ज्ञात होता है, इन दोनोका आपसमे कुछ अधिक सम्बन्ध था। निकायसग्रहमे इन्हे "अगुलिमालपिटक"का[1] कर्ता कहा गया है।

सिद्धार्थक—राजगिरिककी भाँति इनके बारेमे भी नही कहा जा सकता कि, इनका केन्द्र आन्ध्र-देशमे किस स्थानपर था। इनके और राजगिरिकोके सिद्धान्तोकी समानता बतलाती है कि, इनमेसे या तो एक दूसरेसे निकला था, या दोनोका उद्गम एक ही था। "निकायसंग्रह"मे इन्हे 'गूढ-वेस्सतर'का कर्ता बतलाया गया है।

यह चारो ही अन्धक-निकाय, आन्ध्र-सम्राटोके समयमे, बहुत ही उन्नत अवस्थामे थे। आन्ध्र राजा और उनकी रानियोका बौद्धधर्मपर कितना अनुराग था, यह हमे अमरावती और नागार्जुनी-कोडामे मिले शिला-लेखोसे मालूम होता है। इनके बारेमे यद्यपि हमे चीन, भोटिया, पाली तथा सस्कृत-स्रोतोसे कुछ सामग्री मिलती है; किन्तु वह बहुत ही अल्प है। लेकिन आन्ध्र लोग शिलालेखोके बहुत अधिक प्रेमी थे; और, आशा है, धान्यकटक तथा नागार्जुनी-कोडा एवं गुटूर-जिलेके अन्य पुराने ध्वंसाव-शेषोकी खुदाई पूरी होनेपर हम इन सभी गुत्थियोको सुलझा सकेगे एवम् उनसे महायान और वज्रयानके आरम्भिक दिनो तथा उनके विकासके इतिहासपर बहुत प्रकाश पड़ेगा।

---

[1] सम्भवतः "अङ्गुलिमाल-सूत्र" (*Nanjio's* 434 स्कन्-जुर ६२।१३)

वैपुल्य (वेतुल्ल)वादी—"कथावत्थु"की अट्ठकथामें वैपुल्यवादियोंको महाशून्यतावादी कहा गया है। हमे मालूम ही है कि, ना गा र्जु न शून्यवादके आचार्य कहे जाते है। इस प्रकार वैपुल्यवाद और महायान एक सिद्ध होते हैं। "कथावत्थु"में दो बाते विषेश महत्त्वकी हैं। एक तो वैपुल्योके खण्डित सिद्धान्तोमें "शून्यता" नही सम्मिलित है। [इनके मत सघ, बुद्ध और मैथुनके विषयमे भेद रखते थे। इनका कहना था—(१) सघ न दान ग्रहण करता है, न उसे परिशुद्ध करता तथा उपभोग करता है, न सघको देनेमें महाफल है,[1] (२) बुद्धको दान देने में न महाफल है, न बुद्ध लोकमे आकर ठहरे और न बुद्धने धर्मोपदेश किया,[2] (३) खास मतलबसे (एकाभिप्रायेण) मैथुनका सेवन किया जा सकता है।[3] यह कहनेकी जरूरत नही कि, ये तीनों ही बाते एक प्रकारसे बौद्धधर्ममे भयङ्कर विप्लव मचानेवाली थी। विशेषकर ऐतिहासिक बुद्धके अस्तित्व से इनकार तथा खास स्थितिमे मैथुनकी अनुज्ञा। पहलेमे हम महायानके आखिरी विकासतकका स्पष्ट पूर्व-रूप पाते हैं, और, दूसरेमे वज्रयान या तान्त्रिक बौद्धधर्मका स्फुट बीज।] दूसरी बात है, "वेतुल्लवाद"के सभी मत "कथा-वत्थु"के अन्तिम भाग १७वे, १८वे और २३वे वर्गोंमे है। यह पहले ही कह चुके हैं कि, "कथावत्थु"का आरम्भ चाहे अ शो क की तीसरी सगीतिसे ही हुआ हो; किन्तु उसमे पीछेके वाद भी जुटते गये। इस प्रकार यह मान लेनेमे कोई कठिनाई नही मालूम होती कि, कथावत्थुका "वेतुल्लवाद" वाला भाग सबसे पीछेका है। कितना पीछेका है? इसके लिये इतना कहा जा सकता है कि, वह बुद्धघोषसे ही पहलेका नही, बल्कि नागार्जुनसे भी पहलेका है; क्योकि उसमे वेतुल्लवादियोंके शून्यवादका खण्डन नही है। हम इसे यदि ईसाकी पहली शताब्दी मान ले, तो वास्तविक समयसे बहुत थोडा ही आगे-पीछे रहेंगे। इस बातमे

---

[1] **कथावत्थु १६।६-९**　　　[2] **वही १७।१०; १८।१**

[3] **वही २३।१**

हम और कुछ निश्चित तौरसे तभी कह सकेंगे, जब हम शक-शालिवाहन-संवत् एवं नागार्जुनके समयको, अन्तिम तौरपर, निश्चित कर सकेंगे। सिहलके इतिहाससे पता लगता है कि, सर्वप्रथम राजा बलगमबाहु (ई० पू० प्रथम शताब्दी) के समयमे वेतुल्लवाद सिहलमे पहुँचा; किन्तु हो सकता है कि, पिछले समयमे, जब चारो अन्धक-सम्प्रदाय एवम् उन्हीकी एक शाखा "वेतुल्लवाद" एक हो गये, तब सबको ही "वेतुल्ल" कहा जाने लगा हो।

महायान सूत्रोंको हम चीनमे[1] प्रज्ञापारमिता, रत्नकूट, वैपुल्य, अवतसक और निर्वाण तथा तिब्बती कन्-जूरमे प्रज्ञापारमिता, रत्नकूट, वैपुल्य, सूत्र (प्रकीर्ण) और निर्वाणके क्रमसे विभक्त पाते है। अवतसक-सूत्रोको वैपुल्यसे पृथक् गिना गया है; किन्तु वैपुल्य और अवतसक एक ही प्रकारके सूत्र हैं।[2] "मजुश्री मूलकल्प" में हर एक पटलके अन्तमे आता है—"बोधिसत्त्व-पिटकादवतसकात् महायानवैपुल्य-सूत्रात्।" भोटियामे भी वैपुल्य-सूत्रोके नामके साथ आता है—"बोधिसत्त्व-पिटकात् अवतंसकात् महा-वैपुल्य ...सूत्रम्।" स्वय नन्ज्योके सूचीपत्रके ही ८७,८९,९४,९६, १०१ ग्रन्थोमे अवतसक और वैपुल्य साथ-साथ विशेषण-विशेष्य-रूपसे प्रयुक्त हुये है। प्रज्ञापारमिता, रत्नकूट, वैपुल्य आदि सूत्र महायानके हैं,[3] इसमे तो किसीको सन्देह हो ही नही सकता; और इसीसे वैपुल्यवाद (पाली वेतुल्लवाद) वही है, जिसे हम आजकल महायान कहते है। या यो कहिये कि, वेतुल्ल या "वैपुल्य" वह नाम है, जिससे आरम्भिक कालमे महायान प्रसिद्ध हुआ। आरम्भमे, महायान कहलानेमे, उन्हे सफलता न हुई थी। "वेतुल्ल" और "वैपुल्य" एक ही हैं; यही हम कथावत्थुकी अट्ठकथाके

---

[1] देखिये *A Catalogue of the Buddhist Tripitaka by Bunjiu Nanjio.*

[2] *Trivendrum Sanskrit Series* LXX. LXXXIV

[3] स्कन्-जुर ४१-४६

उस वाक्यसे भी समझ सकते हैं, जिसमें वेतुल्लवादीको महाशून्यतावादी कहा है। निकाय-संग्रहमे वेतुल्लवादियो को "वेतुल्ल-पिटक" (वैपुल्य-पिटक) का कर्ता कहा है। वही यह भी लिखा है कि, अन्धकोंने[1] "रत्नकूट" कथा दूसरे शास्त्रोकी रचना की। "रत्नकूट" और "वैपुल्य", दोनो ही प्रकारके सूत्र महायानी है, यह हम देख चुके है; इसलिये महायान अन्धकों (पूर्वशैलीय आदि चार सम्प्रदाय) और वैपुल्यवादके सम्मिलित रूपका नाम है।

यह तो मालूम हो चुका कि, महायान पूर्वशैलीय आदि चार अन्धक-सम्प्रदायोके तथा वैपुल्यवादके सम्मिश्रणमे बना है; और, जितना अश अन्धकनिकायोसे सम्बन्ध रखता है, वह आन्ध्र-देशकी—खासकर गुटूर जिलेके वर्तमान धरनीकोटकी—उपज है। लेकिन वैपुल्यवादका मुख्य स्थान कहाँ था, अब हम इसपर विचार करेंगे।

यहाँपर ध्यान रखना चाहिये कि, महायान-सूत्र बराबर परिवर्तित और परिवर्द्धित किये जाते रहे है; इसलिये उनके मूल स्थानसे मतलब हमारा इतना ही है कि, उनके निर्माणकी नीव वहाँ डाली गयी; और, परि-वर्द्धन-परिवर्तन करनेमे तो सारा भारत शामिल था। वैपुल्यवादके बारेमे हमे निम्न बाते मालूम है—

(१) ईसा पूर्व [2] पहली शताब्दीमे यह सिहल पहुँचा था।

(२) इसके [3] कुछ सूत्रोका चीनीमे अनुवाद, ईसाकी दूसरी शताब्दी-में ही, हो चुका था।

---

[1] "अन्धकयो रतनकूटादिवू शास्त्रान्तर रचना कळह" निकायसंग्रहय (सीलोन-सरकार द्वारा १९२२में मुद्रित)।

[2] महावंस।

[3] ननज्योका सूचीपत्र, संख्या २५, "सुखावतीव्यूह" लोकरक्षा (१४७-१८६ ई०) द्वारा अनूदित।

(३) इसके प्रचारकोंमें सबसे ऊँचा स्थान आचार्य नागार्जुनका है।

(४) नागार्जुनका वास-स्थान श्रीपर्वत और धान्यकटक था।[1]

(५) (आन्ध्र-राजा) शातवाहन नागार्जुनका घनिष्ट मित्र था।[2]

(६) कुछ[3] क्रान्तिकारी सिद्धान्त इनके और अन्धकोंके आपसमें मिलते थे।

इससे अनुमान होता है कि, वैपुल्यवादका केन्द्र[4] भी श्रीधान्यकटकके पास ही था। इस बात की पुष्टि मजुश्रीमूलकल्पका यह श्लोक भी करता है—

गच्छेद् विदिश तन्त्रज्ञः सिद्धिकामफलोद्भवाम्।
पश्चिमोत्तरयोर्मध्य स देश परिकीर्तित.॥

(पृ० १७५, पटल १८)

---

[1] क्लोङ-दॅल-ग्सुङ-बुम् (ल्हासा) च, पृष्ठ ९क—"नागार्जुनका निवासस्थान दक्षिण भारतमें, श्रीपर्वतके समीप श्रीधान्यकटकमें था।"

[2] हर्षचरित, सप्तम उच्छ्वास—(निर्णयसागर, तृतीय संस्करण, पृ० २५०)—"समतिक्रामति च कियत्यपि काले कदाचित् तामेकावलीं तस्मान्नागराजात् नागार्जुनो नाम नागैरेवानीतः पातालतलं, भिक्षुरभिक्षत् लेभे च। निर्गत्य रसातलात् त्रिसमुद्राधिपतये शातवाहननाम्ने नरेन्द्राय सुहृदे स ददौ ताम्।" नागार्जुनने शातवाहन राजाके नाम "सुहृल्लेख" नामक पत्र लिखा था, जो चीनी और भोटिया-भाषाओंमें अब भी सुरक्षित है।

[3] जैसे खास अभिप्रायसे मैथुनकी अनुज्ञा (कथावत्थु २३।१), यह अन्धकों और इनकी एक-सी है। अन्धक बुद्धके व्यवहारको लोकोत्तर मानते थे (क० ब० २।८); और, यह बुद्धकी ऐतिहासिकतासे ही इन्कार करते हैं—"बुद्ध मनुष्य लोकमें (आकर) नहीं ठहरे" (१८।१)। "बुद्धने धर्मका उपदेश नहीं किया" (१८।२)।

[4] नहरल्लवडु (नागार्जुनी-कोंडा, जिला गुंटूर)।

इसमें "पश्चिम-उत्तरके बीचमें" विदिशाको बतलाया गया है; और, विदिशा वर्तमान भिलसा (ग्वालियर-राज्य) का ही प्राचीन नाम है। यह स्पष्ट ही है कि, लेखक दक्षिण भारतमें बैठकर ही ऐसा लिख सकता है। "मंजुश्रीमूलकल्प" महावैपुल्य-सूत्रोमेंसे है, यह पहले कहा जा चुका है। हमारी समझमे यह स्थान श्रीपर्वत या धान्यकटक ही हो सकता है।

---

(६)

वज्रयान और चौरासी सिद्ध

१. वज्रयानकी उत्पत्ति

मन्त्र कोई नयी चीज़ नही है। मन्त्रसे मतलब उन शब्दोसे है, जिनमें लोग मारण, मोहन, उच्चाटन आदिकी अद्भुत शक्ति मानते है। यह हम वेदोमे भी पाते है। ओ वौषट्, श्रौषट् आदि शब्द ऐसे ही है, जिनका प्रयोग यज्ञोमे आवश्यक माना जाता है। मन्त्रोका इतिहास ढूँढिये, तो आप, इन्हे मनुष्यके सभ्यतापर पैर रखनेके साथ-साथ, तरक्की करते पायेगे। प्राचीन बाबुल (बेबिलोन), असुर, मिश्र आदि देशोमें भी मन्त्रका अच्छा जोर था। फलत. मन्त्रयान बौद्धोका कोई नया आविष्कार नही है। केवल प्रश्न यह है कि, बौद्धोमे इसका आरम्भ कैसे हुआ और उसमे प्रेरक-शक्ति क्या थी? पालीके ब्रह्म-जालसुत्तसे मालूम होता है कि, बुद्धके समयमे ऐसे शान्ति-सौभाग्य लानेवाले पूजा-प्रकार या कल्प प्रचलित थे। गन्धारी-विद्या या आवर्तनी-विद्यापर भी लोग विश्वास रखते थे। बुद्धने इन सबको मिथ्या-जीव (=झूठा व्यवसाय) कहकर मना किया; तो भी इससे उनके शिष्य इन विद्याओमे पडनेसे रुक न सके। बुद्धके निर्वाणको जितना ही अधिक समय बीतता जाता था, उतना ही, लोगोकी नजरसे, उनके मानुष गुण भी ओझल होते जाते थे। बादलकी तहमे दिखायी पड़ते सूर्य अथवा कुहरेमे टिमटिमाते चिरागकी भाँति उनका ऐतिहासिक व्यक्तित्व अधिक धुंधला रूप धारण करता जाता था। जहाँ इस प्रकार मानुष बुद्ध लुप्त होते जा रहे थे, वहाँ अलौकिक गुणोवाले बुद्धकी सृष्टिका उपक्रम बढ़ता जाता था। इसी प्रयत्नमें

बुद्धके जीवनकी अलौकिक कहानियाँ गढ़ी जाने लगी। ऐसी कहानियाँ आकर्षक होती ही है। जब लोगोने बुद्धकी अलौकिक जीवन-कथाओको अधिक प्रभावशाली देखा, तब इधर जुट पडे; किन्तु कुछ दिनोमे ही वह आकर्षण फीका पड़ने लगा। बुद्धकी वे अलौकिक शक्तियाँ तो अतीतके गर्भमें विलीन हो गयी थी। उनकी कथासे लोगोको वर्तमानमे क्या लाभ? तब बुद्धकी अलौकिक शक्तियोका वर्तमानमे भी, उपयोग होनेके लिये, बुद्धके वचनोके पारायणमात्रसे, पुण्य माना जाने लगा। उनके उच्चारण मात्रसे रोग, भय आदिका नाश समझा जाने लगा! उस समय भूत-प्रेत आजसे बहुत अधिक थे! इतने अधिक थे कि, अभी उस परिणामपर पहुँचनेके लिये थियासोफी और स्पिरिचुअलिज़्मको शताब्दियों मेहनत करनी पड़ेगी! कुछ लोगोको इन भूतोकी बहुत फिक्र रहती थी। इसलिये उन्हे वशमें करनेके लिये भी कुछ सूत्रोकी रचना होने लगी। स्थविर-वादियोने (जो कि, मानुष बुद्धके बहुत पक्षपाती थे) ही "आटानाटीय-सुत्त"[१] से इसका आरम्भ किया। फिर क्या था, रास्ता खुल निकला। तब स्थविरोने देखा, वे इस घुड़दौडमे तबतक बाजी नही मार सकते, जब तक वे ऐतिहासिक बुद्धसे पिण्ड न छुडाले, किन्तु वह इनके लिये बहुत कड़वी गोली थी! उधर दूसरे सम्प्रदाय इसमें विशेष तरक्की करने लगे। जब देखा, दुनिया भी उन्हीकी ओर खिंचती जा रही है, तब उन्होने उसमे और भी उत्साह दिखाना शुरू किया। इसका, फल, हम देखते है कि, बुद्धके निर्वाणसे चार ही पाँच सौ वर्षो बाद वैपुल्यवादियोने बुद्धके लोकमें आनेसे भी इनकार कर दिया। आखिर लौकिक पुरुष उन अभि-

---

१ "दीर्घ-निकाय" ३२ सुत्त, जिसमें यक्षों और देवताओंका बुद्धसे संवाद वर्णित है। इसमें यक्षों और देवताओंके प्रतिनिधियोंने प्रतिज्ञाएँ की है, जिनके दोहरानेसे आजभी उनके वंशज देवताओंको, अपने पूर्वजों-की प्रतिज्ञा, याद आ जाती है; और, वे सतानेसे बाज रहते है!

लषित अद्भुत शक्तियोका कैसे धनी हो सकता है?

उक्त क्रमसे पहले अठारह प्राचीन बौद्ध-सम्प्रदायोने सूत्रोंमें ही अद्भुत शक्तियाँ माननी शूरू की; और, कुछ खास सूत्र भी इसके लिये बनाये। फिर वैपुल्यवादियोने , लम्वे-लम्बे सूत्रोके पाठमे विलम्ब देखकर, कुछ पङ्क्तियो की छोटी-छोटी धारणियाँ बनायी। लेकिन मनुष्य बैलगाड़ीसे रेलतक पहुँचकर क्या हवाई जहाजसे इन्कार कर सकता है? अन्तमें दूसरे लोग पैदा हुए, जिन्होने लम्बी धारणियोको रटनेमे तकलीफ उठाती जनतापर, अपार कृपा करते हुए, "ओ मुने मुने महामुने स्वाहा," "ओं आ हुं", "ओ तारे तूत्तारे तुरे स्वाहा" आदि मन्त्रोकी सृष्टि की। अब अक्षरोका मूल्य बढ़ चला। फिर लोगोको, एक-एक मन्त्राक्षर की खोजमें भटकते देख, उन्होने "मंजुश्रीनामसगीति"के कहे अनुसार सभी स्वर और व्यञ्जन वर्णोंको मन्त्र करार दे दिया। अब "ओ" और "स्वाहा" लगाकर चाहे जो भी मन्त्र बनाया जा सकता था; बशर्ते कि, उसके कुछ अनुयायी हो! कहनेकी आवश्यकता नही कि, इन सारी मेहनतोका पारितोषिक, यदि उन्हे रुपये-आने-पाई या उसी तरहकी किसी और दुनियावी सुख-सामग्रीके रूप मे न मिलता, तो शायद दुनिया उनकी इन कृतियोसे वञ्चित ही रहती। सक्षेपमे, भारतमे बौद्ध मन्त्र-शास्त्रके विकासका यही ढँग रहा है। इस मन्त्रयान-कालको,यदि हम निम्न क्रमसे मान ले, तो वास्तविकतासे वहुत दूर न रहेंगे—

सूत्र-रूपमे मन्त्र—ई० पू० ४००–१००,

धारणीमन्त्र—ई० पू० १००–४०० ईस्वी,

मन्त्र-मन्त्र—ई० ४००–७०० ई०।

इसी धारणी-मन्त्रके युगमे हम अलौकिक बुद्धके सहायक और अनुयायी कितने ही अवलोकितेश्वर, मञ्जुश्री आदि अलौकिक बोधिसत्त्वोंकी सृष्टि होते देखते हैं।

अब मन्त्रोका माहात्म्य बढ़ने लगा। लोग इनपर धन और श्रम खर्च

करने लगे। आविष्कारकोने भी इधर मन्त्रोकी फलदायकताकी वृद्धिपर सोचना शुरू किया। उन्होने देखा, योगकी कुछ क्रियाएँ योगीके प्रति अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न करती हैं, जिससे लोग जल्दी उनकी बात (*Suggestion*) पर आरूढ हो जाते है। (आजकल भी हिप्नाटिज्म और मेसमेरिज्ममें उत्कट श्रद्धा बहुत ही आवश्यक चीज़ मानी गयी है)। दूसरे उनकी मानसिक शक्ति, एकाग्रताके कारण, अधिक तीव्र हो, श्रद्धालुओको छोटे-मोटे चमत्कार दिखानेमे या उनके कष्ट-सहनकी शक्तिको बढ़ानेमे, समर्थ होती है। योगकी कुछ प्रक्रियाओका, बुद्धके समयके पूर्वसे ही, लोग अभ्यास करते आरहे थे। बुद्धके बाद तो और भी करने लगे। इसलिये, बुद्ध-निर्वाणके चार-पाँच सौ वर्षों बाद, इस तरहकी उपयोगी मानसिक शक्तियोका उन्हे काफी अनुभव हो चुका था। उन्हे मालूम हो गया था कि, इस तरहके चमत्कारके लिये भक्तोमे अन्धश्रद्धा और प्रयोक्तामे तीव्र मानसिक शक्तिकी अत्यन्त आवश्यकता है। अब वे, एक ओर, योगसे अपनी मानसिक शक्तिको विकसित करने लगे; दूसरी ओर, भक्तोमे श्रद्धाकी मात्रा खूब बढ़ानेके लिये नाना हठ, त्राटक क्रियाओ तथा मन्त्र-तन्त्रकी वृद्धिके साथ-साथ सहस्रो नये देवी-देवताओकी सृष्टि करने लगे।

उक्त मन्त्रो और योग-विधियोके प्रवर्त्तको और अनुवर्त्तकोमे दो प्रकारके मनुष्य थे, एक तो वे, जो वस्तुत. अत्यन्त श्रद्धासे मुग्ध हो, इन क्रियाओको "स्वान्त सुखाय" या "परहिताय" करते थे। उनमे उनका अपना स्वार्थ उतना न था। वे उन क्रियाओ द्वारा उस समयके मानसिक वातावरणमे तत्काल लोगोको लाभ होते देखते थे; इसलिये, अपार श्रद्धासे, उस काममे प्रवृत्त थे। दूसरे, वे चालाक लोग थे, जो अच्छी तरह जानते थे कि, इन मन्त्र-तन्त्र-क्रियाओकी सफलताका अधिक दारोमदार उनकी अपनी अद्भुत शक्तियोपर उतना नही है, जितना कि, श्रद्धालुकी उत्कट श्रद्धापर। इसीलिये श्रद्धालुकी श्रद्धाको पराकाष्ठातक पहुँचाने के लिये या उसे पूर्ण-रूपेण "हिप्नोटाइज्ड" करने के लिये वे नित्य नये आविष्कार

करते थे। वस्तुतः फर्स्ट क्लासके आविष्कारक इसी दूसरी श्रेणीके लोग थे। इसी युगमे चढ़ावेसे अपार धनराशि मठोंमें जमा हो गयी थी। जब इन्होने देखा कि, आखिर बुद्धकी शिक्षासे भी हम बहुत दूर हो चुके हैं—लोग श्रद्धासे अन्धे है ही और सभी भोग हमारे लिये सुलभ हैं, तब उन्होने विषय-भोगोके सग्रहकी ठानी; और, इस प्रकार मद्य और स्त्री-सम्भोगका श्रीगणेश हुआ। यहाँ यह न समझना चाहिये कि, भैरवी-चक्रके ये ही आविष्कारक थे; क्योकि इनसे सहस्रो वर्ष पूर्व मिश्र, असुर, यवन आदि देशोमें भी ऐसे चक्रोका हम प्रचार देखते है। इनका काम इतना ही था कि, इन्होने बुद्धके नामपर और नये साधनोके साथ इन बातो को पेश किया।

इस प्रकार मन्त्र, हठयोग और मैथुन—ये तीनो तत्त्व क्रमश. बौद्ध-धर्ममें प्रविष्ट हो गये। इसी बौद्धधर्मको मन्त्रयान कहते हैं। इसको हम निम्न भागोमे विभक्त कर सकते है—

(१) मत्रयान (नरम) ई० ४००—७००,

(२) वज्रयान (गरम) ई० ८००–१२००।

वैसे तो वैपुल्यवादमे तथा उससे पूर्वके अन्धक निकायोमे विशेष अभि-प्रायसे मैथुनकी अनुज्ञा हो चुकी थी (कथावत्थु २३।१); तोभी वह भैरवी-चक्रके रूपमे तबतक न प्रकट हो सकी थी, जबतक कि, वज्रयान न बन सका। इस पुराने मन्त्रयानकी पुस्तकोंमे "मजुश्रीमूलकल्प" एक है। "मंजुश्री-मूलकल्प" वैपुल्य सूत्रोमेसे भी है। इसका मतलब यह हुआ कि, मन्त्रयान वैपुल्यवाद या महायानसे ही विकसित हुआ है (वस्तुत. अलौकिक बुद्ध और अद्भुत-शक्तिसम्पन्न धारणियोसे वैसा होना सम्भव ही था)। "मंजुश्री-मूलकल्प"मे यद्यपि हम नाना मन्त्र–तन्त्रोका विधान देखते है, तथापि उसमे भैरवी-चक्रका अभाव है; और, वहाँ सदाचारके नियमोंकी अवहेलना नहीं की गयी है। इस युगको यद्यपि हम गुप्त-साम्राज्यकी स्थापनासे आरम्भकर हर्षवर्द्धनके शासनके साथ समाप्त करते है, तथापि इसके अङ्कु-

रित और विकसित होनेका स्थान उत्तर भारत न था। "मंजुश्रीमूलकल्प"के वैपुल्यवादी होनेकी बात हम कह चुके है। हम अपने एक लेख मे[1] यह भी बतला चुके है कि, "मजुश्रीमूलकल्प" उत्तर भारतमें न लिखा जाकर दक्षिण भारत मे, विशेषत धान्यकटक या श्रीपर्वतमे लिखा गया है; उसमे इन दोनो स्थानोको, मन्त्र-सिद्धिके लिये, बहुत ही उपयोगी बतलाया गया है।[2]

इससे यह भी मालूम होता है कि, मन्त्रयानके जन्मस्थान श्रीधान्यकटक और श्रीपर्वत है। तिब्बती ग्रन्थोमे तो स्पष्ट कहा गया है कि, बुद्धने बोधिके प्रथम वर्षमे, ऋषिपतनमे, श्रावक-धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया; १३वें वर्ष राजगृहके गृध्रकूट पर्वतपर महायान-धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया; और, १६वे वर्षमे मन्त्रयानका तृतीय धर्म-चक्र-प्रवर्तन श्रीधान्यकटकमे[3] किया। श्रीपर्वत[4] मन्त्रशास्त्रके लिये बहुत ही प्रसिद्ध था। मालतीमाधवमें भवभूतिने श्रीपर्वतका जिक्र कई बार किया है—

(१) "दाणि सोदामिनि समासादिअ अच्चरिअमन्तसिद्धिप्पहावा सिरिपव्वदे कावालिअ-व्वद धारेदि।"
(अङ्क १) ।

(२) "यावच्छ्रीपर्वतमुपनीय प्रतिपर्व तिलश एना निकृत्य दु खमारिणी करोमि।" (अङ्क ८)।

(३) "श्रीपर्वतादिहाह सत्वरमपत तयैव सह सद्य ।" (अङ्क १०)।

---

[1] देखिये "महायानकी उत्पत्ति"।

[2] पृष्ठ ८८—"श्रीपर्वते महाशैले दक्षिणापथसंज्ञिके।
श्रीधान्यकटके चैत्ये जिनधातुधरे भुवि॥
सिध्यन्ते तत्र मन्त्रा वै क्षिप्रं सर्वार्थकर्मसु॥"

[3] "ध्रुग-प-पद्म-द्कर्-पो" का "छोस्-ब्युङः" पृष्ठ १४ क-१५क।

[4] नहरल्ल-बड्ड (नागार्जुनी-कोंडा, जि० गुंटूर)।

वाण भी श्रीपर्वतके माहात्म्यसे खूब परिचित था; और, द्रविड़-पुरुषके साथ उसका सम्बन्ध जोड़नेसे उसका दक्षिणमें होना भी सिद्ध होता है—

"श्रीपर्वताश्चार्यवार्तासहस्राभिज्ञेन...... जरद्द्रविडधार्मिकेन"[1] और "सकल-प्रणयि-मनोरथ-सिद्धि श्रीपर्वतो हर्षः।" (हर्षचरित, १ उच्छ्वास)।

इन उदाहरणोसे अच्छी तरह मालूम होता है कि, छठी सातवी शताब्दियोमे श्रीपर्वत मन्त्र-तन्त्रके लिये प्रसिद्ध था। वस्तुतः मुसलमानोके आने के वक्त (बल्कि हाल तक) जैसे बंगाल जादूके लिये मशहूर था, वैसे ही उस समय श्रीपर्वत था। ऊपरके मालतीमाधवके उद्धरणमे एक विशेष बात यह है कि, सौदामिनी एक बौद्ध-भिक्षुणी थी, जो पद्मावती (मालवा) से श्रीपर्वतपर मन्त्र-तन्त्र सीखने गयी थी।

श्रीपर्वतके साथ यहाँ सिद्धोके बारेमे कुछ कह देना ज़रूरी है। वस्तुतः श्रीपर्वत सिद्धोका स्थान था; और, जहाँ कही भी पुराने संस्कृत-काव्योमें सिद्ध या सिद्धाचार्य-शब्द मिलता है, वहाँ प्राय कविका अभिप्राय, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष-रूपसे, श्रीपर्वतके साथ रहता है। सिद्धो और उनकी भविष्यद्वाणियो (=सिद्धादेशो) की हम सस्कृतसाहित्यमे भरमार पाते है। मृच्छकटिक (ईस्वी पाँचवी शताब्दी)मे भी—"आर्यकनामा गोपालदारकः सिद्धादेशेन समादिष्टो राजा भविष्यति" (अङ्क २) और "चन्दन भोः स्मरिष्यामि सिद्धादेशस्तथा यदि" देखनेमे आता है। नागार्जुनको सिद्ध-नागार्जुन कहा जाता है। सम्भवत. नागार्जुनने श्रीपर्वतको अपना वास-स्थान बनाया था। वज्रयानके साथ नागार्जुनको नही जोड़ा जा सकता। यद्यपि तिब्बती ग्रन्थकार इसके लिये नागार्जुनको ६०० वर्षकी लम्बी आयु देनेके लिये तैयार है; तथापि मालूम होता है कि, उनकी शिक्षामे मन्त्रोंकी कुछ बात थी, जिसकी पुष्टि श्रीपर्वतके मन्त्र-तन्त्रका केन्द्र बननेसे होती है।

---

[1] कादम्बरी (निर्णयसागर, सप्तम् संस्करण, पृ० ३९९)

नागार्जुनी-कोडाकी खुदाईमें मिले लेखोसे अब तो यह मालूम हो गया है कि, श्रीपर्वत श्रीशैल न होकर नागार्जुनी-कोंडाका 'नहरल्ल-वडु' पहाड़ ही है।

सातवी शताब्दीमे मन्त्रयानका प्रथम रूप समाप्त होता है; और, उसके बाद, वह वज्रयानके घोर रूपको धारण करता है। १४वी शताब्दीके सिंहल-भाषाके ग्रन्थ "निकाय-सग्रह"मे इसी वज्रयानको वज्रपर्वतवासी-निकाय कहा है। मालूम होता है, श्रीपर्वत ही, वज्रयानका केन्द्र होनेके कारण, वज्रपर्वत कहा जाने लगा। यद्यपि वज्रयानके ग्रन्थोंमे वज्रपर्वत स्थान नही आता है; तथापि निकाय-संग्रहने जिन ग्रन्थोको इस निकायका बताया है, वे वज्रयानके ही है। "निकायसग्रहमे"[1] वज्रपर्वतवासियोको निम्न ग्रन्थोका कर्त्ता बताया गया है—

गूढ विनय।
मायाजालतत्र ([2] *Nanjio's 1061*, भोट, कन्जुर ८४।१०)।
समाजतत्र (गुह्यसमाजतत्र कन्जुर ८३।२)।[3]
महासमयतत्व।
तत्वसग्रह (क० २५।८)।
भूत-चामर (भूतडामरतन्त्र, क० ४३।८)।
वज्रामृत (क० ८२।१२)।
चक्र-सवर (क० ८०।१)।
द्वादशचक्र (कालचक्र, क० ७९।३, ४)।
भेरुकाद्बुद (हेरुकाद्भुत, क० ८१।२)।
महामाया (क० ८२।३)।

---

[1] निकायसंग्रह पृष्ठ ८, ९ (सीलोन सरकार द्वारा १९२२ में, मुद्रित)।
[2] *Bunjio Nanjio* का चीनी त्रिपिटक-सूचीपत्र।
[3] नार्थङ्के छापेके कन्जुरका लेखक द्वारा लिखित सूचीपत्र।

पदनिःक्षेप।

चतुष्पिष्ट (चतु· पीठतत्र, क० ८२।६, ८)।

परामर्द (?महासहस्रप्रमर्दनी, क० ९१।१)।

मारीच्युद्भव।

सर्वबुद्ध (सर्वबुद्धसमायोग, क० ८९।६)।

सर्वगुह्य (क्रोध राज सर्वमन्त्र-गुह्य-तन्त्र, क० ८२।११)।

समुच्चय (वज्रयान-समुच्चय, क० ८३।५)।

मायामारीचिकल्प (क० ९१।६?)।

हेरम्बकल्प।

त्रिसमय कल्प (त्रिसमयव्यूह-राजतन्त्र, क० ८८।४)।

राजकल्प (? परमादिकल्पराज, क० ८६।५)।

वज्रगान्धारकल्प। मारीचिकल्प।

गुह्यकल्प (गुह्य-परमरहस्यकल्पराज क० ८९।१)।

शुद्धसमुच्चयकल्प (? सर्वकल्पसमुच्चय, क० ७९।७)।

ये सभी वज्रयानके प्रामाणिक ग्रन्थ है, इसलिये वज्रपर्वतनिकाय और वज्रयान एक ही है। तिब्बतीय ग्रन्थोमे लिखा है कि, वज्रयानका धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन बुद्धने श्रीधान्यकटकमे किया था। इससे वज्रयानकी उत्पत्ति भी, आन्ध्र-देशमे हुई सिद्ध होती है। श्रीपर्वत और धान्यकटक, दोनो ही वर्तमान गुटूर जिलेमे है, इसलिये पीछे श्रीपर्वतके वज्रयानका केन्द्र बन जानेपर वही वज्रपर्वत कहा जाने लगा। मद्य, मन्त्र, हठयोग और स्त्री[1]—ये चार ही चीजे वज्रयानके मुख्य रूप है।

---

[1] **गायकवाड़-ओरियंटल-सीरीज, बड़ौदासे प्रकाशित "गुह्यसमाज-तंत्र" में लिखा है—**

"प्राणिनश्च त्वया घात्या वक्तव्यं च मृषा वचः

अदत्तं च त्वया ग्राह्यं सेवनं योषितामपि।।

चौथी बात (स्त्री) मे तो उन्होने जाति, कुल ही नहीं, बल्कि माता, बहन के सम्बन्धतककी अवहेलना करनेकी शिक्षा दी है। यह बुद्धकी मूल शिक्षासे दूर तो थी ही, महायानके लिये भी इसे जल्दी हजम करना मुश्किल था। इसी

अनेन वज्रमार्गेण वज्रसत्त्वान् प्रचोदयेत्।
एषो हि सर्वबुद्धानां समयः परमशाश्वतः॥" (पृ १२०)
"दुष्करैर्नियमैस्तीव्रैः सेव्यमानो न सिध्यति।
सर्वकामोपभोगैस्तु सेवयंश्चाशु सिध्यति॥" (पृ १३६)
"विण्मूत्रशुक्ररक्तानां जुगुप्सां नैव कारयेत्।
भक्षयेत् विधिना नित्यं इदं गुह्यं त्रिवज्रजम्॥" (पृ १३६)
"नीलोत्पलदलाकारं रजकस्य महात्मनः।
कन्यां तु साधयेत् नित्यं वज्रसत्त्व-प्रयोगतः॥" (पृ० ९४)

वज्रयानके आदि आचार्योंमें सिद्ध अनङ्गवज्र भी हैं। यह ८४ सिद्धोंमें से एक हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ "प्रज्ञोपायविनिश्चय-सिद्धि" (गा० ओ० सी० बड़ोदा) में लिखा है—

"प्रज्ञापारमिता सेव्या सर्वथा मुक्ति-काङ्क्षिभि॥२२॥
ललनारूपमास्थाय सर्वत्रैव व्यवस्थिता।॥२३॥
ब्राह्मणादिकुलोत्पन्नां मुद्रां वै अन्त्यजोद्भवाम्॥२४॥
जनयित्रीं स्वसारं च स्वपुत्री भागिनेयिकाम्।
कामयन् तत्त्वयोगेन लघु सिध्येद्धि साधकः॥२५॥" (पृ० २२–२५)

इनके शिष्य सिद्ध राजा इन्द्रभूतिने अपने ग्रन्थ "ज्ञानसिद्धि" में लिखा है—

"घातयेत् त्रिभवोत्पत्तिं परवित्तानि हारयेत्।
कामयेत् परदारान्वै मृषावादमुदीरयेत्॥१४॥
कर्मणा येन वै सत्त्वाः कल्पकोटिशतान्यपि।
पच्यन्ते नरके घोरे तेन योगी विमुच्यते॥१५॥....
भक्ष्याभक्ष्यविनिर्मुक्तो पेयापेयविवर्जितः।
गम्यागम्य-विनिर्मुक्तो भवेद् योगी समाहितः॥१८॥

१—लूइपा

२—लीलापा

३—विरूपा

४—डोम्बिपा

५–शबरपा

६–सरहपा

७–कङ्कालीपा

८–मीनपा

९—गोरक्षपा

१०—चौरंगिपा

११—वीणापा

१२—शान्तिपा

१३—तन्तिपा

१४—चमारिपा

१५—खड्गपा

१६—नागार्जुन

१७—कण्हपा

१८—कर्णरिपा

१९—थगनपा

२०—नारोपा

२१—शलिपा

२२—तिलोपा

२३—छत्रपा

२४—भद्रपा

२५–दोखन्धिपा

२६–अजोगिपा

२७–कालपा

२८–धोम्भिपा

२९–कंकणपा

३०–कमरिपा

३१–डेंगिपा

३२–भदेपा

३३—तन्धेपा

३४—कुकुरिपा

३५—कुसूलिपा

३६—धर्मपा

३७—महीपा

३८—अचिन्तिपा

३९—भलहपा

४०—नलिनपा

४१—भूसुकुपा

४२—इन्द्रभूति

४३—मेकोपा

४४—कुठालिपा

४५—कर्मारपा

४६—जालन्धरपा

४७—राहुलपा

४८—घर्बरिपा

४९—धोकरिपा

५०—मेदिनीपा

५१—पङ्कजपा

५२—घण्टापा

५३—जोगीपा

५४—चेलुकपा

५५—गुण्डरिपा

५६—लुचिकपा

५७—निर्गुणपा

५८—जयानन्त

५९—चर्पटीपा

६०—चम्पकपा

६१—भिखनपा

६२—भलिपा

६३—कुमरिपा

६४—जबरिपा (?)

६५—मणिभद्रा

६६—मेखला

६७—कनखला

६९—कन्तालिपा

७०—धहुलिपा

७१—उधलिपा

७२—कपालपा

७३—किलपा

७४—सागरपा (?)

७५—सर्वभक्षपा

७६—नागबोधिपा

७७—दारिकपा (?)

७८—पुतुलिपा

७९—पनहपा

८०—कोकालिपा

८१—अनङ्गपा

८२—लक्ष्मीकरा

८३—समुद्रपा

८४—कपालिपा

लिये महायानसे साधारण मन्त्र-यानमे होकर वज्रयान तक पहुँचना पड़ा।

साधारण मन्त्रयानसे कब यह ज्वालामुखी फूट पड़ा, इसके बारेमें हमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो मिल नही सकता; किन्तु ऐसी बातें हैं, जिनके बलपर हम उसका आरम्भ सातवी शताब्दीके आसपास मान सकते हैं—

(१) सिंहलके "निकाय-सग्रह"में लिखा है—राजा मत-बल-सेन (८४६-८६६ ई०)के समय वज्रपर्वतनिकायका एक भिक्षु सिंहलमें आया और वीराकुर(विहार)मे रहने लगा। उसके प्रभावमे आकर राजाने वाजिरिय (वज्रयान) मतको स्वीकार किया। इसीसे लकामें रत्नकूट आदि (ग्रन्थो)का प्रचार आरम्भ हुआ। इसके बादके राजाने यद्यपि वज्र-यानके खिलाफ कुछ कडाई [1] दिखायी, तथापि वाजिरिय सिद्धान्त गोप्य थे; इसलिये वह चुपचाप बने रहे। तिब्बतके रगीन चित्रोंमें जिन्होने अतिशा (दीपकर श्रीज्ञान) आदि भारतीय भिक्षुओकी शकल देखी होगी, उन्हे वहाँ उनके चीवरके भीतर एक नीले रगकी जाकेट-सी दिखायी पडी होगी। "निकायसग्रह"में इसकी उत्पत्ति विचित्र ढँगसे कही गई है—जिस समय कुमारदास (५१५-५२४ ई०) सिंहलमें राज्य कर रहे थे, उसी समय दक्षिण मधुरामे श्रीहर्ष नामक राजा शासन करता था। उस समय सम्मितीय नि . ायका एक दु.शील भिक्षु, नीला कपड़ा पहन, रातको वेश्याके पास गया। जब दिन उग आनेपर वह विहार लौटा और उसके शिष्योने वस्त्रके बारेमें पूछा, तब उसने उसके बहुतसे माहात्म्य वर्णन किये। तबसे उसके अनुयायी

चाण्डालकुलसंम्भूतां डोम्बिकां वा विशेषतः।
जुगुप्सितकुलोत्पन्नां सेवयन् सिद्धिमाप्नुयात् ॥८२॥ (१।....)
शुक्रं वैरोचनं ख्यातं परं वज्रोदकं तथा।
स्त्रीन्द्रियं च यथा पद्मं वज्रं पुंसेन्द्रियं तथा॥" (२।४२)

[1] सद्धम्मपटिरूपानं दिस्वालोके पवत्तानं
गण्हापेसि तथा रक्खं सागरन्ते समन्ततो॥' (निकाय; सं० पृ० १७)

नीला वस्त्र पहनने लगे। उनके "नीलपट-दर्शन"में लिखा है—

"वेश्यारत्न सुरारत्न रत्न देवो मनोभव ।
एतद्रत्नत्रय वन्दे अन्यत् काचमणित्रयम् ॥"

कहते हैं, इसपर श्रीहर्षने उन्हे बहानेसे एक घरमें इकट्ठा कर जलवा दिया।

इस कथामे सभी बाते तो सच नही मालूम होती, किन्तु छठी शताब्दीमें इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति तथा साम्मितीय निकायसे इसका सम्बन्ध कुछ ठीकसा जँचता है। हम दूसरी जगह, अपने "महायानकी उत्पत्ति" नामक लेखमे, लिख चुके है कि, महायानकी उत्पत्तिमे साम्मितीयोका काफी हाथ था। इस तरह हम छठी शताब्दीको वज्रयानकी उत्पत्तिकी ऊपरी सीमा मान सकते हैं। निचली सीमा हमे ८४ सिद्धोके कालसे मिलती है।

२—चौरासी सिद्ध[1]

---

[1] इस वंशवृक्षको मैंने अधिकांश तिब्बतके स-स्क्य-विहारके पाँच प्रधान गुरुओं (१०९१-१२७९ ई०) की ग्रन्थावली "स-स्क्य-ब्कं-बुम्" के सहारे बनाया है, जो कि, चीनकी सीमाके पास "तेर्-गी" मठमे छपी है। मत्स्येन्द्र जालन्धर पादके शिष्य थे, यह प्रोफेसर पीताम्बरदत्त बड़थ्वालजीके लेखसे लिया है। कहीं-कही कुछ दूसरे भोटिया -(तिब्बतीय) ग्रन्थोसे भी मदद ली गयी है। लेखकके पास जो नार-थङके तन्-जूरकी प्रति है, वह ब्लाकके पुराने होनेसे सुपाठ्य नही है; इसी लिये कुछ स्थान पढ़े नहीं जा सकते। पेरिसके महान् पुस्तकालयकी तन्-जूर्की कापी मैंने मिलायी थी; किन्तु उसका नोट पासमें न होनेसे यहाँ उसका उपयोग नही किया जा सका।

स-स्क्य-ब्कं-बुम् 'प' में (महन्तराज फग-स्-प १२३३-१२७९ ई० की कृति) के पृष्ठ "६५ क" में सरहपादसे नारोपा तककी परम्परा इस प्रकार दी हुई है—(महाब्राह्मण) सरह, (नागार्जुन), (शबरपा), लूयिपा, दारिकपा, (वज्रघण्टापा), (कूर्मपाद), जालन्धरपा, (कण्हचर्यपा) गुह्यपा, (विजयपा), तेलोपा, नारोपा।

कोष्टकके भीतरके नाम मैंने भोटियासे अनुवाद कर दिये है।

सरह आदिम सिद्ध है, और, आगे हम बतलायँगे कि, वह पालवशीय राजा धर्मपाल (ई० ७६८–८०९)के समकालीन थे; इसलिये उनका समय, आठवी शताब्दीका उत्तरार्द्ध, मानना चाहिये। प्रथम कहे कारणो-से हम वज्रयानकी उत्पत्तिको, छठी शताब्दीसे पूर्व और सरह आदिके कारण आठवी शताब्दीसे बाद भी, नही मान सकते। सरह उन चौरासी सिद्धोके आदि-पुरुष है, जिन्होने लोक-भाषाकी अपनी अद्भुत कविताओ तथा विचित्र रहन-सहन और योग-क्रियाओसे वज्रयानको एक सार्वजनीन धर्म बना दिया। इससे पूर्व वह, महायानकी भाँति, सस्कृतका आश्रय ले, गुप्त रीतिसे फैल रहा था। सरहसे पूर्वकी एक शताब्दीको हम साधारण मन्त्रयान और वज्रयानका सन्धि-काल मान सकते है। आठवी शताब्दीसे जोरोका प्रचार होने लगा। तबसे मुसल्मानोके आने तक यह बढता ही गया। १२वी शताब्दीके अन्तमे भारतके तुर्कोंके हाथमे जानेके समयसे पतन आरम्भ हुआ और तेरहवी-चौदहवी शताब्दियो तक यह विलुप्त तथा रूपान्तरित हो गया (बगाल, उडीसा और दक्षिण भारतमे कुछ देर और रहा)। रूपान्तरित इसलिये कि, ऊपरी वश-वृक्षमें आपको चौरासी सिद्धोमे गोरक्ष-नाथ, मीननाथ और चौरगीनाथका नाम मिलेगा। यहाँ हमने इन्हे तिब्बती ग्रन्थके आधारपर दिया है। उधर नाथपथके ग्रन्थोंमें भी चौरासी सिद्धोके साथ सम्बन्ध होनेकी बात दिखायी पडती है। इसे समझनेमे और आसानी होगी, यदि आप चौरासी सिद्धोकी निम्न सूचीपर ध्यान देगे—

नाम	जाति	देश	समकालीन राजा या सिद्ध
१ लूइपा	कायस्थ	(मगध)	राजा धर्मपाल (७६९-८०९ ई०),
२ लीलापा			सरह (६) से तीसरी पीढ़ी
३ विरूपा		मगध (देवपालका देश)	राजा देवपाल (८०९-४९ ई०)
४ डोम्बिपा	क्षत्रिय	(मगध)	लूइपा (१) का शिष्य
५ शबरपा	,,	विक्तमशिला	[सरह (६) का शिष्य, लूइपा-का गुरु]
६ सरहपा	ब्राह्मण	(नालन्दा)	राजा धर्मपाल (७६९-८०९ ई०)
७ कंकालीपा[1]	शूद्र	मगध[3]	
८ मीनपा	मछुआ	कामरूप....	जालन्धरपाद (४६)का शिष्य
९ गोरक्षपा			गोरक्षपाके गुरु मत्स्येन्द्रका पिता देवपाल[2] (८०९-४९ ई०)
१० चोरगिपा	राजकुमार	मगध	गोरक्षपा (९)का गुरुभाई

---

[1] कोंकलिपा, कंकलिपा, ककरिपा [2] "चतुराशीति-सिद्ध-प्रवृत्ति" तन्जूर ८६।१ *Cordier* पृ० २४७। [3] पूर्व में राज्ञी नगर।

	नाम	जाति	देश	समकालीन राजा या सिद्ध
११	वीणापा	राजकुमार	गौड (विहार)	कण्हपा (१९)के शिष्य, भद्रपाका शिष्य
१२	शान्तिपा[1]	ब्राह्मण	मगध	महीपाल ९७४-१०२६
१३	तन्तिपा	तँतवा	सोघो नगर	जालन्धर (४६)का शिष्य
१४	चमारिपा	चर्मकार	विष्णुनगर (पूर्वदेश)	
१५	खड्गपा	शूद्र	मगध	चर्पटी (५४)का शिष्य
१६	नागार्जुन	ब्राह्मण	काञ्ची	सरह (६)का शिष्य
१७	कण्हपा (चर्यपा)	कायस्थ	सोमपुरी	देवपाल (८०९-४९ ई०)
१८	कर्णरिपा (आर्यदेव)		(नालन्दा)	नागार्जुन (१६)का शिष्य
१९	थगनपा	शूद्र	पूर्व भारत	शान्तिपा (१२)का गुरु
२०	नारोपा[2]	ब्राह्मण	मगध........	(महीपाल ९७४-१०२६ ई०)
२१	शलिपा[3] (शीलपा)	शूद्र	विघसुर	
२२	तिलोपा (निल्लोपा)	ब्राह्मण	भिगुनगर	नारोपा (२०)का गुरु

---

[1] रत्नाकर शान्ति (विक्रमशिला)

[2] देहान्त १०३९ ई०।

[3] सम्भवतः शृगालीपाद ("बौद्ध गान ओ दोहा") भी यही है।

नाम	जाति	देश	समकालीन राजा या सिद्ध
२३ छत्रपा	शूद्र	सधोनगर	
२४ भद्रपा	ब्राह्मण	मणिधर[1]	सरहपा (६) से तीसरी पीढी
२५ दोखधि (द्विखडि) पा		गंधपुर	
२६ अजोगिपा	गृहपति	सालिपुत्र	
२७ कालपा		राजपुर .. .	अवधूतिपा (११वी शताब्दी) की तीसरी पीढी
२८ घोम्भिपा	धोबी	सालिपुत्र	
२९ ककणपा	राजकुमार	विष्णुनगर	
३० कमरि (कबल) पा		उडीसा	घटापा (५२) का शिष्य
३१ डेगिपा	ब्राह्मण	उड़ीसा (सालिपुत्र)	लूइपा (१) का शिष्य
३२ भदेपा		श्रावस्ती	कण्हपा (१७) का शिष्य
३३ तंधे (तते) पा[2]	शूद्र	कौशाम्बी	
३४ कुकुरिपा	ब्राह्मण	कपिल (वस्तु)	मीनपा (८) का गुरु
३५ कुचि[3] (कुसूलि) पा	शूद्र	करि	

[1] सम्भवतः बघेलखण्डका मैहर।

[2] सम्भवतः टंटन (बौ० गा० दो०)

[3] सम्भवतः गुंजरीपा (,,)।

	नाम	जाति	देश	समकालीन राजा या सिद्ध
३६	धर्मपा	ब्राह्मण	विक्रम (शिला) देश	कण्हपा (१७) और जालन्धरपाका शिष्य
३७	महीपा (महिल्पा)	शूद्र	मगध	कण्हपा (१७)का शिष्य
३८	अचितिपा	लकडहारा	धनिरूप (?)	
३९	भलह (भव) पा	क्षत्रिय	धञ्जुर (देश)	
४०	नलिनपा		सालिपुर	
४१	भुसुकुपा	राजकुमार	नालन्दा	देवपाल (८०९-४९ ई०)
४२	इन्द्रभूति	राजा	लङ्कापुर	अनगवज्र (८१) और कबलपा (३०)का शिष्य
४३	मेकोपा	वणिक्	भंगलदेश[1]	
४४	कुटालि (कुद्दालि) पा		रामेश्वर	शान्तिपा (१२)का शिष्य
४५	कर्मार (कम्परि) पा	लोहार	सालिपुत्र	अवधूतिका शिष्य
४६	जालन्धरपा[2]	ब्राह्मण	नगर भो . .	कण्हपा (१७) और मत्स्येंद्रका गुरु

---

[1] वर्तमान भागलपुर जिला। [2] जालधारक।

	नाम	जाति	देश	समकालीन राजा या सिद्ध
४७	राहुलपा	शूद्र	कामरूप	सरह (६)से तीसरी पीढी
४८	घर्वरि (घर्भरि)पा		बोधिनगर	विरूपा (३)से चौथी पीढ़ी
४९	धोकरिपा	शूद्र	सालिपुत्र	
५०	मेदनीपा[1]		लाखपुय (?)	लीलापा (२)से चौथी पीढ़ी
५१	पंकजपा	ब्राह्मण		नागार्जुन (१६)से शिष्य
५२	(वज्र) घटापा	क्षत्रिय	वारेन्द्र[2]	देवपाल (८०९-४९ ई०)
५३	जोगीपा (अजोगिपा)	डोम	(उडन्तपुरी)	शवपा (५)का शिष्य
५४	चेलुकपा	शूद्र	भंगलपुर	अवधूति (मैत्री)पाका शिष्य
५५	गुंडरिपा (गोरुर)पा	चिडीमार[3]	डिसुनगर	लीलापा (२)का शिष्य
५६	लुचिकपा	ब्राह्मण	भगलदेश	
५७	निर्गुणपा	शूद्र	पूर्व देश	
५८	जयानन्त	ब्राह्मण	भगलपुर	
५९	चर्पटी (पचरी)पा	कहार[4]	चम्पा	मीनपा (८)का गुरु

---

[1] सम्भवतः हालीपा भी कहते हैं। [2] चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्ति (तन्जूर ८६।१)में नालन्दा लिखा है। [3] व्य-प (भोटियामें)। [4] खुर्-ब छोङ-व=बहँगी बेचनेवाला, भार बेचनेवाला।

	नाम	जाति	देश	समकालीन राजा या सिद्ध
६०	चम्पकपा		राजकुमार (?)	
६१	भिखनपा	शूद्र	सालिपुत्र	
६२	भलिपा	[1] कृष्णघृतवणिक्	सतपुरी	
६३	कुमरिपा		जोमनश्रीदेश (?)	
६४	चवरि (जवरि=अजपालि)पा			कण्हपा (१७)की तीसरी पीढ़ी
६५	मणिभद्रा (योगिनी)	गृहदासी	मगध	कुकुरिपाकी शिष्या
६६	मेखलापा (योगिनी)	गृहपतिकन्या	अगचेनगर	कण्हपा (१७)की शिष्या
६७	कनखलापा (योगिनी)		देवीकोट	कण्हपा (१७)की शिष्या
६८	कलकलपा	शूद्र	भिरलिरनगर (?)	
६९	कंताली (कंथाली)पा	दर्जी	मणिधर (मैहर)	कण्हपा (१७)का शिष्य
७०	धहुलि[2] (धहुरि)पा	शूद्र	धेकरदेश (?)	
७१	उधलि (उधरि)पा	वैश्य	देवीकोट	कर्णरिपा (१८)का शिष्य
७२	कपाल (कमल)पा	शूद्र	राजपुरी	
७३	किलपा	राजकुमार	प्रहर (? सहर)	

---

[1] मर्-नग्-छोङ-पा।

[2] सम्भवतः दवडीपा (चर्यागीति)।

नाम	जाति	देश	समकालिक राजा या सिद्ध
७४ सागरपा	राजा	काची	
७५ सर्वभक्षपा	शूद्र	महर (सहर)	शवरी (२, छोटे सरह) और भूसुक (४१)का शिष्य
७६ नागबोधिपा	ब्राह्मण	पश्चिम भारत	नागार्जुन (१६)का शिष्य
७७ दारिकपा	राजा	उडीसा (सालिपुत्र)	लूइपा (१)का शिष्य
७८ पुतुलिपा	शूद्र	भगलदेश	
७९ पनह (उपानह)पा	चमार	सन्धो नगर	
८० कोकालिपा	राजकुमार	चम्पारन	
८१ अनंगपा	शूद्र	गौड़	डोम्बिपा (४) तीसरी पीढ़ी
८२ लक्ष्मीकरा (योगिनी)	राजकुमारी	सम्भलनगर[1]	राजा इन्द्रभूतिकी बहन
८३ समुदपा		सर्वडिदेश[2]	
८४ भलि (व्यालि)पा	ब्राह्मण	अपत्रदेश (?)	

---

[1] सम्भलपुर (बिहार)।

[2] सर्वार (गोरखपुर, वस्ती जिले)।

चौरासी सिद्धोकी गणनामे यद्यपि पहला नम्बर लूइपाका है; तथापि वह चौरासी सिद्धोका आदिम पुरुष नही था, वह ऊपर दिये वंश-वृक्षसे मालूम होगा। यद्यपि इस वंश-वृक्षमे सिर्फ ५० से कुछ अधिक सिद्ध आये है; तथापि छूटे हुओमे सरहके वंशसे पृथक्का कोई नही मालूम होता; इसलिये सरह ही चौरासी सिद्धोका प्रथम पुरुष है। चौरासी सिद्धोमें सरह, शवर, लूइ, दारिक, वज्रघण्टा (या घण्टा) जालधर, कण्हपा और शान्तिका खास स्थान है। वज्रयानके इतने भारी प्रचार और प्रभावका श्रेय अधिकाशमे इन्हीको है। डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्यने[1] सरहका समय ६३३ ई० निश्चित किया है। भोटिया-ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि, (१)[2] बुद्धज्ञान जो सरहके सहपाठी और शिष्य थे, दर्शनमे हरिभद्रके भी शिष्य थे। हरिभद्र शान्तरक्षितके शिष्य थे, जिनका देहान्त ८४० ई० के करीव तिब्बतमे हुआ था। (२) वहीसे यह भी मालूम होता है कि, बुद्धज्ञान और हरिभद्र महाराज धर्मपाल [3](७६९–९०९)के समकालीन[4] थे। (३) सरहके शिष्य शबरपा लूइपाके गुरु थे। लूइपा महाराज धर्मपालके[5] कायस्थ (=लेखक) थे।

शान्तरक्षितका जन्म ७४० के करीब, विक्रमशिलाके पास, सहोर[6]-राजवशमे हुआ। फलत हम सरहपाको महाराज धर्मपाल (७६९–८०९) का समकालीन मान ले, तो सभी बाते ठीक हो जाती है। इस प्रकार चौरासी

---

[1] विहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटीका जर्नल, खण्ड १४, भाग ३, पृष्ठ ३४९।

[2] स-स्क्य ब्कं-ऽबुम् फ्, पृष्ठ २१२ ख—२१७ क।

[3] अध्यापक दिनेशचन्द्र भट्टाचार्यके मतानुसार ७४४-८०० ई०।

[4] स-स्क्य ब्कं-ऽबुम् फ्, पृष्ठ २१२ ख।

[5] स-स्क्य-ब्कं-ऽबुम् फ्- पृष्ठ २४३ क।

[6] वर्तमान सबोर पर्गना (भागलपुर)।

सिद्धोंका आरम्भ हम आठवीं शताब्दीके अन्त (८००ई०) मान सकते है। अन्तिम सिद्ध कालपाद (२७), मालूम होता है, चेलूकपा (५४) के शिष्य थे। एक छोटे कालपाद भी हुए है, यदि यह वह नही है, तो इन्हीको चौरासी सिद्धोमे लिया जा सकता है। चेलुकपा अवधूतिपा या मैत्रीपाके शिष्य थे। यह वही मैत्रीपा है, जो दीपकर श्रीज्ञानके विद्यागुरु थे और ग्यारहवी शताब्दीके आरम्भमें वर्त्तमान थे। इस प्रकार अन्तिम सिद्धका समय ग्यारहवी शताब्दीके अन्तसे पूर्व होगा। अतएव चौरासी सिद्धोका युग—८००–११७५ ई० मानना ठीक जान पड़ता है। इसी समय सिद्धोकी चौरासी सख्या पूरी हो गयी थी।[1]

---

[1] वज्रयानकी ऐतिहासिक खोज भोटिया-(तिब्बती)साहित्यकी सहायताके बिना बिल्कुल अपूर्ण रहेगी; किन्तु, भोटिया-साहित्यका उपयोग करनेमें कुछ बातोंका ध्यान रखना जरूरी है; नहीं तो, भारी गलती होनेका डर है। पहली बात तो यह है कि, इस प्रकारकी सामग्रीमें पद्मसंभवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ बहुत ही भ्रमपूर्ण हैं। भोटके निग्-मा-पा सम्प्रदायने भोटमें एक अलौकिक बुद्ध खड़ा करनेके खयालसे, इस अद्भुतकर्मा पुरुषकी सृष्टि की! ज्यादासे-ज्यादा इसकी ऐतिहासिकताके, बारेमें इतना ही कह सकते हैं कि, शान्तरक्षितकी मण्डलीके भिक्षुओंमें पद्मसंभव नामका एक साधारण भिक्षु भी था। जैसे महायानने पाली-सूत्रोंके अल्प प्रसिद्ध सुभूतिको सारी प्रज्ञापारमिताओका उपदेष्टा बनाकर सारिपुत्र और मौद्गल्यायनसे भी अधिक महत्त्वशाली बना डाला, वैसे ही निग्-मा-पाने पद्मसंभवके लिये किया। दूसरी बात ध्यान देनेकी यह है कि, भोट में भारतीय बौद्धधर्मके इतिहासकी सामग्री दो प्रकारकी है। एक तो उस समयकी, जब कि, भारतमें बौद्धधर्म जीवित था और उस समय भारतीय विद्वान् तिब्बतमें धर्म-प्रचारार्थ तथा तिब्बतीय विद्यार्थी भारतमें अध्ययनार्थ आया-जाया करते थे। दूसरी वह, जब कि, भारतसे बौद्धधर्म नष्ट

उक्त समयमे ही चौरासी सख्या पूरी हो जानेका एक और प्रमाण मिलता है। बारहवी शताब्दीके अन्तमे मित्रयोगी या जगन्मित्रानन्द

हो चुका था और तिब्बतीय ग्रन्थकार नेपाल या भारतमें आकर, अथवा भोटमें यहाँके आदमियोंको पाकर, सुन-सुनाकर लिखते गये। इन दो प्रकारकी साम्रग्रियोमें प्रथम प्रकारकी सामग्री ही अधिक प्रामाणिक है। इस सामग्रीके संग्रह करनेके समयको तीन हिस्सोमें बाँटा जा सकता है—

(१) सम्राट् ठि-स्रोङ-ल्दे-ब्चन्से सम्राट् रल्-पा-चन् तक (७१९-९०० ई०)।

(२) अतिशा और उनके अनुयायियोंका समय (१०४२-१११७ ई०)।

(३) स-स्क्य-विहारकी प्रधानता और बु-स्तोन्का समय (११४१-१३६४) ई०।

बु-स्तोन्के बाद भारतसे बौद्धधर्म नष्ट हो जानेके कारण, फिर भोटको सजीव बौद्ध भारतसे सम्बन्ध जोड़नेका अवसर नहीं मिला। प्रथम कालमें ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम मिलती है, जो मिलती भी है, उसे निग्-मा-पा (प्राचीनपंथी) सम्प्रदायने इतना गड़बड़ कर दिया है कि, उसका उपयोग बहुत ही सावधानीसे करना पड़ेगा। दूसरे कालमें डोम्-तोन् आदि रचित दीपंकरकी जीवनी एवं कई और ऐतिहासिक ग्रन्थ बड़े कामके हैं। तृतीय कालकी सामग्री बहुत ही प्रामाणिक तथा प्रचुर प्रमाणमें मिलती है। इसके मुख्य ग्रन्थ है स-स्क्यविहारके पाँच प्रधान महन्त-राजाओंकी कृतियाँ (स-स्क्य-ब्कं-बुम्) और बु-स्तोन् (१२९०-१३८४ ई०) तथा उनके शिष्योंकी ग्रन्थमाला (बु-स्तोन्-यब-स्रस्-ग्सुं-बुम्)। डुक्-पा-पद्मा-दकर्-पो (जन्म १५२६ ई०), लामा तारनाथ (जन्म १५७४ ई०) तथा वैसे ही दूसरे कितने ही लेखकोंकी कृतियाँ कुछ तो भोटकी पुरानी सामग्रीपर अवलम्बित है और कुछ सुनी-सुनाई बातोंपर। इसलिये इनका उपयोग करते वक्त बहुत सावधानीकी आवश्यकता है।

एक बडे सिद्ध हो गये है। इनकी २० के करीब पुस्तकें भोटिया-भाषामें अनूदित हुई है, जिसमे "पदरत्नमाला" तथा "योगीस्वचित्त-ग्रथकोपदेश" हिन्दी कविताएँ मालूम होती है। इन्हीके ग्रन्थोमे "चन्द्रराज-लेख" भी है। इनके दुभाषियोमें थे ग्नुब्-निवासी छुल्-ख्रिम्स् और ख्रो-फु-निवासी ब्यग्स्-पई-पल्। ख्रो-फू-ब्यम्स्-पई-पल्की प्रार्थनापर यह ११९७ ई०मे नेपालसे तिब्बत गये[1] और वहाँ अठारह मास रहे। यह ख्रो-फु-लोचवा (=दुभाषिया) वही है, जो विक्रमशिला-विहारके महम्मद-बिन्-बख्तियार द्वारा नष्ट किये जानेपर वहाँके पीठ-स्थविर शाक्यश्रीभद्रको ११९९ मे भोट ले गया। यहाँ हमारा मतलब मित्रयोगीसे है। तिब्बतमे तो यह प्रसिद्ध ही थे। इनके "चन्द्रराज-लेख" से मालूम होता है कि, वह किसी राजाके लिये लिखा गया है; और, यह भी अनुमान हो रहा था कि, वह बारहवी शताब्दीके अन्तमे युक्तप्रान्त या बिहारका कोई राजा रहा होगा। अब अनुमानकी जरूरत ही नही है। इसी समयके बोधगयाके एक शिलालेखमे[2] इनका और गहडवार राजा जयचन्द्र (११७१-९४ ई०)का जिक्र इन शब्दोमे आया है—

"अस्ति त्रिलोकी सुकृतप्रसूत. सत्रातुमामन्त्रितसर्वभूत ।
सम्बुद्धसिद्धान्वयधुर्य्यभूत श्रीमित्रनामा परमावधूत ॥४॥
हित्वा हिंसामशेषा कुधमधिकरु षस्त्रस्नवस्त्रासमाशु
व्याधूयोदस्तहस्तप्रणयपरतया विश्वविश्वासभूमे ।
चेत सप्रीयमाण मधुरतरदृशा श्लेषपीयूषपाते-
स्तिर्यञ्च सूचयन्ति च्युतमलपटल यस्य मैत्रीषु चित्तम्। ॥५॥
उदितसकल भूमीमण्डलैश्वर्य-सिद्धि
स्वयमपिकिमपीच्छन्नच्छधैर्यस्य शिष्य ।

---

[1] **जर्नल एसियाटिक सोसाइटी (बंगाल) १८८९, जिल्द ५८, पृष्ट १**

[2] **इन्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, कलकत्ता; मार्च १९२९, पृष्ठ १४-३०)।**

अभवदभयभाज. श्रद्धया बन्धुरात्मा
नृपशतकृतसेव: श्रीजयच्चन्द्रदेव: ॥(१०)
श्रीमन्महाबोधिपदस्य शास्त्रग्रामादिक मग्नमशेषमेव।
काशीशदीक्षागुरुरुद्धार य· शासन शासनकर्णधार· ॥(१२)
सत्राणि तिसृणा चासामङ्कणेषु निरङ्कण.।
सोऽय श्रीमज्जगन्मित्र शाश्वतीकृत्य कृत्स्नवित् ॥(१४)
. . .वेदनयनेन्दु-निष्ठया सख्ययाङ्कपरिपाटिलक्षिते।
विक्रमाङ्कनरनाथवत्सरे ज्येष्ठमासि युगपद् व्यदीधपत् ॥"(१५)

इसमे मित्र और जगन्मित्र, दोनो ही नाम आये है। काशीश्वर जयच्चन्द्रदेवका उन्हे दीक्षा-गुरु कहा है और साथ ही बुद्धधर्म (=शासन) का कर्णधार भी। सिद्धोके सारे गुण इनमे थे, तो भी इनका नाम चौरासी सिद्धोमे न आना बतलाता है कि, इनके पहले ही चौरासी सख्या पूरी हो चुकी थी।[1]

---

[1] (१) बौद्धधर्ममें अन्त तकका विचार-विकास। (२) बौद्ध-धर्मके भारतसे लोपका कारण। (३) भारतमें, आम तौरसे, विहारमें विशेष तौरसे तथा गया जिलेमें बहुत ही अधिकतासे जो बौद्ध-मूर्तियाँ मिलती हैं, उनका परिचय तथा बौद्धमूर्ति-विद्या। (४) नाथपंथ, कबीर, नानक आदि संतमतसंबंधी विचारके स्रोतका मूल। (५) कौलधर्म, वाममार्ग, भैरवीचक्र आदिके विकासका इतिहास। (६) भारतमें हठयोग, स्वरोदय, त्राटक (Hypnotism), भूतावेश (Spiritualism) का क्रम-विकास (७) १२ वीं शताब्दीमें भारतीयोकी राजनीतिक पराजयका कारण। (८) पालवंशका इतिहास (विशेष तौर से) गहड़वार आदि कितने ही राजवंशोंका इतिहास (आंशिक तौरसे)। (९) हिन्दी-भाषाके आदि कवि और उनकी कविता।

—यह और कितने ही और भी विषय हैं, जिनके लिये वज्रयानके इतिहासका अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

(१०)

हिन्दीके प्राचीनतम कवि और उनकी कविताएँ

सिद्धयुग (८००—१२०० ई०)

सिद्ध लोगोने उस समय लोकभाषामे कविता शुरू की, जिस समय शताब्दियोसे भारतके सभी धर्मवाले किसी-न-किसी मुर्दा भाषा द्वारा अपने धर्मका प्रचार कर रहे थे, और इसी कारण उनके धर्मके जाननेवाले बहुत थोडे हुआ करते थे। सिद्धोके ऐसा करनेके कारण थे—वह धर्म, आचार, दर्शन आदि सभी विषयोमे एक क्रान्तिकारी विचार रखते थे। वह सभी अच्छी-बुरी रूढियोको उखाड फेकना चाहते थे; यद्यपि जहाँतक मिथ्या-विश्वासका सम्बन्ध था, उसमे वह कई गुनी वृद्धि करनेवाले थे। अपने वज्रयानकी जनतापर विजय पानेके लिये उन्होने भाषाकी कविताका सहारा लिया। आदिसिद्ध स र ह पा द से ही हम देखते है कि, सिद्ध बननेके लिये भाषाका कवि होना, मानो एक आवश्यक बात थी। सिद्धोन भाषामे कविता करके यद्यपि अपने विचारोको जनताके समझने लायक बना दिया; तथापि डर था कि, विरोधी उनके आचार-विरोधी कर्म-कलापका खुले-आम विरोध कर कही जनतामे घृणाका भाव न पैदा कर दे; इसीलिये वह एक तो विशेष-योग्यता-प्राप्त व्यक्तियोको ही उन्हे सुननेका अवसर देते थे, दूसरे भाषा भी ऐसी रखते थे, जिसका अर्थ वामाचार और योगाचार, दोनोमे लग जाये। इस भाषाको पुराने लोगोने "सन्ध्याभाषा" कहा है; और, आजकल उसे "निर्गुण," "रहस्यवाद," या "छायावाद" कह सकते है। गुप्त रक्खे जानेके ही कारण हमे "प्राकृत-पैङ्गल" जैसे ग्रन्थोंमे इन काव्योंका कोई उद्धरण नही मिलता।

अन्यत्र हम लिख चुके हैं कि, चौरासी सिद्धोका काल ८००-११७५ ई० है; किन्तु सिद्ध उसके बाद भी होते रहे हैं; इसलिये सिद्धकाल उससे बादतक भी रहा है; तोभी भाषाके खयालसे हम उसे महाराज जयचन्द्रके गुरु मित्रयोगी (१२००)के साथ समाप्त करते है। रामानन्द, कबीर (जन्म १३९९ ई०, मृ० १४४८); नानक (जन्म १४६८ ई०), दादू (जन्म १५४४ ई०) आदिसे राधा-स्वामी दयालतक सभी सन्त इन्ही चौरासी सिद्धोकी टकसालके सिक्के थे। रामानन्दकी कविताएँ दुर्लभ हैं। उन्होने तथा उनके शिष्य कबीरने, चौदहवी शताब्दीके अन्त और पन्द्रहवी शताब्दीके आरम्भमें, अपनी कविताएँ की। यदि बारहवी शताब्दीके अन्तसे चौदहवी शताब्दीके अन्तका कविता-प्रवाह जोड़ा जा सके, तो सिद्ध और सन्त-कविता-प्रवाहके एक होनेमें आपत्ति नही हो सकती। यह जोडनेवाली शृङ्खला नाथपन्थकी कविताएँ है। हम कबीर-सम्बन्धी कहावतोमे गोरखनाथ और कबीरका विवाद अक्सर सुनते हैं। महाराज देवपाल (८०९-८४९ ई०)के समकालीन सिद्ध गोरखनाथ पन्द्रहवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे कबीरसे विवाद करने नही आ सकते। वस्तुतः वहाँ हमें गोरखनाथकी जगह उनके नाथपन्थको लेना चाहिये। मुसलमानोके प्रहार और अपनी भीतरी निर्बलताओके कारण बौद्धधर्म विलीन होने लगा। उससे शिक्षा ग्रहण कर आत्मरक्षार्थ नाथपन्थ धीरे-धीरे अनीश्वरवादीसे ईश्वरवादी हो गया। कबीरके समय वही एक ऐसा पन्थ था, जिसकी वाणियों और सत्सगोका प्रचार सर्वसाधारणमे अधिक था। जिस प्रकार बड़ोदा, इन्दौर, कोल्हापुर तथा कुछ पहले झाँसी और तंजोरतक फैले छोटे-छोटे मराठा-राज्य एक भूतपूर्व विशाल मराठा-साम्राज्यका साक्ष्य देते है, उसी प्रकार आज भी काबुल, पंजाब, युक्त-प्रान्त, बिहार, बङ्गाल और महाराष्ट्रतक फैली नाथपन्थकी गद्दियाँ नाथ-पन्थके विशाल विस्तारको बतलाती हैं। यह विस्तार वस्तुतः उन्हें अपने चौरासी सिद्धोसे, पैतृक सम्पत्तिके रूपमें मिला था। नाथपन्थके

परिवर्तनके साथ शेष बौद्ध, ब्राह्मण-धर्ममे लौटे।

"नाथपन्थ" चौरासी सिद्धोसे ही निकला है। इसके लिये यहाँ कुछ लिखना अप्रासंगिक न होगा—विशेषतः जब कि, बारहवीसे चौदहवी शताब्दीतककी हिन्दी-कविताओंके लिये हमें अधिकतर नाथ-घरानेकी ओर ही नजर दौड़ानी होगी। "गोरक्ष-सिद्धान्त-सग्रह"मे[1] "चतुरशीतिसिद्ध" शब्दके साथ निम्न सिद्धोका नाम मार्ग-प्रवर्तकके तौरपर लिखा गया है—नागार्जुन (१६), गोरक्ष (९), चर्पट (५९), कन्थाधारी (६९), जालन्धर (४६), आदिनाथ (=जालन्धरपा, सि० ४६), चर्या (कण्हपा) (१७)[2]। इससे चौरासी सिद्धो और नाथपन्थके सम्बन्धमे सन्देहकी कोई गुंजायश

---

[1] "गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह", सरस्वतीभवन-टेक्स्ट-सीरीज, बनारस—

"नागार्जुनो जडभरतो हरिश्चन्द्रस्तृतीयकः।
सत्यनाथो भीमनाथो गोरक्षश्चर्पटस्तथा॥
अवद्यश्चैव वैराग्यः कन्थाधारी जलन्धरः।
मार्गप्रवर्तका ह्येते तद्वच्च मलयार्जुनः॥" (पृष्ठ १९)।

"एवं श्रीगुरुरादिनाथः। मत्स्येन्द्रनाथः। तत्पुत्र उदयनाथः। दण्डनाथः, सत्यनाथः, सन्तोषनाथः, कूर्मनाथः, भवनार्जिः। तस्य श्रीगोरक्षनाथः.........॥" (पृष्ठ ४०)।

"चत्वारो युगनाथास्तु लोकानामभिगुप्तये।
मित्रीशोड्डीश षष्ठीशचर्याख्याः कुम्भाख्याः।......" (पृष्ठ ४३)।
"चतुरशीतिसिद्धानां पूर्वादीनां दिशां न्यसेत्।...।
नवनाथस्थितिं चैव सिद्धागमेन कारयेत्।
गोरक्षनाथो वसेत् पूर्वे...जलन्धरो वसेन्नित्यमुत्तरापथमाश्रितः।...
नागार्जुनो महानाथो....।"(पृष्ठ ४४)।

[2] कण्हपाको भोटियामें स्प्योद्-पा-पा (चों..-पा-पा=चर्यापा) भी कहते हैं। (स-स्क्य-ब्कं-बुम्, ज ३४९ क)।

नहीं रह जाती। विचारोंमें यद्यपि अब नाथपन्थ अनीश्वरवाद छोड़कर ईश्वरवादी हो गया है; तथापि अब भी उसकी वाणियोंमें छान-बीन करने-पर निर्वाण, शून्यवाद और वज्रयानका बीज मिलेगा। नाथपन्थी महाराष्ट्रीय ज्ञानेश्वरने अपनी परम्परा इस प्रकार दी है—

आदिनाथ,
मत्स्येन्द्रनाथ,
गोरखनाथ,
गहनीनाथ,
निवृत्तिनाथ,
ज्ञानेश्वर।

इनमे आदिनाथ जालन्धरपा ही है, जैसा कि, जालन्धरपादके ग्रन्थ "विमुक्तमञ्जरी"[1] के भोटिया-अनुवादसे मालूम होता है। इस परम्परामे बीचके पुरुषोको छोड दिया गया है; क्योंकि गोरखनाथ (९वी शताब्दी) और ज्ञानेश्वर (१४वी शताब्दी)के बीचमें सिर्फ दो ही पीढियाँ नही हो सकती। मैंने अन्यत्र सरहके वंश-वृक्षमें चर्पटीसे शान्तिगुप्ततकका भाग, १६ वी शताब्दीके भोटिया-ग्रन्थ "रत्नाकर जोपमकथा"से[2] दिया है (इस ग्रन्थके आरम्भका एक पृष्ठ तथा अन्तके भी कितने ही पृष्ठ गायब है)। वज्रयानके सम्बन्धमें भोटिया-भाषामे जो सामग्री उपलभ्य है, वह बहुत ही प्रचुर परिमाणमें है; और, उसका अधिकांश शताब्दियोके हेर-फेरसे बचा रहनेसे बहुत प्रामाणिक है। इसीलिये गोरखनाथ, मत्स्येंद्रनाथके काल-निर्णयमे उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। भोटिया-ग्रन्थोकी बातोकी पुष्टि, कभी-कभी बड़े

[1] देखिये Cordier का *Catalogue du fonds Tibetain, troisieme partie*, पृष्ठ ११२, *Vol. LXXIII* 49.

[2] रिन्-पो-छे़ङ-ऽब्युङ्‌ख़ुङस्-ल्त-बु-ग्तम्।

विचित्र रूपसे होती देखी जाती है। उक्त "रत्नाकरजोपमकथा" ग्रन्थमें लिखा है—

"मीननाथ और मत्स्येन्द्रनाथ, ये दोनों भारतकी पूर्व दिशावाले काम-रूप (देश)के मछुवे थे..... (वहाँ) लौहित्य-नदी है, जिसे आजकल भोट-में 'चङ्-पो' कहते है।.... (मत्स्येन्द्र) मछलीके पेटमें १२ वर्ष रहे। फिर आचार्य चर्पटीके पास गये।.... दोनों ही सिद्ध हो गये।.... बाप (हुआ) सिद्ध मीनपा और बेटा सिद्ध मछिन्द्रपा।"

'तन्त्रालोक'की टीकामें इसकी पुष्टि हमे इस श्लोकसे मिलती है—

"भैरव्या भैरवात् प्राप्तं योगं व्याप्य ततः प्रिये।
तत्सकाशात्तु सिद्धेन मीनाख्येन वरानने।
कामरूपे महापीठे मच्छेन्द्रेण महात्मना।"[1]

'नाथपन्थ'के चौरासी सिद्धोंका उत्तराधिकारी सिद्ध हो जानेपर फिर कबीरसे सम्बन्ध जोड़नेमे दिक्कत नही रहती। कबीर स्वयं चौरासी सिद्धोको भूले न थे, तभी तो उन्होंने कहा है—

"धरती अरु असमान बि, दोई तूँबड़ा अबध।
षट दर्शन संसे पड़्या, अरु चौरासी सिध॥"[2]

यहाँ चौरासी सिद्धोसे विरोध प्रकट करनेसे कबीर उनकी टकसालके न थे—ऐसा समझनेकी आवश्यकता नही। वस्तुतः रामानन्द, कबीरने सिद्धोके ही निर्गुण, योग और विचित्र ढंगको अपनाकर नाथवशके राज्य-पर धावा किया[3] और शताब्दियोके सघर्षके बाद वह विजयी हुए। यदि

---

[1] (त्रिवेण्ड्रम्-संस्कृत-सीरीज, पृष्ठ २४, २५, *Indian Historical Quarterly*, *March* 1930 में उद्धृत)

[2] कबीरग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ ५४

[3] चंदनकी कुटकी भली, नाँ बबूर अमराँऊँ।
बैश्नौंकी छपरी भली, नाँ साषतका बड़गाँव॥"

आप भक्तमालके भक्तोके व्यवसाय, कुल, रहन-सहनको चौरासी सिद्धोंसे मिलावें, तो यह विचार-सादृश्य भली भाँति प्रकट हो जायगा।

सिद्धोंकी कविताकी भाषा आठवीसे १२वी शताब्दीकी भाषा है; इसीलिये उसका आपसमे भी भेद होना स्वाभाविक है। फिर नवी शताब्दीके कण्हपाकी २०वी शताब्दीकी भाषासे कितना फर्क होगा, इसके लिये तो कहना ही क्या! आखिरी सिद्धके १०० वर्ष बाद, सन् १३०० ई० में, राणा हम्मीर सिंह चित्तौड़की गद्दीपर बैठे। हिन्दुओकी कुछ परम्परागत कमजोरियोको छोडकर वह एक आदर्श क्षत्रिय· वीर थे। उनके सम्बन्धकी कुछ कविताएँ "प्राकृत-पैङ्गल"मे उद्धृत है (इसका कवि सम्भवत. "जज्जल" था, जो कि, हम्मीरका सेनापति भी था)। इस चौदहवी शताब्दीके पूर्वार्द्धकी भाषाको आजसे मिलानेसे उससे भी पुरानी सिद्धोकी भाषाके पूर्वका अनुमान किया जा सकता है—

"पअ[1] भरु दर भरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ।
कमठ पिट्ठ टरपरिअ[2] मेरु मंदर सिर-कंपिअ॥
कोह चलिअ हम्मीर वीर गअ-जूह[3] संजुत्ते।
किअउ कट्ठ आकंद[4] मुच्छि [5]म्लेच्छहके पुत्ते॥९२॥
"पिंधउ[6] दिढ़ सण्णाह[7] बाह- उप्पर पक्खर[8] दइ।
बन्धु समदि[9] रण धसउ सामि हम्मीर वअण[10] लइ।
उड्डुल णह-पह[11] भमउ[12] खग्ग[13] रिउ[14] सीसहि डारउ।
पक्खर[15] पक्खर ठेल्लि पेल्लि पब्बअ[16] उप्फालउ[17]॥

(कबीर ग्रं०, पृ ५२)। यहाँ "साषत" या शाक्तसे मतलब जिस सम्प्रदायसे था, उसमें नाथपन्थ उस समय प्रमुख था।

[1] पद। [2] डगमगाये। [3] गजयूथ। [4] आक्रंदन। [5] म्लेच्छोंके। [6] पेन्ह्यो, पहना। [7] कवच। [8] कवच। [9] समझकर। [10] वचन। [11] नभपथ। [12] भ्रम्यो, घूमा। [13] खड्ग। [14] रिपु। [15] पकड़। [16] पर्वत। [17] उपारा, उखाड़ा।

हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल[1] मुह मह जलउ
सुलतान सीस करवाल दइ, तेज्जि कलेवर दिअ[2]
चलेउ ॥१०७॥[3]

इसके पहलेकी एक कविता लीजिये, जो सम्भवत: काशिराज जयचन्द या हरिश्चन्द्रके लिये लिखी गई मालूम होती है[4]—

"जे किज्जिअ-धाला[5] जिराणु
णिवाला[6] भोट्टन्ता[7] पिट्टंत[8] चले।
भंजाबिअ[9] चीणा दप्पहि[10] हीणा
लोहाबल हाकंद[11] पले।
ओड्डा[12] उड्डाबिअ[13] कित्ती[14] पाबिअ[15]
मोलिअ[16] मालब[17] राअ बले।
तेलंगा भग्गिअ पुणबि ण[18] लग्गिअ,
कासीराआ[19] जखण[20] चले॥" (पृ० १९८)

तेरहवी शताब्दीके मध्यमे लिखे गये एक भोटियाग्रन्थमे[21] उद्धृत

---

[1] क्रोधानल। [2] दिव, स्वर्ग।

[3] "प्राकृत-पैङ्गल", बंगाल रा० एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित (पृष्ठ १८०)।

[4] "प्राकृत-पैङ्गल", पृष्ठ ३१८

[5] वर्गबद्ध। [6] जीता। [7] नेपालको। [8] तिब्बत। [9] भग्न किया। [10] दर्पमें। [11] आक्रन्दन, रोना-पीटना। [12] उड़ीसावासी। [13] उड़ा दिया, उजाड़ दिया। [14] कीर्त्ति। [15] पाया। [16] परास्त किया। [17] मालव राजकी सेनाको। [18] पुनरपि न, फिर नहीं। [19] काशिराज। [20] जिस समय।

[21] स-स्क्य-ब्कं-बुम्, प, पृष्ठ २८४ ख; फग्स्-पा (१२३३-१२७९ ई०) विरचित।

कुछ हिन्दी-शब्दोंको देखिये—इन्द (इन्द्र), जम (यम), जक्ख (यक्ष), बाउ (वायु), रक्ख (रक्ष), चन्द (चन्द्र), सुज्ज (सूर्य), माद (माता), बप्प (बाप)।

इन उदाहरणोसे आपकी समझमे आ जायगा कि, हिन्दीकी आदिम कविताकी भाषाका आजकलकी भाषासे काफी भेद होना स्वाभाविक है।

जिन कवियोकी कविताओको मै यहाँ हिन्दीकी प्राचीनतम कविता कहकर उद्धृत करने जा रहा हूँ, उन्हे बँगालके दिग्गज ऐतिहासिक बँगला की कविता कहते है। इसके बारेमे इसी पुस्तकमे मुद्रित दूसरे लेख (९) में आ गया है और यहाँ भी जो कवियोका सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है, वह काफी उत्तर है। सर्व-पुरातन सिद्ध सरहपाद नालन्दासे सम्बन्ध रखते थे, इसलिये उनकी भाषाका मगही होना स्वाभाविक ठहरा। अन्य सिद्धोने भी इसी भाषाको कविताकी भाषा बनाया। चौरासी सिद्ध नालन्दा और विक्रमशिलासे सम्बन्ध रखते थे। जबतक नालन्दा, विक्रमशिलाको बँगाल[१] मे नही ले जाया जाता, तबतक सिद्धोकी भाषा भी बँगला नही हो सकती। रही भाषाकी समानताकी बात; वह तो मगही और मैथिलीसे और अधिक है। वस्तुत अतीत कालके भीतर हम जितना ही अधिक घुसते जायँगे समानता उतनी ही अधिक बढ़ती जायेगी; क्योकि, मगही, ओड़िया, बँगला, आसामी, मैथिली—सभी मागधीकी सन्ताने है।

१. सरहपा (सिद्ध ६)—इनके दूसरे नाम राहुलभद्र और सरोजवज्र भी है। पूर्व दिशामे राज्ञी (?) नामक नगरमे एक ब्राह्मण-वंशमे इनका

---

[१] *"Thus the time of the earliest Doha* (**दोहा**) *in Bengali goes back to the middle of the seventh century, when Saraha flourished and Bengal may be justly proud of the antiquity of her literature."* Dr. B. Bhattacharya, (*J. B. O. R. S. LXXXLI*, 1, p. 247).

जन्म हुआ था। भिक्षु होकर यह एक अच्छे पण्डित हुए। नालन्दामें कितने ही वर्षोंतक इन्होने वास किया। पीछे इनका ध्यान मन्त्र-तन्त्रकी ओर आकर्षित हुआ और आप एक वाण [शर=सर] बनानेवालेकी कन्याको महामुद्रा[1] बनाकर किसी अरण्य मे वास करने लगे। वहाँ यह भी शर (वाण) बनाया करते थे; इसीलिये इनका नाम सरह पड गया। श्रीपर्वत-[2] में भी यह बहुधा रहा करते थे। सम्भव है, इनकी मन्त्रोकी ओर प्रथम प्रवृत्ति वही हुई हो। शबरपाद (५) इनके प्रधान शिष्य थे। कोई तान्त्रिक नागार्जुन भी इनके शिष्य थे। भोटिया तन्-जूरमे इनके ३२ ग्रन्थोका अनुवाद मिलता है, जो सभी वज्रयानपर हैं। इनमे एक "बुद्ध-कपाल-तन्त्र" की पञ्जिका "ज्ञानवती" भी है। इनके निम्न काव्य-ग्रन्थ मगहीसे भोटियामे अनुवादित हुए है —

१ क, ख दोहा (त० [3]४७।७)।

२ क-ख दोहा-टिप्पण (त० ४७।८)।

३ कायकोष-अमृतवज्रगीति (त० ४७।९)।

४ चित्तकोष-अजवज्रगीति (त० १७।११)।

५ डाकिनी-वज्र-गुह्यगीति (त० ४८।१०६)।

६ दोहा-कोष-उपदेश-गीति (त० ४७।५)।

७ दोहाकोषगीति (त० ४६।९)

८ दोहाकोषगीति। तत्त्वोपदेशशिखर—, (त० ४७।१७)।

---

[1] वज्रयानीय योगकी सहचरी योगिनी अथवा हेप्नाटिज्मका माध्यम।

[2] नहरल्ल-बड्ड (नागार्जुनीकोंडा, जिला गुंटूर)।

[3] त-से मतलब तन्जूरके तन्त्र-खण्डसे है। विशेषके लिये देखिये Cordier का *Catalogue du fonds Tibetain;* द्वितीय और तृतीय खण्ड।

९ दोहा-कोष-गीतिका। भावनादृष्टि-चर्याफल–, (त० ४८।५)।
१० दोहाकोष। वसन्ततिलक–, (त० ४८।११)।
११ दोहाकोष-चर्यागीति। (त० ४७।४)।
१२ दोहाकोष-महामुद्रोपदेश। (त० ४७।१३)।
१३ द्वादशोपदेश-गाथा (त० ४७।१५)।
१४ महामुद्रोपदेशवज्रगुह्यगीति। (त० ४८।१००)।
१५ वाक्-कोषरुचिरस्वरवज्रगीनि। (त० ४७।१०)
१६ सरहगीतिका (त० ४८।१४, १५)।

इनकी कुछ कविताओका नमूना लीजिए—

[१]"जह मन पवन न सञ्चरइ, रवि शशि नाह पवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश॥"

"पण्डिअ सअल सत्थ बक्खाणइ
देहहि बुद्ध बसन्त न जाणइ"
"अमणागमण ण तेन विखण्डिअ।
तोवि णिलज्ज भणइ हँउ पण्डिअ"
"जो भबु सो निवा[?व्वाण] खलु,
भेवु न मण्णहु पण्ण।"

"एकसभावे विरहिअ, णिम्मलमइ पड़िवण्ण॥"
"घोरे न्धारें चन्दमणि, जिमि उज्जोअ करेइ।
परममहासुह एखुकणे, दुरिअ अशेष हरेइ॥"
"जीवन्तह जो नउ जरइ, सो अजरामर होइ।
गुरु उपएसें विमलमइ, सो पर धण्णा कोइ॥"

---

१ "बौद्धगान-ओ-दोहा"—बंगीयसाहित्य-परिषद्, कलकत्ता, "सरोज वज्रेर दोहाकोष।"

इनके कुछ गीति-पद्य—

राग देशाख [३२]

"नाद न विन्दु न रवि न शशि-मण्डल ।।
चिअराअ सहाबे मूकल ।।ध्रु०।।
उजु रे उजु छाड़ि मा लेहु रे बङ्क ।
निअहि बोहिमा जाहु रे लाङ्क ।।ध्रु०।।
हाथेरे कान्काण मा लोउ दापण ।
अपणे अपा बुझतु निअ-मण ।।ध्रु०।।
पार उआरे सोइ गजिइ ।
दुज्जण साङ्गे अवसरि जाइ ।।ध्रु०।।
वाम दाहिण जो खाल विखला ।
सरह भणइ बपा उजुवाट भाइला ।।ध्रु०।।"[1]

राग भैरवी (३८)

'काअ णावड़ि खण्टि मण केडुआल ।
सद्गुरु वअणे धर पतवाल ।।ध्रु०।।
चीअ थिर करि धहुरे नाही ।
अन उपाये पार ण जाई ।।ध्रु०।।
नौवाही नौका टागुअ गुणे ।
मेलि मेल सहजें जाउ ण आणें ।।ध्रु०।।

---

[1] बौद्धगान-उ-दोहा" "चर्याचर्यविनिश्चय" ("चर्या-गीति" नाम ठीक जँचता है)। पाठ बहुत अशुद्ध है। यहाँ कहीं मात्राके ह्रस्व-दीर्घ करनेसे, कहीं संयुक्त वर्णोंके घटाने-बढ़ानेसे तथा कहीं-कहीं एकाध अक्षर छोड़ देनेसे छन्दो-भंग दूर हो जायगा। जैसे पहली पंक्तिमें "रवि न शशि"के स्थानपर रवि-शशि; "चिअ-राअ"के स्थानपर "चीअ-राअ"; "कान्काण"के स्थान-पर कङ्कण; "आपा"के स्थानपर अप्पा।

बाट अभअ खाण्टबि बलआ।
भव उलोलें षअबि बोलिआ॥ध्रु०॥
कुल लइ खरे सोन्ते उजाअ।
सरह[1] भणइ गणें पमाएँ॥ध्रु०॥ ॥३८॥

२ शबरपा (सिद्ध ५)—यह सरहपादके शिष्य थे। गौडेश्वर महाराज धर्मपाल (७६९–८०९ ई०)के कायस्थ (लेखक) लूइपा इन्हींके शिष्य थे। नागार्जुनको भी इनका गुरु कहा गया है; किन्तु यह शून्यवादके आचार्य नागार्जुन नही हो सकते। यह अक्सर श्रीपर्वतमे भी रहा करते थे। जान पड़ता है, शबरो या कोल-भीलो की भाँति रहन-सहन रखनेके कारण इन्हें शबरपाद कहा जाने लगा। तन्-जूरमे इनके अनुवादित ग्रन्थोकी संख्या २६ है; (जो सभी छोटे-छोटे है); पीछे, दसवीं शताब्दीमें, भी एक शबरपा हुए थे जो मैत्रीपा या अवधूतीपाके गुरु थे। उनकी भी पुस्तकें इन्हीमे शामिल है। इनकी हिन्दी-कविताएँ ये हैं—

"चित्तगुह्यगम्भीरार्थ-गीति" (त० ४८।१०८)।
महामुद्रावज्रगीति (त० ४७।२९)।
शून्यतादृष्टि (त० ४८।३६)।
षडङ्गयोग[2] (त० ४।२२)।
सहजशवरस्वाधिष्ठान[2] (त० १३।५)।
सहजोपदेश स्वाधिष्ठान[2] (त० १३।४)।

---

[1] **सरहपाद संस्कृतके भी कवि थे।**
"या सा संसारचक्रं विरचयति मनःसन्नियोगात्महेतोः।
सा धीर्यस्य प्रसादाद्दिशति निजभुवं स्वामिनो निष्प्रपञ्च(म्)।
तच्च प्रत्यात्मवेद्यं समुदयति सुखं कल्पनाजालमुक्तम्।
कुर्यात् तस्याङ्घ्रियुग्मं शिरसि सविनयं सद्गुरोः सर्वकाल(म्)॥"
("चर्याचर्यविनिश्चय," पृष्ठ ३)

[2] **ये ग्रन्थ संस्कृतमें थे या हिन्दीमें, इसमें सन्देह है।**

चर्या-गीतोमे इनके दो गीत मिलते है।

(राग बलाड्डि २८)

"ऊँच ऊँचा पावत तँहिं बसइ सबरी बाली।
मोरङ्गि पीच्छ परहिण सबरी गिवत गुञ्जरी माली ।।ध्रु०।।
उमत सबरो पागल शबरो मा कर गुली गुहाडा,
तोहौरि णिअ घरिणी णामे सहज सुन्दारी।।ध्रु०।।
णाणा तरुवर मोलिल रे गअणत लागेली डाली।
एकेली सबरी ए वण हिण्डइ कर्णकुण्डलवज्रधारी।।ध्रु०।।
तिअ धाउ खाट पडिला सबरो महासुखे सेजि छाइली
सबरो भुजङ्ग णइरामणि दारी पेह्म राति पोहाइली ।।ध्रु०।।
हिअ ताँबोला महासुहे कापूर खाइ।
सुन निरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाइ।।ध्रु०।।
गुरुवाक पुञ्जआ बिन्ध णिअ मणे वाणें।
एके शर-सन्धानें बिन्धह-बिन्धह परम णिवाणें ।।ध्रु०।।
उमत सबरो गरुआ रोषे।
गिरिवर-सिहर-संधि पइसन्ते सबरो लोड़िव कइसे ।।२८।।"

राग रामक्री (५०)

"गअणत गअणत तइला वाड़ही हेञ्चे कुराडी।
कण्ठे नैरामणि बालि जागन्ते उपाड़ी।।ध्रु०।।
छाड़ छाड़ माआ मोहा विषमे दुन्दोली।
महासुहे विलसन्ति शबरो लइआ सुणमे हेली ।।ध्रु०।।
हेरि ये मेरि तइला बाडी खसमे समतुला।
षुकड़ए सेरे कपासु फुटिला।।ध्रु०।।
तइला वाड़िर पासेर जोह्ला वाडी ताएला।
फिटेलि अन्धारि रे अकाश फुलिआ।।ध्रु०।।

कुङ्गुरि ना पाकेला रे शबराशबरि मातेला।
अणुदिण शबरो किम्पि न चेवइ महासुहें भेला ॥ध्रु०॥
चारिवासे भाइलारें दिआँ चञ्चाली।
तँहि तोलि शबरो हकएला कान्दश सगुण शिआली ॥ध्रु०॥
मारिल भव-मत्तारे दह-दिहे दिध लिबली।
हे रसे सबरो निरेवण भइला फिटिलि षबराली" ॥ध्रु०॥

३ **कर्णरीपा या आर्यदेव (सिद्ध १८)**—यह शून्यवादके आचार्य नागार्जुनके शिष्य आर्यदेव न थे। इनके गुरु वज्रयानी सिद्ध नागार्जुन थे, जो कि, सरहपादके शिष्य थे। भिक्षु बनकर नालन्दा-बिहार गये। तन्-जूरके दर्शन-विभागमे आर्यदेवके ९ ग्रन्थो और तन्त्र-विभागमें २६ ग्रन्थोका अनुवाद है, जिनमे दर्शनके नौ ग्रन्थ तो पुराने माध्यमिक आर्य-देवके है; किन्तु तन्त्रके प्राय' सभी ग्रन्थ इन्हीके है। इनमे हिन्दीमे सिर्फ "निर्विकल्प प्रकरण" (त० ४७।२०) ही मालूम होता है। इनकी एक कविताका नमूना लीजिये—

राग पटमञ्जरी (३१)

"जहि मण इन्दिअ (प) वण हो णठा।
ण जाणमि अपा कँहि गइ पइठा॥ध्रु०॥
अकट करुणा डमरुलि बाजअ।
आजदेव णिरासे राजइ ॥ध्रु०॥
चान्दरे चान्दकान्ति जिम पतिभासअ।
चिअ विकरणे तहि टलि पइसइ॥ध्रु०॥
छाड़िअ भय घिण लोआचार।
चाहन्ते चाहन्ते सुण विआर॥
आजदेवें सअल विहरिउ ।
भय घिण दुर णिवारिउ॥ध्रु०॥"

४ लूइपाद (सिद्ध १७)—पहले राजा धर्मपाल (७६९-८०९ ई०) के लेखक (=कायस्थ) थे। एक समय जब महाराज धर्मपाल अपने राज्यके प्रदेश वारेन्द्रमें थे, तब सिद्ध शबरपाद भी विचरते हुए उधर जा निकले। एक दिन शबरपाद राजाके महलमे भिक्षाके लिये गये। उसी समय लूइ-पासे उनकी भेंट हुई। वह बहुत ही प्रभावित हुए और विरक्त हो शबर-पादके शिष्य बन गये। संख्यामें चौरासी सिद्धोंमें इनका नाम प्रथम होना ही बतलाता है कि, यह कितना प्रभाव रखते थे। इनके प्रधान शिष्योंमें सिद्ध दारिकपा और सिद्ध डेंगीपा थे, जो दोनो ही पूर्वाश्रममें क्रमशः उडीसा-के राजा और मन्त्री थे[१]। इन्होने पुरानी मगही हिन्दीमे [२] बहुत सी कवि-ताएँ की थीं। तन्-जूरमें इनके सात अनुवादित ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें निम्न पाँच हिन्दीमें थे—

अभिसमयविभङ्ग (त० १३।१८)।
तत्त्वस्वभावदोहाकोष (त० ४८।२)।
बुद्धोदय (त० ४७।४१, ७३।६२)।
भगवदभिसमय (त० १२।८)।
लूइपाद-गीतिका (त० ४८।२७)।

---

[१] स-स्क्य-ब्कं-बुम्, ज, पृष्ठ २४२ख—२४५ख।

[२] डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य इनकी कविताके विषयमें कहते हैं— *"These songs written by a Bengali in the soil of Bengal, may appropriately be called Bengali"* भोटिया-ग्रन्थोंमें बंगल या भंगल या भगल मिलता है, जिस नामसे कि, भोटिया लोग विक्रम-शिलावाले प्रदेशको पुकारते थे और जिसका चिन्ह भागलपुरके नाममें अब भी मौजूद है।

कविताका नमूना

राग पटमंजरी (१)

"काआ तरुवर पञ्च वि डाल
चञ्चल चीए पइठो काल
दिट करिअ महासुह परिमाण
लुइ भणइ गुरु पूच्छिअ जाण॥ध्रु०॥
सअल स (मा) हिअ काहि करिअइ
सुख दुखेतें निचित मरिआइ॥ध्रु०॥
एड़िएउ छान्दक बान्ध करणक पाटेर आस
सुनु पाख भिति लाहु रे पास ॥ध्रु०॥
भणइ लुइ आम्हे साणे दिठा
धमण चमण वेणि पाण्डि वइण ॥ध्रु०॥"

राग पटमंजरी (२९)

भाव न होइ अभाव ण जाइ,
आइस संबोहें को पतिआइ ॥ध्रु०॥
लूइ भणइ बट दुलक्ख विणाणा,
तिअ धाए विलसइ उह लागे णा॥ध्रु०॥
जाहेर बान-चिह्न, रुव ण जाणी,
सो कइसे आगम बेएँ वखाणी॥ध्रु०॥
काहेरे किष भणि मइ दिवि पिरिच्छा,
उदक चान्द जिमि साच न मिच्छा॥ध्रु०॥
लुइ भणइ भाइव कीस्,
जालइ अच्छमता हेर उह ण दिस् ॥ध्रु०॥"

५ भूसुकु (सिद्ध ४१)—नालन्दाके पासके प्रदेशमें, एक क्षत्रिय-वंशमें, पैदा हुए थे। भिक्षु बनकर नालन्दामे रहने लगे। उस समय नालन्दाके

राजा (गौड़ेश्वर) देवपाल (ई० ८०९-८४९) थे। कहते हैं, भूसुकुका नाम शान्तिदेव भी था। इनकी विचित्र रहन-सहनको देखकर राजा देवपालने एक बार 'भूसुकु' कह दिया और तभीसे इनका नाम भूसुकु पड़ गया ! शान्तिदेवके दर्शन-सम्बन्धी छः ग्रन्थ तन्-जूरमें मिलते हैं और तंत्र-पर तीन। भूसुकुके नामसे दो ग्रन्थ हैं, जिनमें एक "चक्रसंवरतन्त्र"की टीका है। मागधी हिन्दीमें लिखी इनकी "सहजगीति" (त० ४८।१) भोटिया-भाषामें मिलती है।

कविताका नमूना

राग कामोद (२७)

"अधराति भर कमल विकसउ,
बतिस जोइणी तसु अङ्ग उह्‌ लसिउ ॥ध्रु०॥
चालिउअ षषहर मागे अवधूइ,
रअणहु षहजे कहेइ ॥ध्रु०॥
चालिअ षषहर गउ णिवाणें,
कमलिनि कमल बहइ पणालें, ॥ध्रु०॥
विरमानन्द बिलक्षण सुध ॥
जो एथु बूझइ सो एथु बुध ॥ध्रु०॥
भूसुकु भणइ मइ बूझिअ मेलें,
सहजानन्द महासुह लोलें ॥ध्रु०॥

राग मल्लारी (४९)

"बाज णाव पाड़ी पँउआ खालें वाहिउ,
अदअबङ्गाले[१] क्लेश लुड़िउ ॥ध्रु०॥

---

[१] **डाक्टर भट्टाचार्यने लिखाहै**—"*The Pag--Sam-Jon-Zan it is said that Santideva was a native of Saurashtra,*

आजि भूसु बङ्गाली[1] भइली,
णिअ घरिणीं चण्डाली लेली ॥ध्रु०॥
डहि जो पञ्चधाट णइ दिवि संज्ञा णठा,
ण जानमि चिअ मोर कहिँ गइ पइठा ॥ध्रु०॥
सोण तरुअ मोर किम्पि ण थाकिउ,
निअ परिवारे महासुहे थाकिउ ॥ध्रु०॥
चउकोड़ि भण्डार मोर लइआ सेस,
जीवन्ते मइलेँ नाहि विशेष ॥ध्रु०॥"

६ **वीणापा (सिद्ध १२)**—गौडदेशमे[1] क्षत्रियवशमे इनका जन्म हुआ था। इनके गुरुका नाम भद्रपा (सि० २४) था। वीणा बजाकर यह अपने पदोको गाया करते थे; इसीलिये इनका नाम वीणापा पड़ गया।

---

but I am inclined to think that he belonged to Bengal. It is evident from his song." "आज भुसु बङ्गाली" (*ibid.*) गीतमें बंगाली शब्द खास तान्त्रिक परिभाषाके अर्थमें व्यवहृत हुआ है; जैसा कि, डाक्टर भट्टाचार्यके पिता प्रातःस्मरणीय महामहोपाध्याय हर-प्रसाद शास्त्रीने अपने इसी ग्रन्थकी भूमिका (पृष्ठ १२) में लिखा है—"सहज-मते तीनटि पथ आछे, अवधूती, चाण्डाली, डोम्बी वा बँगाली। अवधूती ते द्वैतज्ञान थाके, चाण्डालीते द्वैतज्ञान आछे.... बलिलेउ हय, किन्तु डोम्बीते केवल अद्वैत....एइ बार तुमि सत्य सत्यइ बंगाली हइले अर्थात् पूर्ण अद्वैत हइले।" और, यदि शब्दपर दौड़ना है, तब तो भूसुकु आज बंगाली हुए, मानो पहले न थे। फिर "भइली" शब्द बँगलामें कहाँ व्यवहृत होता है ? किन्तु वह काशीसे मगह तक आज भी बहुत प्रचलित है।

[1] पालवंशीय राजा गौड़ेश्वर कहे जाते थे। उनकी राजधानी पटना जिलेका बिहारशरीफ स्थान थी। नालन्दाके पास होनेके कारण भोटिया-ग्रन्थोंमें अक्सर उन्हें नालन्दाका राजा भी कहा गया है।

तन्-जूरमे इनके तीन ग्रन्थ मिलते हैं—१ गुह्याभिषेक-प्रक्रिया (त० २१।५०)। २ महाभिषेकत्रिक्रम (त० २१।५१)। ३ वज्रडाकिनीनिष्पन्न-क्रम (त० ४८।५३)।

इसमे तीसरा ग्रन्थ उसी बेठनमे है, जिसमे हिन्दी कविताओके दूसरे अनुवाद है, इसलिये मालूम पडता है, यह भी हिन्दीमे रहा है। "चर्यागीति"[१] मे इनका एक गीत इस प्रकार है—

राग पटमञ्जरी (१७)

"सुज लाउ ससि लागेलि तान्ती,
अणहा दाण्डी वाकि किअत अवधूती ।।ध्रु०।।
बाजइ अलो सहि हेरुअवीणा,
सुन तान्ति धनि विलसइ रुणा ।।ध्रु०।।
आलि कालि वेणि सारि सुणेआ,
गअवर समरस सान्धि गुणिआ ।।ध्रु०।।
जबे करहा करहक लेपि चिउ,
बतिश तान्ति धनि सएल विआपिउ ।।ध्रु०।।
नाचन्ति वाजिल गान्ति देवी,
बुद्ध नाटक विसमा होइ ।।ध्रु०।।"

७ विरूपा (सिद्ध ३)—महाराज देवपाल (८०९–४९ ई०)के देश "त्रिउर" (?)मे इनका जन्म हुआ था। भिक्षु बनकर नालन्दा-विहारमें पढने लगे और वहाँके अच्छे पण्डितोमे हो गये। इन्होने देवीकोट और श्रीपर्वत आदि सिद्ध स्थानोकी यात्रा की। श्रीपर्वतमे इन्हे सिद्ध नाग-बोधि मिले। यह उनके शिष्य हो गये। पीछे नालन्दामे आकर जब इन्होने देखा कि, विहारमे मद्य, स्त्री आदि, सहजचर्याके लिये अत्यावश्यक वस्तु-

---

१ "बौद्धगान ओ दोहा", पृष्ठ ३०

ओका व्यवहार नही किया जा सकना, तब वहाँसे गङ्गाके घाटपर चले गये। वहाँसे फिर उडीसा गये। इनके शिष्योमे डोम्बिपा (सि० ४) और कण्हपा थे। यमारितन्त्रके यह ऋषि थे। तन्-जूरमे इनके तन्त्र-सम्बन्धी अठारह ग्रन्थ मिलने है, जिनमे निम्न मगही हिन्दीमे थे—अमृतसिद्धि (त० ४७।२७)। दोहाकोष (त० ४७।२४)। दोहाकोषगीति-कर्म-चण्डालिका (त० ४८।४)। मार्गफलान्वितावबादक (त० ४७।२५)। विरूपगीतिका (त० ४८।२९)। विरूपवज्रगीतिका (त० ४८।१६)। विरूपपदचतुरशीति (त० ४७।२३)। सुनिष्प्रपञ्चतत्त्वोपदेश (त० ४३।१००)।

कविताका नमूना

राग गबड़ा (३)

"एक से शुण्डिनि दुह घरे सान्धअ,
चीअण वाकलअ वारुणी बान्धअ ॥ध्रु०॥
सहजे थिर करी वारुणी सान्धे,
जे अजरामर होइ दिट कान्ध ॥ध्रु०॥
दशमि दुआरत चिह्न देखइआ,
आइल गराहक अपणे बहिआ ॥ध्रु०॥
चउशठी घड़िये देट पसारा,
पइठेल गराहक नाहि निसारा ॥ध्रु०॥
एक स डुली सरुइ नाल,
भणन्ति विरुआ थिर करि चाल" ॥ध्रु०॥

८ दारिकपा (सि० ७७)—यह "ओडिसा"के[1] राजा थे। जब सिद्ध

[1] स-स्क्य-ब्कं-बुम्, ज, पृष्ठ २८४ ख से २८५ ख०। डा० विनय-तोष भट्टाचार्यने लिखा है—"*Lupa...belonged to an earlier*

लूइपा उडीसा गये, तब यह और इनके ब्राह्मण मन्त्री, जिनका नाम पीछे डेंगीपा (डेकीपा) पडा, राज्य छोडकर उनके शिष्य बन गये। गुरुने आज्ञा दी कि, सिद्धि-प्राप्तिके लिये तुम काचीपुरीमे जाकर गणिका-दारिका (=वेश्याकी कन्या)की सेवा करो। कई वर्षो तक यह उसकी सेवा करते रहे; इसीसे सिद्ध होनेपर इनका नाम दारिकपा पड गया ? सहज-योगिनी चिन्ता इनकी शिष्या थी; और, प्रसिद्ध सिद्ध वज्रघण्टापाद (५२) या घंटापा इनके प्रधान शिष्य थे। तन्-जूरमें इनके ग्यारह ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमेसे निम्न प्रांचीन ओडिया या मगही हिन्दीके मालूम होते हैं— १ओड्डियान-विनिर्गत-महागुह्यतत्त्वोपदेश (त० ४६।६)। २ तथतादृष्टि (त० ४८।४८)। ३ सप्तमसिद्धान्त (त० ४६।४६)।

कविताका नमूना

राग बराड़ा (३४)

"सुनकरुणरि अभिन बारें काअ-वाक्-चिअ,
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलें ॥ध्रु०॥
अलक्ष-लख-चित्ता महासुहे,
विलसइ दारिक० ॥ध्रु०॥
किन्तो मन्ते किन्तो तन्ते किन्तो रे झाण बखाने,
अपइठानमहासुहलीणे दुलख परमनिवाणें ॥ध्रु०॥

---

age and as such any close connection between the two is hardly admissible. Lui was reputed to be the first Siddhacharya, and that may be the reason why Darikapa reverentially mentions his name." लेकिन तिब्बतके सभी ग्रन्थ एक मतसे दारिकपाको लइपाका शिष्य कहते हैं। चौरासी सिद्धोंकी सूचीमें संख्याक्रम काल-क्रमसे नहीं है, यह अलग दिये वंश-वृक्ष और नाम-सूचीसे स्पष्ट हो जायगा।

दुःखें सुखें एकु करिआ भुञ्जइ इन्दीजानी,
स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तरमाणी ॥ध्रु०॥
राआ राआ राआरे अवर राअ मोहेरा बाधा,
लुइ-पाअ-पए दारिक द्वादशभुअणें लधा" ॥ध्रु०॥

९ डोम्भिपा (सिद्ध ४)—मगधदेशमे क्षत्रिय-वशमे पैदा हुए। वीणापा और विरूपा, दोनो ही इनके गुरु थे। लामा तारानाथने लिखा है कि, यह विरूपाके दस वर्ष बाद तथा वज्रघटापाके दस वर्ष पूर्व सिद्ध हुए। यह हेवज्र-तन्त्रके अनुयायी थे। सिद्ध कण्हपा (१७) इनके भी शिष्य थे। तन्-जूरमे २१ ग्रन्थ डोम्भिपादके नामसे मिलते हैं, किन्तु पीछे भी एक डोम्भिपा हुए हैं; इसलिये कौन ग्रन्थ किसका है, यह कहना कठिन है। इनके निम्न ग्रन्थ मगही हिन्दीमे थे—अक्षरद्विकोपदेश (त० ४८।६४)। डोम्बि-गीतिका (त० ४८।२८)। नाडीविदुद्वारे योगचर्या (त० ४८।६३)।

कविताका नमूना

राग देशाख (१०)

"नगर बाहिरिरें डोम्बि तोहोरि कुड़िया,
छइछोइ याइ सो बाह्म नाड़िआ॥ध्रु०॥
आलो डोम्बि तोए सम करिबे म साङ्ग,
निघिण काह्न कापालि जोइ लाग ॥ध्रु०॥
एकसो पदमा चौषट्ठी पाखुड़ी,
तहिँ चड़ि नाचअ डोम्बी बापुड़ी॥ध्रु०॥
हालो डोम्बि तो पुछमि सदभावे,
अइससि जासि डोम्बि काहरि नावँ॥ध्रु०॥
तान्ति विकणअ डोम्बी अवर ना चङ्गता,
तोहोर अन्तरे छाड़िनड़ एट्टा॥ध्रु०॥
तु लो डोम्बी हाउँ कपाली,
तोहोर अन्तरे मोए घलिलि होड़ेरि माली॥ध्रु०॥

सरबर भाञ्जीअ डोम्बी खाअ मोलाण,
मारमि डोम्बी लेमि पराण" ।।ध्रु०।।

राग धनसी (१४)

"गंगा जउना माझें रे बहइ नाई,
तहिँ बुड़िली मातङ्गि पोइआ लीले पार करेइ ।।ध्रु०।।
वाहतु डोम्बी वाहलो डोम्बी वाटत भइल उछारा,
सद्गुरु पाअ-पए जाइब पुणु जिणउरा ।।ध्रु०।।
पाञ्च केडुआल पड़न्ते माङ्गें पिटत काच्छी बान्धी,
गअणदुखोलें सिञ्चहु पाणी न पइसइ सान्धि ।।ध्रु०।।
चन्द सूज्ज दुइ चका सिठिसंहार पुलिन्दा,
वाम दहिण दुइ माग न रेवइ बाहतु छन्दा ।।ध्रु०।।
कवडी न लेइ बोडी न लेइ सुच्छडे पार करेइ,
जो रथे चड़िला वाहवाण जाइ कुलें कुल बुडइ" ।।ध्रु०।।

भिक्षावृत्ति[1] मे इनका यह दोहा मिलता है—

"भुञ्जइ मअण सहावर कमइ सो सइअल।
मोअ ओ धर्म करण्डिया, मारउ काम सहाउ।
अच्छउ अक्ख जे पुनइ, सो संसार-विमुक्क।
ब्रह्म महेसर णारायणा, सक्ख असुद्ध सहाव।।"

१० **कम्बलपाद (सिद्ध ३०)**—ओडिविश (उडीसा)मे, राजवशमे, इनका जन्म हुआ। भिक्षु होकर त्रिपिटकके पण्डित वने। पीछे सिद्ध वज्र घटापा (५२)के सत्सगमे पड उनके शिष्य हो गये। इनके गुरु सिद्धाचार्य वज्रघटापाद या घटापाद उड़ीसामें कई वर्ष रहे और उनके ही कारण उडीसा-

[1] तन्-जूर (त० २१।१६)। ल्हासाके मुरु-विहारकी हस्त-लिखित प्रतिका पाठ।

मे वज्रयानका बहुत प्रचार हुआ। सिद्ध राजा इन्द्रभूति इनके शिष्य थे। कम्बलपाद बौद्ध दर्शनके भी पण्डित थे। प्रज्ञापारमिता-दर्शनपर इनके चार ग्रन्थ, भोटियामे, मिलते हैं। इनके तन्त्र-ग्रन्थोकी सख्या ग्यारह है, जिनमे निम्न प्राचीन उडिया या मगहीमे थे—असम्बन्ध-दृष्टि (त० ४८। ३८)। असम्बन्ध-सर्गदृष्टि (त० ४८।३९)। कम्बलगीतिका (त० ४८।३०)।

कविताका नमूना

राग देवक्री (८)

"सोने भरिती करुणा नावी,
रूपा थोइ महिके ठावी॥ध्रु०॥
वाहतु कामलि गअण उवेसें,
गैली जाम बहु उइ काइसें॥ध्रु०॥
खुन्टि उपाड़ी मेलिलि काच्छि,
वाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि॥ध्रु०॥
माङ्गत चन्हिले चउदिस चाहअ,
केड़ु आल नहि कें कि बाहबके पारअ॥ध्रु०॥
वामदाहिण चापो मिलि मिलि मागा,
वाटत मिलिल महासुह सङ्गा॥ध्रु०॥"

११ जालन्धरपाद (सिद्ध ४६)—नगर-भोग (?) देशमे, ब्राह्मण-कुलमे, इनका जन्म हुआ था। पीछे एक अच्छे पण्डित भिक्षु बने। किन्तु घटापादके शिष्य, सिद्ध कूर्मपादकी सगतिमे आकर यह उनके शिष्य हो गये। मत्स्येन्द्रनाथ, कण्हपा और ततिपा इनके शिष्योमे थे। भोटिया-ग्रन्थोमें इन्हे आदिनाथ भी कहा गया है। नाथपन्थकी परम्परामे भी आदिनाथसे इन्हीसे मतलब है। इस प्रकार चौरासी सिद्धोमे जालन्धरपादकी परम्परा अब भी भारतमे कायम है। गोरक्षनाथ इनके शिष्य मत्स्येन्द्रके शिष्य

थे। तन्-जूरमे इनके सात ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें निम्न प्राचीन मगहीके हैं—विमुक्तमजरी-गीत (त० ७३।४९)। हूँकार-चित्त-बिंदु-भावनाक्रम (त० ४८।७२)।

कविताका नमूना

राग निवेद, ताल माठ, (७६)[1]

"अखय निरंजन अद्वय अनु
पथ गगन कमरंजे साधना,
शून्यता विरासित राय श्री चिय,
देव पान-बिन्दु समय जो विता।।ध्रु०।।
नमामि निरालम्ब निरक्षर,
स्वभाव हेतु स्फुरन संप्रापिता,
सरद-चन्द्रसमय तेज प्रकासित
जरज-चन्द्र समय व्यापिता।।ध्रु०।।
खडग योगाम्बर सादिरे चक्रवर्ति
मेरुमंडल भमलिता,
निर्म्मल हृदयारे चक्रवर्ति ध्याविते
अहितिसिक्षंजत्र मय साधना।।ध्रु०।।
आनंद परमानंद बिरमा
चतुरानंद जे संभवा,
परमा विरमा माँझे रे न छादिरे
महासुख सुगत संप्रद प्रापिता।।ध्रु०।।
हे वज्रकार चक्र श्रीचक्रसंवर,
अनन्त कोटि सिद्ध पारंगता,

---

[1] मैंने यह पाठ नेपालके बौद्धोमें आज भी प्रचलित चर्यागीति (चचो) पुस्तकसे लिया है। भाषा बिल्कुल ही बिगड़ी हुई है।

श्री हतवविद्याने पूर्ण गिरि,
जालन्धरि प्रभु महा सुख-जातहुँ ॥ध्रु०॥

१२ कुकुरिपा (सिद्ध ३४)—कपिल (वस्तु) वाले देशमें, एक ब्राह्मणकुलमें, इनका जन्म हुआ था। मीनपा(८)के गुरु चर्पटीपा इनके भी गुरु थे। इनकी शिष्या मणिभद्रा चौरासी सिद्धोंमेंसे एक (६५) है। पद्मवज्र भी इनके ही शिष्य थे। तन्-जूरमे इनके १६ ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमे निम्न लिखित हिन्दीके मालूम होते हैं—तत्त्व-सुख-भावनानुसारियोगभावनोपदेश (त० ४८।६५)। स्रवपरिच्छेदन (त० ४८।६६)।

कविताका नमूना

राग गवड़ा (२)

"दुलि दुहि पिटा धरण न जाइ,
रुखेर तेन्तलि कुम्भीरे खाअ॥
आङ्गन घरपण सुन भो विआती,
कानेट चौरि निल अधराती ॥ध्रु०॥
सुसुरा निद गेल बहुडी जागअ,
कानेट चोरे निल का गइ मागअ ॥ध्रु०॥
दिवसइ बहुड़ी काड़इ डरे भाअ,
राति भइले कामरु जाअ॥ध्रु०॥
अइसन चर्या कुक्करी-पाएँ गाइड़,
कोड़ि मज्झे एकुड़ि अहिँ सनाइड़ ॥ध्रु०॥

राग पटमञ्जरी (२०)

"हाँउ निवासी खमण भतारे,
मोहोर विगोआ कहण न जाइ॥ध्रु०॥
फेटलिउ गो माए अन्त उड़ि चाहि,
जा एथु बाहाम सो एथु नाहि॥ध्रु०॥

पहिल विआण मोर वासन पूड़,
नाड़ि विआरन्ते सेव वापूड़ा ॥ध्रु०॥
जाण जौबण मोर भइलेसि पूरा,
मूल नखलि बाप संघारा ॥ध्रु०॥
भणथि कुक्कुरीपाए भव थिरा,
जो एथु बुझएँ सो एथु वीरा ॥ध्रु०॥"
"हले सहि विअ सिअ कमल पबाहिउ वज्जें।
अलललल हो महासुहेण आरोहिउ नृत्ये।
रविकिरणेण पफुल्लिअ कमलु महासुहेण।
(अल) आरोहिउ नृत्ये ॥"[1]

१३ गुण्डरीपाद (सिद्ध ५५)—डिसुनगर देशमे कर्मकारोके कुलमे पैदा हुए थे। पीछे सिद्ध लीलापा (२) के शिष्य हो गये। इनके शिष्य धर्मपादके शिष्य सिद्ध हालिपाद (५०) थे। तन्-जूरमे इनका कोई ग्रन्थ नही मिलता। चर्यागीतोमे इनकी यह गीति मिलती है—

राग अरु (४)

"तिअड्डा चापी जोइनि दे अङ्कवाली,
कमलकुलिशघाण्ट करहुँ विआली ॥ध्रु०॥
जोइनि तँइ विनु खनहिँ न जीवमि,
तो मुह चुम्बी कमल-रस पीवमि ॥ध्रु०॥
खेँपहु जोइनि लेप न जाय,
मणिकुले वहिआ ओड़िआणे समाअ ॥ध्रु०॥
सासु घरेँ घालि कोञ्चा ताल,
चान्द-सुजवेणि पखा फाल ॥ध्रु०॥

---

[1] साधनमाला, (गायकवाड़-ओरियंटल सीरीज, बड़ोदा) पृष्ठ ४६६, ४६७।

भणइ गुडरी अह्मे कुन्दुरे बीरा,
नरअ नारी मझें उभिल चीरा।।ध्रु०।।"

१४ मीनपा (सिद्ध ८)—कामरूप (आसाम) देशमें एक मछवेके कुलमे इनका जन्म हुआ था। इन्हीके पुत्र मत्स्येन्द्र थे, जिनके शिष्य गोरखनाथ हुए। पहले लौहित्य (ब्रह्मपुत्र)-नदीमे मछली मारते और ध्यानमार्गपर चलते थे। पीछे चर्पटीपाद (५९)के शिष्य हो गये। तन्-जूरमे इनका एक ग्रन्थ "बाह्यान्तरबोधिचित्तबन्धोपदेश") (त० ४८।५०) मिलता है, जो कि, पुरानी आसामी या मगहीमे था। चर्यागीति (पृष्ठ ३८)की टीकामे परदर्शन कहकर इनका एक पद उद्धृत किया गया है—

"कहन्ति गुरु परमार्थेर बाट,
कर्मकुरङ्ग समाधिक पाट ।
कमल विकसिल कहिह ण जमरा,
कमलमधु पिविबि धोके न भमरा।।"

१५ कण्हपा (सिद्ध १७)—कर्णाटक-देशमे[1] ब्राह्मणकुलमे इनका जन्म हुआ था, इसीलिये इनको कर्णपा भी कहते हैं। शरीरका रग काला होनेसे कृष्णपा या कण्हपा कहते हैं। महाराज देवपाल (८०९–८४९ ई०) के समयमे यह एक पण्डित भिक्षु थे और कितने ही दिनो तक सोमपुरी-विहार (पहाडपुर, जि० राजशाही)मे रहते थे। पीछे यह सिद्ध जाल-न्धर-पादके शिष्य हो गये। चौरासी सिद्धोंमे कवित्व और विद्या, दोनोकी

---

[1] स-स्क्य-ब्कं-बुम्, ज, २६५ क—"युल्-ग्र्य-गर् कर्ण-र स्क्येस्-पस्-न्स्, कर्ण-ब्शेस् क्यड ब्य।... र्ङ्सान्-रिङ-पस् (लम्बे कानवाले होनेसे) क्यड कर्ण-प-स़ेर्। ख-दोग् नग्-पस् कृष्ण-प शेस्-ब्य व।" डाक्टर भट्टाचार्यने लिखा है—"*Written in his own vernacular which was probably Uria, and showed great affinity towards the old Bengali language.*"

दृष्टिसे यह सबसे बडे सिद्धोमेंसे है। इनके अपने सातसे अधिक शिष्य, चौरासी सिद्धोमें, गिने गये हैं, जिनमे कनखला (६७) और मेखला (३६), दो योगिनियाँ भी हैं। धर्मपा (३६) कन्तलिपा (६९), महीपा (३७), उधलिपा (७१), भदेपा (३२) शिष्य और जवरिपा (६४) या अज-पालिपा प्रशिष्य थे। उस समय सिद्धोका गढ बिहार-प्रदेश था। इन्होने अपनी भाषा-कविताएँ तत्कालीन मगहीमे की हैं। तन्-जूरमे दर्शनपर छः और तन्त्रपर इनके ७४ ग्रन्थ मिलते हैं। पीछे भी एक कृष्णपाद हुए थे; इसलिये इस सूचीमे कुछ उनके ग्रन्थोका भी होना सम्भव है। दर्शन-ग्रन्थोमें इन्होने शान्तिदेवके "बोधिचर्यावतार"पर "बोधिचर्यावतार-दुरवबोधपद-निर्णय"नामक टीका लिखी है। इनके निम्न कविता-ग्रन्थ मगहीमे थे, जिनके भोटिया-अनुवाद तन्-जूरमे मिलते हैं—

१ कान्हपाद-गीतिका (त० ४८।१७)।
२ महाढुण्ढन-मूल (त० ८५ ।३०)।
३ वसन्ततिलक (त० १२।३०)।
४ असम्बन्ध-दृष्टि (त० ४८।८७)।
५ वज्रगीति (त० ४७।३३)।
६ दोहाकोष [१] (त० ४७। ४४)।

"बौद्धगान ओ दोहा"मे इनका दोहाकोष संस्कृतटीका-सहित छपा है, जिसमे बत्तीस दोहे हैं। इनके दोहोका नमूना देखिये—

"आगम-बेअ-पुराणे, पण्डित्त मान वहंति।
पक्क सिरिफल अलिअ जिम, बाहेरित भ्रमयन्ति।।२।।"

"अह ण गमइ उह ण जाइ,
बेणि-रहिअ तसु निच्चल पाइ।

---

[१]तन्-जूर (त० २०।१०); स-स्क्यं ब्कं-बुम्, प ३६८ ख; फ १२८ क।

भणइ कह्णण मन कहबि न फुट्टइ,
निच्चल पवन धरिणि घर बत्तइ" ॥१३॥
"एक्क ण किज्जइ मन्त ण तन्त,
णिअ घरणि लइ केलि करन्त।
णिअधर घरिणी जाव ण मज्जइ,
ताव कि पंचवर्ण विहरिज्जइ ॥२८॥"
"जिमि लोण विलिज्जई पाणिएहि,
तिम घरणी लइ चित्त।
सम-रस जइ तक्खणे,
जइ पुणु ते सम णित्त ॥३२॥"

इनकी वज्रगीतिकाका नमूना देखिये—

"कोल्लअ[1] रे ठिअ बोल्ल, मुम्मुणि रे कक्कोल ॥
घन किपीटह बज्जइ, करुणे किअइ णरोला।

---

[1] आजकल नेपालमें व्यवहृत चर्यागीत (च-चो)का पाठ इस प्रकार है—

"कोलायि रे थिय बोला, मुमुनिरे कंकोला।
घनकिया थीं होयि वज्रायि, करुणेकियायि न लोरा ॥ध्रु०॥
मलयजकुंदुरु वजायिले डिंडिम तहि ना वाजयि।
तहि भरु खाज गाध्या मय ना पीवयियायि ॥
हले कालिंजर पंनयायि दुंदुरु वजरयायि।
चवु सम कस्तुरि सिल्हा, कर्पुर लावनयायि ॥
गल या जइ धनसोलिजरे, तहि भरु खाज न यायी।
प्रेषु ह क्षेत्र करते सोधा सुद्ध न मूनयि।
निलसुह अंग चवावयि, तरि जस रा पनयायी" ॥१६॥

तहि पल खज्जइ, गाढ़ें मअ णा पिज्जइ।
हले कलिञ्जर पणिअइ, दुन्दुर वज्जिअइ।
चउसम कत्थुरि सिल्हा, कप्पुर लाइअइ।
मालइ धाण-सालि अइ, तहि भलु खाइअइ।
पेंखण खेट करन्त, शुद्धाशुद्ध ण मणिअइ।
निरंशु अंग चडावि अइ, तहि जस राव पणिअइ।"
मलअजे कुन्दुरु वापइ, डिण्डिम तहिन्न वञ्जि अइ॥

कण्हपाके कुछ गीत देखिये

राग पट मञ्जरी (११)

"नाड़ि शक्ति दिट धरिअ खट्टे,
अनहा डमरु वाजए वीरनादे॥
काह्नु कापाली योगी पइठ अचारे,,
देह नअरी विहरए एकारें॥ध्रु०॥
आलि कालि घण्टा नेउर चरणे,
रवि-शशी-कुण्डल किउ आभरणे॥ध्रु०॥
राग-देश-मोह लाइअ छार,
परम मोख लवए मुत्तिहार ॥ध्रु०॥
मारिअ शासु नणन्द घरे शाली,
माअ मारिआ काह्नु भइअ कबाली॥ध्रु०॥

राग पटमञ्जरी (३६)

"सुण वाह तथता पहारी,
मोहभण्डार लुइ सअला अहारी॥ध्रु०॥
घुमइ ण चेवइ सपरविभागा,
सहज निदालु काह्निला लाङ्गा॥ध्रु०॥

चेअण ण वेअन भर निद गेला,
सअल सुफल करि सुहे सुतेला ॥ध्रु०॥
स्वपणे मइ देखिल तिभुवण सुण,
घोरिअ अवणा गमण विहुल ॥ध्रु०॥
शाथि करिब जालन्धरि पात्र,
पाखि ण राहअ मोरि पाण्डिआ चादे ॥ध्रु०॥"

१६ **तन्तिपा (सिद्ध १३)**—मालव-देशके अवन्तिनगर (उज्जैन) में कोरी (तन्तुवाय, तँनवा) के घर इनका जन्म हुआ था। घरमे रहते ही इनका मन सिद्धचर्याकी ओर लगा। जालन्धरपादका दर्शन कर उनके शिष्य हो गये। पीछे कण्हपासे भी उपदेश लिया। तन्-जूरमे इनका एक ग्रन्थ "चतुर्योगभावना" (त० ८८।५४) मिलता है, जो पुरानी मालवी या मगहीमे लिखा गया था। इनकी कोई कविता मूल भाषामे नही मिलती; किन्तु यदि "चर्यागीति"के "ढेण्ढनपाद"को तन्तिपाद मान लिया जाय, क्योकि इस नामका कोई सिद्धाचार्य नही है, तो यह गीत उनका हो सकता है।

राग पटमञ्जरी (३३)

"टालत मोर घर नाहि पड़वेषी।
हाड़ीत भात नाँहि निति आवेशी ॥ध्रु०॥
वेङ्गसंसार बड्हिल जाअ,
दुहिल दुधु कि वेण्टे यामाय ॥
बलद बिआएल गविआ बाँझे।
पिटा दुहिए ए तिना साँझे ॥
जो सो बुधी सो धनि बुधी।
जो षो चोर सोइ साधी ॥
निते निते षिआला षिहे षम जुझअ,
ढेण्ढण पाएर गीत बिरले बूझ अ ॥"

१७ मही (महिल)पा(सिद्ध ३७)—मगध-देशमे शूद्रकुलमें, इनका जन्म हुआ था। गृहस्थ होते भी इन्हे सत्सगकी बड़ी चाह थी। पीछे कण्हपाके शिष्य हो गये। तन्-जूरमे इनका एक ग्रन्थ "वायुतत्त्वदोहा–गीतिका" (त० ८४।१०) मिलता है, जो पुरानी मगहीमें था। "चर्यागीति" मे महीधरपादका एक गीत मिलता है, (यह महीपा और महीधरपाद एक ही मालूम होते हैं)।

राग भैरवी (१६)

"तिनि एँ पाटें लागेलि रे अणह कसण घण गाजइ,
ता सुनि मार भयङ्कर रे सअ मण्डल सएल भाजइ ॥ध्रु०॥
मातेल चीअ-गअन्दा धावइ।
निरन्तर गअणन्त तुसें घोलइ ॥ध्रु०॥
पाप पुण्य वेणि तिड़िअ सिकल मोड़िअ खम्भाठाणा,
गअण टाकलि लागिरे चित्ता पइठ णिवाना ॥ध्रु०॥
महारस पाने मातेल रे तिहुअन सएल उएखी,
पञ्च विषय रे नायकरे विपख को बी न देखी ॥ध्रु०॥
खररविकिरणसन्तापेरे गअणाङ्गण गइ पइठा,
भणन्ति महित्ता मइ एथु बुड़न्ते किम्पि न दिठा ॥ध्रु०॥"

१८ भादेपा (सिद्ध ३२)—श्रावस्ती[१] मे चित्रकार (ल्ह-ब्रिस्=देव-लेखक)-कुलमे इनका जन्म हुआ था। पीछे सिद्ध कण्हपाके शिष्य हुए। तन्-जूरमे इनका कोई ग्रन्थ नही मिलता; किन्तु "चर्यागीति"मे इनकी यह गीति मिलती है।

राग मल्लारी (३५)

"एतकाल हाँउ अच्छिलें स्वमोहें।
एवें मइ बुझिल सद्गुरुबोहें ॥ध्रु०॥

---

[१] सहेट-महेट (लि० गोंडा, युक्तप्रान्त)।

एवें चिअराअ मकुं ण ठा ।
गण समुदे टलिआ पइठा ।।ध्रु०।।
पेखमि दहदिह सर्व्वइ शून।
चिअ विहुन्ने पाप न पुण्ण ।।ध्रु०।।
वाजुले दिल मोहकखु भणिआ,
मइ अहारिल गअणत पणियाँ ।।ध्रु०।।
भादे भणइ अभागे लइआ।
चिअराअ मइ अहार कएला" ।।ध्रु०।।

१९ कङ्कणपाद (सिद्ध ८९)—विष्णुनगर (?विहार) राजवंशमे इनका जन्म हुआ था। कबलपाके परिवारके सिद्ध थे। तन्-जूरमे इनका एक ग्रन्थ "चर्यादोहाकोषगीतिका" (त० ४८।७) मिलता है। "चर्यागीति" मे इनकी यह गीति मिलती है।

राग मल्लारी (४४)

"सुने सुन मिलिआ जबें,
सअलधाम उइआ तबे ।।ध्रु०।।
आच्छु हुँ चउखण संबोही,
माझ निरोह अणुअर बोही ।।ध्रु०।।
विदु-णाद णहिँ ए पइठा,
अण चाहन्ते आण विणठा ।।ध्रु०।।
जथाँ आइलेँसि तथा जान,
मास, थाकी सअल विहाण।।ध्रु०।।
भणई कङ्कण कलएल सादेँ,
सर्व्व विच्छरिल तधतानादेँ ।।ध्रु०।।

२० जयानन्त(जयनन्दी)पाद (सिद्ध ५८)—भगल(भागलपुर) देशके राजाके मन्त्री थे। जन्म ब्राह्मण-वंशमें हुआ था। तन्-जूरमे जया-

नन्तके "तर्कमुद्गर-कारिका" (ल० २४।६) और "मध्यमकावतारटीका" (ल० २५), दो ग्रन्थ मिलते हैं, किन्तु यह नही कहा जा सकता कि, यह कौन जयानन्त थे। इनके-गुरु-शिष्यके सम्बन्धमे भी नही मालूम हुआ है। "चर्यागीति"मे इनकी यह गीति मिलती है—

राग शवरी (४६)

"पेखु सुअणे अदश जइसा,
अन्तराले मोह तइसा ॥ध्रु०॥
मोह-विमुक्का जइ माणा,
तबें तूटइ अवणा गमणा॥ध्रु०॥
नौ दाटइ नौ तिमइ न च्छिजइ,
पेख मोअ मोहे बलि बलि बाझइ॥ध्रु०॥
छाअ माआ काअ समाणा,
वेणि पाखें सोइ विणा॥ध्रु०॥
चिअ तथतास्वभावे षोहिअ,
भणइ जअनन्दि फुडअण ण होइ॥ध्रु०॥"

२१ तिलोपा (सिद्ध २२)—भगुनगर(? विहार)मे इनका जन्म हुआ था। "स-स्क्य-ब्क-बुम्" (ज, २४५ क)मे इनको गजवशिक कहा गया है। भिक्षु-नाम प्रज्ञाभद्र था, किन्तु सिद्धचर्यामे यह तिल कूटा करते थे, इसी लिये नाम तिलोपा पड गया। गुह्यपाके शिष्य और कण्हपाके प्रशिष्य विजयपाद (या अन्तरपाद) इनके गुरु थे। विक्रमशिलाके महापण्डित और सिद्धाचार्य नारोपा इनके प्रमुख शिष्य थे। तन्-जूरमें इनके ग्यारह ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमे निम्न मगही-हिन्दीमे थे—१ अन्तर्बाह्यविषय-निवृत्तिभावनाक्रम (त० ४८।८८)। २ करुणाभावनाधिष्ठान (त० ४८।५९) ३ दोहाकोष (त० ४७।२२)। ४ महामुद्रोपदेश (त० ४७।२६)। "चर्यागीति" (पृष्ठ ६२)की टीका मे इनका निम्नलिखित दोहा उद्धृत हुआ है, जो सम्भवत इनके दोहाकोषका है—

"ससंवेअन तन्तफल, तिलोपाए भणन्ति।
जो मण गोअर गोइया, सो परमथे न होन्ति॥"

२२ नाड(नारो)पा (सिद्ध २०)—इनके पिता कश्मीरी ब्राह्मण थे और किसी कामसे मगधमे प्रवास करते थे। वही नाडपादका जन्म हुआ। भिक्षु होकर नालन्दा मे पढने लगे। असाधारण मेधावी होनेसे, सभी विद्याओमे पराङ्गत हो, महाविद्वान् हो गये। पीछे विक्रमशिला-विहारमे पूर्व-द्वारके महापण्डित बनाये गये। इतना होनेपर भी यह पण्डिताईसे सन्तुष्ट न थे। अन्तमें सिद्ध तिलोपाके विष्णुनगरमे आनेकी खबर पाकर वहाँ गये और उनसे दीक्षा ली। शान्तिपाद (सि० १२), दीपङ्कर श्रीज्ञान आदिके यह गुरु थे। भोटका मर-वा[1]लोचवा भी इन्हीका शिष्य था। नारोपाका देहान्त १०३९ ई० मे हुआ था। तन्-जूरमें इनके तेईस ग्रन्थ मिलते है, जिनमे निम्न मगही हिन्दीमे थे—१ नाडपण्डितगीतिका (त० ४८।२६)। २ वज्रगीति (त० ४७।३०, ३१)। नाडपादके नामकी कोई मूल गीति नही मिलती, तो भी "चर्यागीति"मे ताडकपादकी एक गीति मिलती है। यह ताडकपाद नाडकपाद ही मालूम होते है। नामका सादृश्य भी है और ताडक नामका कोई सिद्धाचार्य भी नहीं देखा जाता। गीतिका नमूना देखिये।

राग कामोद (३७)

"अपणे नाँहि सो काहेरि शङ्का,
ता महामुदेरी टूटि गेलि कंथा॥ध्रु०॥
अनुभव सहज मा भोलरे जोई,
चोकोट्टि विमुका जइसो तइसो होइ॥ध्रु०॥

---

[1] तिब्बतके सर्वोत्तम कवि और सिद्ध जे-चुन् मि-ला रे-पा (दीक्षा १०७६ ई०; सिद्धिप्राप्ति १०९२ ई०; मृत्यु ११२२;)के यह गुरु थे, जिनको आज भी तिब्बतका बच्चा-बच्चा जानता और पूजता है।

जइसने अछिले स तइछन अच्छ।
सहज पिथक जोइ भान्ति माहो वास॥ध्रु०॥
वाण्डकुरु सन्तारे जाणी।
वाक्पथातीत कॉहि बखाणी॥ध्रु०॥
भणइ ताड़क एथु नाहिँ अवकाश।
जो बुझइ ता गलेँ गलपास॥ध्रु०॥"

२३ शान्तिपा (रत्नाकरशान्ति) (सिद्ध १२)—मगधके एक शहर मे, ब्राह्मणकुलमे, इनका जन्म हुआ था। पीछे उडन्तपुरी (बिहार-शरीफ) के विहारमे सर्वास्तिवाद-सम्प्रदायमे प्रव्रजित हुए। श्रावक (हीनयान) त्रिपिटक तथा अन्यान्य ग्रन्थोको समाप्त कर विक्रम-शिलामे महापण्डित जितारिके पास चले गये। वही सिद्ध नाडपादके भी सत्सगमे आये। विद्या समाप्त कर कुछ दिन सोमपुरी-विहारके स्थविर (महन्त) रहे। फिर मालवा चले गये और उधर ही सात वर्षोतक योगाभ्यासमे रहे। जिस वक्त यह लौटकर भगल देशमे , विक्रम-शिला पहुँचे, उस समय सिहलके राजदूतने अपने राजाका आग्रह-पूर्वक निमन्त्रण इनके सामने रखा। स्वीकृति देकर यह सिहलकी ओर चल पडे। रामेश्वरके पास इन्हे एक साथी मिला, जो पीछे सिद्ध होकर कुठालिपा (सि० ४४) के नामसे प्रसिद्ध हुआ। सिहलमें जाकर इन्होने ६ वर्ष धर्म-प्रचार किया। लौटकर घूमते-घामते जब विक्रम-शिला पहुँचे, तब महाराज महीपाल (९७४–१०२६) की प्रार्थना स्वीकार कर पूर्वद्वारके पण्डित बने। सिद्धोमे ऐसा जबरदस्त पण्डित कोई नही हुआ। इन्हे "कलिकाल-सर्वज्ञ" भी कहा गया है। १०० वर्षसे अधिककी आयुमें इन्होने शरीर छोड़ा। तन्-जूरमे दर्शन-विषयपर इनके नौसे अधिक ग्रन्थ है। इन्होने छन्द.शास्त्र पर "छन्दोरत्नाकर" ग्रन्थ लिखा है। तन्त्रपर इनके २३ ग्रन्थ मिलते है। जिनमे सुख-दुःखद्वयपरित्यागदृष्टि (४८।३७) मगहीमे था। "चर्यागीति"मे इनके निम्न दो गीत मिलते है

राग रामक्री (१५)

"सअ सम्बेअण सरुअ विआरें,
ते अलक्खलक्खण न जाइ।
जे जे उजूवाटे गेला अनावाटा भइला सोई॥ध्रु०॥
कुलें कुल मा होइरे मूढ़ा उजूवाटे संसारा,
वाल भिण एकु वाकु ण भूलह राजपथ कण्टारा॥ध्रु०॥
माआमोहासमुदारे अन्त न बुझसि थाहा,
अगे नाव न भेला दीसअ भन्ति न पुच्छसि नाहा॥ध्रु०॥
सुनापान्तर उह न दिसइ भान्ति न वाससि जान्ते।
एषा अटमहासिद्धि सिज्झए उजूवाट जाअन्ते॥ध्रु०॥
बाम दाहिण दो वाटा च्छाडी,
शान्ति बुलथेउ संकेलिउ।
घाटनगुमाखड़तड़ि नो होइ,
आखि बुजिअ बाट जाइउ॥ध्रु०॥"

राग शीवरी (२६)

"तुला धुणि धुणि आँसुरे आँसु,
आँसु धुणि धुणि णिरवर सेसु॥ध्रु०॥
तउषे हेरुअ ण पाविअइ,
सान्ति भणइ किण सभावि अइ॥ध्रु०॥
तुला धुणि धुणि मुने अहारिउ,
पुन लइआँ अपना चटारिउ॥ध्रु०॥
बहल बट दुइ मार न दिशअ,
शान्ति भणइ वालाग न पइसअ॥ध्रु०॥
काज न कारण जएहु जअति,
सँएँ सँवेअण बोलथि सान्ति॥ध्रु०॥"

अन्य सिद्धोकी कुछ कविताएँ भी दी जा सकती थी, किन्तु विस्तार-भयसे उन्हे यहाँ नही दिया जा रहा है। भोटिया-ग्रन्थ-सग्रह तन्-जूरमे और भी बहुतसे भाषाकाव्यग्रन्थ अनुवादित है, जिनमे कुछको छोडकर सभी मगही हिन्दीके है। इनमे कुछ ग्रन्थोके अब भी दो देशोसे मिलनेकी आशा है। एक तो नेपालसे, जहॉसे कि, महामहोपाध्याय स्व० प० हरप्रसाद शास्त्रीको बौद्ध-गान और दोहे मिले थे, और, दूसरे भोट (तिब्बत)से। सिद्धोकी कितनी ही कविताएँ भोटके स-स्क्य-मठमे अनुवादित हुई थी। यह मठ अबतक सुरक्षित है और आज भी इसके पुस्तकागारमे सैकड़ो तालपत्रकी पुस्तके राजकीय मुहरके अन्दर बन्द है। हो सकता है कि, किसी समय इस कोषके खुलनेपर कुछ ग्रन्थ मिल सके। भोटमे और भी जहॉ-तहॉ कभी-कभी कोई-कोई पुराने भारतीय ग्रन्थ मिल जाते है। लेखक जिस समय तिब्बतमे था, उस समय टशील्हुन्पोमे एक दूरके लामाने भारतीय लामा जान कर एक ताल-पोथी प्रदान की थी। पुस्तकका नाम "वज्रडाकतन्त्र" है और इसका अनुवाद भोटिया-कजूरमे बैशाली (बसाढ, जि० मुजफ्फरपुर)के कायस्थ पण्डित गयाधरने, ग्यारहवी शताब्दीके मध्यमे, किया था। कई कारणोसे मालूम होता है कि, यह अनुवादकी मूल प्रति है।

यहॉ तन्-जूरमे अनुवादित कुछ भाषा-काव्यो और उनके कर्ताओकी सूची दी जाती है, जिससे हिन्दी-भाषा-भाषी समझेगे कि, सिद्धोने हिन्दीकी कितनी सेवा की है—

	कविनाम	ग्रन्थनाम	तन्-जूरमें[1]
२४	अचिन्त	तीर्थिक चण्डालिका	त० ४८।६७
२५	अज्ञात कवि	गीतिका	त० ४८।२०,२३,२४

---

[1] **यह पता** Cordier **के सूचीपत्रकी दूसरी-तीसरी जिल्दोंके तन्त्र-टीका-विभागका है।**

कविनाम	ग्रन्थनाम	तन्-जूरमें
	डाकिनीतनुगीति	त० ४८।१११
	योगिनीप्रसरगीतिका	त० ४८।३२
	वज्रगीति	त० ४७।३२
	,,	त० ८५-२०
	,, मिद्धयोगि-	त० ४८।१०९
२६ [1]अद्वयवज्र (मैत्रीपा)	अबोध-बोधक	त० ४७।३९
	गुरुमैत्रीगीतिका	त० ४८।१३
	चतुर्मुद्रोपदेश	त० ४७।३७
	चित्तमात्रदृष्टि	त० ४८।४५
	दोहानिधितत्त्वोपदेश	त० ४६।३३
	वज्रगीतिका। चतुर्-	त० ४८।१२
२७ अयो (अजो) गिपा (सिद्ध २६)	[2]चित्तसम्प्रदायव्यवस्थान	त० ४८।६१
	वायुस्थान-रोग-परीक्षण	त० ४८।८१
	विषनिर्वहण-भावनाक्रम	त० ४८।९५
२८ इन्द्रभूतिपा (सि० ८२)	तत्त्वाष्टक-दृष्टि	त० ४८।४२

[1] इनका नाम अवधूतीपा भी है; यह दीपकर श्रीज्ञान (जन्म ई० ९८२-१०५४ मृ०) के गुरु थे।

[2] तिब्बती ग्रन्थोंमे अनुवाद-ग्रन्थकी मूल भाषाके लिये सिर्फ भारतीय भाषा लिखा रहता है, संस्कृत और भाषाका फर्क नहीं दिया जाता। दोहा, गीति, दृष्टिशब्दोंवाले नाम तो भाषा-ग्रन्थोंके है; किन्तु यहाँ उन ग्रन्थोंको भी भाषामें गिना गया है, जो कि, भाषा-ग्रन्थोके वेष्टन (४८, ४७)में है या सिद्धोंसे सम्बन्ध रखते है।

कविनाम	ग्रन्थनाम	तन्-जूरमें
२९ कङ्कालमेखला (सि० ६६।६७)	सनातना-वर्तत्रयमुखागम	त० ४८।८९
३० कङ्कालिपाद (सि० ७)	सहजानन्तस्वभाव	त० ४८।९०
३१ कमरिपा (सि० ४५)	सोमसूर्यबन्धनोपाय	त० ४८।७१
३२ किलपाद (सि० ७३)	दोहाचर्यागीतिकादृष्टि	त० ४८।३५
३३ कुद्दालिपाद (सि० ४४)	अचिन्त्यक्रमोपदेश	त० ४६।१३
	चित्ततत्त्वोपदेश	त० ४८।८२
	सर्वदेवतानिष्पन्न-क्रममार्ग	त० ४८।७०
३४ कुरुकुल्ला (?)	महामुद्राभिगीति	त० ४८।९९
३५ केरलिपा	तत्त्वसिद्धि त० ४७।३; ८५।१५	
३६ कोकलिपा (सि० ८०)	आयु परीक्षा	त० ४८।९४
३७ गयाधर (कायस्थ पण्डित)	ज्ञानोदयोपदेश	त० १३।६५
३८ गोरक्षपा (सि० ९)	वायुतत्त्वभावनोपदेश	त० ४८।५१
३९ घटापा (सि० ५२)	आलिकालिमन्त्रज्ञान	त० ४८।७८
४० चमरिपा (सि० १४)	प्रज्ञोपायविनिश्चय-समुदय	त० ४८।५५
४१ चम्पकपा (सि० ६०)	आत्मपरिज्ञानदृष्ट्-युपदेश	त० ४८।८६
४२ चर्पटीपा (सि० ५९)	चतुर्भूतभवाभि-वासनक्रम	त० ४८।८५
४३ चेलुकपाद (सि० ५४)	षडङ्गयोगोपदेश	त० ४।२१
४४ चोरंगीपा (सि० १०)	वायुतत्त्वभाव-नोपदेश	त० ४८।५२

कविनाम	ग्रन्थनाम	तन्-जूरमें
४५ छत्रपा (सि० २३)	शून्यताकरुणादृष्टि	त० ४८।४०
४६ जगन्मित्रानन्द (मित्रयोगी)[१]	पदरत्नमाला	त० ८४।९
	बन्धविमुक्त्युपदेश	त० ४८।१२६
	योगिस्वचित्तग्रन्थि विमोचकोपदेश	त० ४८।१२८
४७ थगनपा (सि० १९)	दोहाकोपतत्त्व-गीतिका	त० ४८।६
४८ दीपङ्कर श्रीज्ञान[२]	चर्यागिति	त० १३।४४
	धर्मगीतिका	त० ४८।३४
	धर्मधातुदर्शनगीति	त० ४७।४७
	वज्रासनवज्रगीति	त० १३।४२
४९ दृष्टिज्ञान (?)	गीतिका	त० ४८।१९
	वज्रगीतिका	त० ४८।१८
५० दोखधिपा (सि० २५)	चतुरक्षरोपदेश	त० ८२।१७
	महायानावतार	त० ४८।६०
५१ धर्मपा (सि० ३६)	कान्हिभावनामार्ग	त० ४८।७९
	सुगतदृष्टिगीतिका	त० ४८।९
	हुकारचित्तबिन्दु-भावनाक्रम	त० ४८।७४

---

[१] गहड़वार महाराज जयचन्द्रके गुरु थे। देखिये अन्यत्र "मन्त्रयान, वज्रयान और चौरासी सिद्ध"।

[२] वैशाली (बसाढ़, जि० मुजफ्फरपुर)के रहनेवाले तथा अवधूति-पाके शिष्य थे। दीपङ्करके कालमें यह भी भोट गये और वहाँ बहुतसे ग्रन्थोंका भोटिया-भाषामें अनुवाद कर कई वर्षों बाद तीन सौ तोला सोनेकी बिदाईके साथ भारत लौटे थे!

	कविनाम	ग्रन्थनाम	तन्-जूरमें
५२	घहुलि(=दउड़ि)पा [सि० ४०]	शोकदृष्टि	त० ४८।४४
५३	धेतन	चित्तरत्नदृष्टि।	त० ४८।४१
५४	धोकरिपा (सि० ४९)	प्रकृति-सिद्धि	त० ४८।७५
५५	नलिनपाद (सि० ४०)	धातुवाद	त० ४८।६८
५६	नागबोधि (सि० ७६)	आदियोगभावना	त० ४८।९१
५७	नागार्जुन (सि० १६)	नागार्जुनगीतिका	त० ४८।३३
		स्वसिद्ध्युपदेश	त० ४८।५६
५८	निर्गुणपा (सि० ५७)	शरीरनाडिका-बिन्दुसमता	त० ४८।४
५९	निष्कलकवज्र	बन्धविमुक्तिशास्त्र[1]	त० ४८।१२३
६०	नीलकण्ठ	अद्वयनाडिकाभावनाक्रम	त० ४८।९६
६१	पङ्कज (सि० ५१)	अनुत्तरसर्वशुद्धिक्रम	त० ४८।७७
		स्थानमार्गफलमहामुद्राभावना	त० ४८।६९
६२	पनहपा (सि० ७९)	चर्यादृष्टअनुत्पन्नतत्त्वभावना	त० ४८।९६
६३	परमस्वामी (नृसिंह)[2]	दोहाचित्तगुह्य	त० ४८।७३
		महामुद्रारत्नाभिगीत्युपदेश	त० ४८।१०५
		वज्रडाकिनीगीति	त० ४८।१०
		सकलसिद्धवज्रगीति	त० ४८।११३
६४	पुतलीपा (सि० ७८)	बोधिचित्तवायुचरणभावनोपाय	त० ४८।९२

---

[1] भारतीय ग्रन्थोंका भोटिया-अनुवाद पण्डित और लोचवा (= भोटिया दुभाषिया) मिलकर किया करते थे। इस ग्रन्थके अनुवादमें पण्डित जगन्मित्रानन्द थे।

[2] यह भारतीय सिद्ध पण्डित थे। १०९१ ई० में भोट, ११०० ई० मे चीन, १११२ ई० में अन्तिम बार भोटमें गये। भोटियामे इन्हे फा-दम्-पा (=सत्पिता) भी कहते है। इनका देहान्त १११७ ई० में हुआ।

	कविनाम	ग्रन्थनाम	तन्-जूरमें
६५	महासुखतावज्र (शान्तिगुप्त)	महासुखतागीतिका[1]	त० ४८।३१
		योगगीता	त० ८६।८९
६६	मेकोपा (सि० ४३)	चित्तचैतन्यशमनोपाय	त० ४८।६९
६७	मेदिनीपा (सि० ५०)	सहजाम्नाय	त० ४८।७६
६८	राहुलभद्र (सि० ४७)	अचिन्त्यपरिभावना	त० ४८।७३
६९	ललित (वज्र)	महामुद्रारत्नगीति	त० ४८।११२
७०	लीलावज्र (सि० २)	विकल्पपरिहारगीति	त० ४८।३
७१	लुचिकपा (सि० ५६)	चण्डालिकाबिन्दुप्रस्फुरण	त० ४८।८३
७२	वज्रपाणि[2]	वज्रपद	त० ४६।४१
७३	वैरोचनवज्र	वीरवैरोचनगीतिका	त० ४८।२५
७४	शाक्यश्रीभद्र[3]	चित्तरत्न-विशोधन-मार्गफल	त० ४८।१२५

[1] इसका अनुवाद गुजरातके पण्डित पूर्णवज्र और लामा तारानाथने मिलकर किया। ग्रन्थकर्ता शान्तिगुप्त हुमायूँ और अकबरके समकालीन थे। इनका जन्म दक्षिण-देशके जलमण्डल (?) देशमें हुआ था।—"रत्नाकरजोपमकथा"।

[2] दीपङ्कर श्रीज्ञानके पीछे (१०६५ ई० में) यह तिब्बत गये और वहाँ बहुतसे ग्रन्थोंका अनुवाद किया।

[3] शाक्यश्रीभद्र (जन्म ११२६ ई०) विक्रम-शिलाके अन्तिम प्रधान स्थविर थे। महम्मद-बिन्-ब़ख्तियार द्वारा विक्रमशिलाके नष्ट किये जानेपर यह जगत्तला चले गये और वही तीन वर्ष रहे। वहाँसे विचरते नेपाल गये। वहींसे ख्रो-लोचवा (१२०३ ई० मे) इन्हें तिब्बत ले गया। स-स्क्य-बिहारका लामा इनका भिक्षु-शिष्य बना। बहुतसे ग्रन्थोंका अनुवाद एवं धर्म-प्रचार कर सन् १२१२ ई० में यह अपनी जन्मभूमि कश्मीर लौट गये। वहीं १२२४ ई० मे इनका देहान्त हुआ।

कविनाम	ग्रन्थनाम	तन्-जूरमें
	वज्रपदगर्भसग्रह	त० ५।३
	विशुद्धदर्शनचर्योपदेश	त०४८।१२४
७५ शृगालपाद (सि०२७ ?)	रत्नमाला	त० ४८।५८
७६ सर्वभक्ष (सि० ७५)	करुणाचर्याकपालदृष्टि	त० ४८।४६
७७ सवरभद्र	वज्रगीतावबाद	त० ४४।२१
७८ सहजयोगिनीचिन्ता	व्यक्तभावानुगततत्त्वसिद्धि	त० ४६।७
७९ सागर (सि० ७४)	आलिकालिमहायोगभावना	त० ४८।८०
८० समुद्र (सि० ८३)	सूक्ष्मयोग	त० ४८।९७
८१ मुखवज्र	मूलप्रकृतिस्थभावना	त० ४७।३६

---

(११)

बौद्ध नैयायिक

(१) मैथिल नैयायिक

न्याय-शास्त्र और वाद-विवादमे बहुत सम्बन्ध है। यदि बौद्ध, ब्राह्मण तथा दूसरे सम्प्रदायोका पूर्वकालमे आपसका वह विचार-संघर्ष और शास्त्रार्थ न होता रहता, तो भारतीय न्यायशास्त्रमे इतनी उन्नति न हुई होती। वाद या विचारोके शाब्दिक संघर्षकी प्रथाके आरम्भ होते ही वादी-प्रतिवादीके भाषण आदिके नियम बनने लगते है। भारत मे ऐसे शास्त्रोका उल्लेख हम सर्वप्रथम ब्राह्मण-ग्रन्थोके उपनिषद्-भागमें पाते हैं।

वेदका संहिताभाग मंत्र और ऋचाओंके रूपमे होनेसे, वहाँ भिन्न-भिन्न ऋषियोके विवादोका वैसा उल्लेख नही हो सकता, तोभी वशिष्ठ और विश्वामित्रका आरम्भिक विवाद ही इसका कारण हो सकता है, जो कि वशिष्ठके वंशज, विश्वामित्र और उनकी संतानके बनाए ऋग्वेद के भागको पढना निषिद्ध समझते थे और वही बात विश्वामित्रके वंशज वशिष्ठ-से सम्बन्ध रखने वाले मंत्र-भागके साथ करते थे। ये बतलाते है कि, मंत्र-काल और उसकी क्रीडा-भूमि सप्त-सिन्धु (पंजाब) मे भी किसी प्रकारके वाद हुआ करते होगे। उन वादोमे भी कुछ नियम बर्ते जाते होगे और उन्ही नियमोंको भारतीय न्याय या तर्क शास्त्रका बीज कह सकते है।

तब कितनी ही शताब्दियो तक आर्य लोगोमे यज्ञ और कर्मकाण्डोकी प्रधानता रही, युक्ति और तर्ककी श्रुतिके सामने उतनी चलती न थी। उस समय भी कुछ लोग स्वतन्त्र विचार रखते थे और उनका कर्मकाण्डियों-

के साथ विचार-संघर्ष होता था, इसी विचार-संघर्षका मुख्य फल हम उपनिषद्के रूपमें पाते हैं। उपनिषद्-कालमे तो नियमानुसार परिषदे थी, जहाँ बडे बडे विद्वान् विवाद करते थे। इन परिषदोके स्थापक राजा होते थे, और बादमें विजय पानेवालेको उनकी ओरसे उपहार भी मिलता था। विदेहो (तिर्हुत)की परिषद्मे इसी प्रकार याज्ञवल्क्यको हम विजयी होते हुए पाते हैं और जनक उन्हे हजार गौवे प्रदान करते हैं।

सप्तसिन्धुसे इस वादप्रथाको तिर्हुत तक पहुँचनेमे उसे पंचाल (अन्तर्वेद और रुहेलखंड)और फिर काशी देश(बनारस, जौनपुर, मिर्जापुर, आजमगढके जिले)से होकर आना पडा था। इस प्रकार प्राचीन ढँगकी तर्क-प्रणाली सबसे पीछे तिर्हुतमे पहुँचती है। (यद्यपि आज कल मिथिला को तिर्हुतका पर्यायवाची शब्द मानते है, जैसे कि काशीका बनारसको, किन्तु प्राचीन समयमे 'मिथिला' एक नगरी थी, जो विदेह देशकी राजधानी थी। उसी तरह काशी देशका नाम था, नगरका नही; नगर तो वाराणसी थी, जिसका ही बिगड़ा रूप बनारस है।)

यद्यपि तिर्हुतमे वादप्रथा वैदिक युगके अन्तमे (६०० ईसा पूर्वके आस-पास) पहुँची, किन्तु आगे कुछ परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हुई कि भारतीय न्यायशास्त्रके निर्माणमे तिर्हुतने प्रधान भाग लिया। वस्तुत, बौद्ध न्यायशास्त्रके जन्म एवं विकासकी भूमि यदि मगध है, तो ब्राह्मण-न्यायके बारेमें वही श्रेय तिर्हुतको प्राप्त है।

अक्षपाद, वात्स्यायन, और उद्योतकरकी जन्म-भूमि और कार्यभूमि तिर्हुत थी, यद्यपि इसका कोई इतना पुष्ट-प्रमाण नही मिलता। वेद तथा उसकी मान्यताओ पर प्रचण्ड प्रहार करनेमे मगध प्रधान केन्द्र था; साथ ही जब उपनिषद्के तत्त्वज्ञानकी अन्तिम निर्माणभूमि विदेहके होने पर भी ख्याल करते हैं; तो यह बात स्पष्ट सी जान पड़ने लगती है कि ब्राह्मण न्याय-शास्त्रकी जन्मभूमि गंगाके उत्तर तरफ तिर्हुत ही होना चाहिये।

"वादन्याय"की टीकामे आचार्य शान्तरक्षित (७४०–८४० ई०)ने अविद्धकर्ण, प्रीतिचद दो नैयायिकोके नाम उद्धृत किए है। जिनमे प्रथमने वात्स्यायनभाष्य पर टीका लिखी थी। ये दोनो ही ग्रथकार वाचस्पति मिश्र (८४१ ई०)मे पहलेके है किन्तु उद्योतकर भारद्वाजसे पहलेके नही जान पडते। इनकी जन्म-भूमि के बारेमे भी हम निश्चय-पूर्वक कुछ नही कह सकते, किन्तु प्रतिद्वदिता-केन्द्र नालदा होनेसे बहुत कुछ सम्भावना उनके तिर्हुतके ही होनेकी होर्ना है।

त्रिलोचन और बाचस्पति मिश्रके बाद तो ब्राह्मण-न्यायशास्त्र पर तिर्हुतका एकछत्र राज्य हो जाता है। वह उदयन ओर बर्द्धमान जैसे प्राचीन न्यायके आचार्यो को पैदा करना है, और गङ्गेश उपाध्यायके रूपमे तो उस नव्य-न्यायकी सृष्टि करता है, जो आगे चल कर इतना विद्वत्प्रिय हो जाता है कि प्राचीन न्याय शास्त्रकी पठन-पाठन-प्रणालीको ही एक तरहसे उठा देता है। यद्यपि नव्य-न्यायके विकासमे नवद्वीप (वगाल)का भी हाथ है, तोभी हम यह निस्सकोच कह सकते है कि वाचस्पति मिश्र (८४१ ई०)के बादमे मिथिला (देशके अर्थमे) न्याय-शास्त्र (प्राचीन और नव्य दोनो ही)का केन्द्र बन जाती है, और हर एक कालमे भारतके श्रेष्ठ नैयायिक बननेका सौभाग्य किसी मैथिल हीको मिलता है।

(२) बौद्ध नैयायिक

ब्राह्मण न्याय-शास्त्रके बारेमे इतने सक्षिप्त कथनके बाद हम अब अपने मुख्य विषय "बौद्ध-नैयायिक" पर आते है। बौद्ध धर्मके सस्थापक गौतम बुद्धका जन्म ईसापूर्व ५६३ सन्मे, और निर्वाण ४८३मे हुआ था। बुद्धके उपदेशोके संग्रहको 'त्रिपिटक' कहा जाता है। यह पाली भाषामे अब भी मिलते है। यह विशाल साहित्य अप्रत्यक्षरूपेण ईसा पूर्व पाँचवी छठी (कुछ स्थानों पर तीसरी तक) शताब्दीके उत्तर भारतके परिचय मे अनमोल सहायता प्रदान करता है।

इनके देखनेसे मालूम होता है, कि उस समय 'तक्की' (तार्किक) "बी-मंसी" (मीमासक) लोगोका बडा ज़ोर था। विचार-स्वातंत्र्य उस काल की एक बडी विशेषता थी। हर एक पुरुष अपने विचारोको खुले-तौरसे प्रचार कर सकता था। न उसमे राज्यकी ओरसे कोई बाधा थी और न समाज कोई रुकावट डालता था। परलोक मानने वाले ईश्वर-अनीश्वर-वादी ही नही, जडवादी (उच्छेदवादी, देहके अन्तके साथ जीवन-का अन्त मानने वाले) तक भी अपने मतका प्रचार करते, राजा-प्रजामे खूब सम्मानित होते थे। यही नही पायासी[1] जैसे कोसलके सामन्त राजाको तो अपने जडवादको छोडनेमे लोक-लज्जाका भय खाते भी पाते है। बुद्धके समकालीन ६ आचार्योमे मक्खली गोसाल इसी मतके मानने वाले थे। शात्रार्थकी प्रथा तो उस समय इतनी जबर्दस्त थी कि पुरुषोकी तो बात ही क्या, स्त्रियाँ तक जम्बूद्वीपमे अपनी प्रतिभाकी विजय-ध्वजा फहराती-सी जम्बू-वृक्षकी शाखा लिये शास्त्रार्थ करनेके वास्ते देशमें विचरण किया करती थी। 'त्रिपिटक"मे कितने ही ऐसे उदाहरण मिलते है, जिनमे बुद्धसे वाद करनेकी घटनाओका उल्लेख है।

कितने ही सिहनाद सूत्र तो इन्ही वादोमे सम्बन्ध रखते हैं। वहीं पहले-पहल हमे निग्रह-स्थानकी झलक मिलती है और यद्यपि पीछे बौद्ध नैयायिक (दिङ्नाग, धर्मकीर्ति आदि) पचावयव वाक्यको न मान प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरण-तीन ही अवयवोको मानते है, किन्तु सूत्रपिटक (त्रिपिटकका एक भाग)मे हम कमसे कम उपनयका साफ प्रयोग देखते हैं। इस प्रकार ईसा-पूर्व छठी शताब्दीमे चतुरवयव और निग्रहस्थानमे हम बौद्धन्यायका आरम्भ होते देखते है। ईसापूर्व तीसरी शताब्दीका ग्रन्थ 'कथावत्थु' (अभि-धर्मपिटक) उसी प्राचीन शैलीका एक वाद ग्रन्थ है। उसके बाद "मिलिन्द-प्रश्न"मेभी न्यायके कुछ पारिभाषिक शब्दोका उल्लेख आता है और नीतिके

---

[1] दीघनिकाय, पायासिसुत्त।

नामसे न्यायका भी नाम आता है। 'मिलिन्दप्रश्न'का मूल रूप चाहे सागल (स्यालकोट)के यवन राजा मिनान्दरके समय (ई० पू० दूसरी शताब्दी)में आरम्भ हुआ हो, किन्तु जिस रूपमे वह हमे मिलता है, उससे वह ईस्वी पहिली दूसरी शताब्दीमे परिवर्द्धित हुआ मालूम होता है। ईस्वी चौथी शताब्दीमे चीन-भाषामे उसका अनुवाद होनेसे वह उससे पीछे नही लाया जा सकता।

ईसाकी पहली शताब्दीमें हम कनिष्कके समकालीन साकेतक (अयोध्या-जन्मा) आर्य सुवर्णाक्षीपुत्र भदन्त अश्वघोषके रूपमे एक अद्‌भुत प्रतिभाशाली बौद्ध विद्वान्‌को पाते है। अश्वघोषके बुद्धचरित और कुछ टीकाओमें तथा कुछ छोटे-छोटे अन्य ग्रन्थ तिब्बती और चीनी भाषामे अनुवादित हुए मिलते है। किन्तु उनके सारे ग्रन्थोको अनुवाद होनेकी बात तो अलग, हमे उनके बहुतसे ग्रन्थोका नाम भी नही मालूम है। मध्यएसियाकी बालुका भूमिसे ईस्वी दूसरी शताब्दीका लिखा अश्वघोषका 'सारिपुत्रप्रकरण' नाटक मिला है। 'सौन्दरानन्द' काव्यका चीनी या तिब्बती भाषामे अनु-वाद नही हुआ था, किन्तु सौभाग्यसे वह हमें संस्कृतमे मिल गया। वाद-न्यायकी टीकामे आचार्य शातरक्षितने अश्वघोषकी एक दूसरी कृति 'राष्ट्र-पाल नाटक'का जिक्र किया था। अश्वघोष महान् कविही न थे, बल्कि बौद्ध-दर्शनकी अपूर्वताने उन्हे ब्राह्मणधर्मसे बौद्धधर्मकी ओर खीचा था। उनके ग्रन्थोमे यद्यपि न्यायपर कोई नही मिला है, किन्तु उनमे अन्य सांख्य आदि दर्शनोका नाम ही नही, बल्कि विवाद रोपा गया है और उससे अनुमान होता है, कि अश्वघोषने कोई खंडनात्मक दर्शन-ग्रंथ जरूर लिखा होगा। ईसाकी दूसरी शताब्दीके अक्षपादके न्याय सूत्रोमें हम आत्मा, शब्द प्रमाण, सामान्य, अवयवी आदि पर बौद्धोकी ओरसे किये आक्षेपोका उत्तर दिया जाते देखते है, उससे भी उसके पहले किसी ऐसे बौद्ध आचार्यका होना जरूरी मालूम होता है।

नागार्जुन

बौद्ध न्यायपर सबसे पुराने जो ग्रन्थ मिलते है, नागार्जुनके ही है। नागार्जुनका जन्म बरार (विदर्भ)में हुआ था, किन्तु वह अधिकतर आन्ध्र-देशके धान्यकटक और श्रीपर्वत स्थानोमें रहते थे। वह बौद्धोंके माध्यमिक दर्शन (शून्यता या सापेक्षतावाद)के आचार्य थे। उनके तीन छोटे-छोटे न्याय निबन्ध अब चीनी भाषाहीमे मिलते है, जिनमेसे एक विग्रहव्यावर्त्तनी तिब्बत से मुझे मिला। वात्स्यायन-भाष्यमे कितनी ही जगहोपर हम स्पष्ट बौद्धोके आक्षेपोके खडन पाते है। वात्स्यायनके पूर्व किस बौद्धने ये आक्षेप किये होगे? नागार्जुनके उक्त ग्रन्थके देखने से स्पष्ट मालूम होता, कि प्रमाण स्थापना प्रकरणमे वात्स्यायनने जिस ग्रन्थ का खडन किया है, वह नागार्जुन ही है। सिर्फ न्याय या प्रमाण शास्त्र पर विस्तृत ग्रन्थ लिखने वाले आचार्य दिङ्नाग है इसीलिये उन्हे मध्यकालीन भारतीय तर्कशास्त्रका पिता कहा जाता है। जैसे, गगेशोपाध्यायकी तत्त्वचिन्तामणि न्यायशास्त्रमे एक नये युगका आरभ करती है, जो कि अब तक चला जा रहा है, उसी प्रकार दिङ्नागका "प्रमाणसमुच्चय" एक नया युग आरभ करता है, जो कि गगेशके काल (१२०० ई०) तक रहता है।

वसुबन्धु

नागार्जुनके बादकी डेढ शताब्दियोमे भी बौद्ध नैयायिक हुये होंगे, किन्तु उनकी कृतियोका हमे कोई पता नही। अन्तमें हम वसुबन्धु (४०० ई०)को "वादविधि" या "वादविधान" लिखते पाते है। यह ग्रथ अब तक न सस्कृतहीमें मिला है, और न इसका चीनी या तिब्बती भाषाओमें ही अनुवाद हुआ था। किन्तु इस ग्रथका नाम धर्मकीर्ति (६०० ई०)के 'वादन्याय' ग्रन्थ में मिलता है। "वादन्यायः परहितरतैरेष सद्भिः प्रणीतः" पर व्याख्या करते शान्तरक्षित (७४०-८४० ई०)ने लिखा है—"अय वादन्यायमार्गः सकललोकानिबन्धनबन्धुना **वादविधानादौ** आर्यवसुबन्धुना

महाराजपथीकृतः। क्षुण्णश्च तदनुमहत्यां **न्यायपरीक्षायां** कुमतिमतमत्त मातङ्ग-शिर पीठपाटनपटुभिराचार्यदिङ्नागपादैः।" इस वाक्यसे मालूम होता है, कि वसुबन्धुने न्यायशास्त्र पर वादविधान नामक ग्रंथ लिखा था। न्यायबार्तिककार[1] उद्योतकर भारद्वाजने भी कितनी ही जगहोपर इस ग्रन्थ-का नामोल्लेख किया है, और कितनी ही जगहो पर विना नाम दिये भी खण्डन किया है, किन्तु वहाँ व्याख्या करते वाचस्पति मिश्र (८४१ ई०)ने नाम दिया है—

"यद्यपि वादविधौ साध्याभिधान प्रतिज्ञेति प्रतिज्ञालक्षणमुक्त, तद-प्युभयथा दोषान्न युक्तम्।"

"यद्यपि वादविधानटीकाया साधयतीति शब्दस्य स्वयंपरेण च तुल्य-त्वात् स्वयमिति विशेषणम्।"

(न्या० वा० पृ० ११७)

पिछले उदाहरणमे 'वादविधान' नाम समानार्थक होनेसे वह 'वाद विधि'के लिये ही प्रयुक्त हुआ मालूम होता है। वाद विधानकी जिस टीका-का यहाँ जिक्र आया है, उसके रचयिता शायद दिङ्नाग थे। क्योंकि दिङ्नाग वसुबन्धुके शिष्य थे। और हो सकता है, जिसे शान्तरक्षितने, ऊपरके जिस उद्धरणमे "तदनु महत्या न्यायपरीक्षाया" लिखा है, वह न्याय-परीक्षा वसुबन्धुके वादविधानकी टीका हो अथवा उसीका कोई पोषक ग्रन्थ हो।

न्यायवार्तिकके निम्न उद्धरणोमे यद्यपि वादविधिका नाम नही आया है, किन्तु वे वसुबन्धुके इसी प्रसिद्ध ग्रन्थके मालूम होते हैं।

"अपरे पुनर्वर्णयन्ति ततोऽर्थाद्विज्ञानं प्रत्यक्षमिति।"

(पृ० ४०)

इस पर टीका करते हुए वाचस्पति मिश्रने लिखा है—

---

[1] चौखम्भासंस्कृतसीरीज, बनारस १९१६ ई०।

"तदेवं प्रत्यक्षलक्षणं समर्थ्य वासुबन्धवं तत्प्रत्यक्षलक्षणं विकल्पयितु-मुपन्यस्यति। अपरे पुनरिति।"

"एतेन साध्यत्वेनेप्सित. पक्ष इति प्रत्युक्तम्।"

(न्याय वा० ११६)

इस पर वाचस्पति कहते है।

"अत्रापि च वसुबन्धुलक्षणे विरुद्धार्थनिराकृतग्रहण न कर्त्तव्यम्।"

(ता० टी० पृ० २७३)

एक जगह उद्योतकरने वसुबन्धुके वादलक्षणको इस प्रकार उद्धृत किया है—

"अपरे तु स्वपरपक्षयो· सिद्धचसिद्धचर्थं वचन वाद इति वादलक्षणं वर्णयन्ति।"

(न्या० वा० १५०)

यहा पर टीका[१] करते वाचस्पतिने पूर्वपक्षीका नाम वसुबन्धु दिया है—

"तदेव स्वाभिमतवादलक्षग व्याख्याय वासुबन्धव लक्षणं दूषयितुमु-पन्यस्यति। अपरे त्विति।"

(ता० टी० ३१७)

इन उद्धरणोमे यह भी मालूम होता है कि वसुबन्धुने अपने ग्रन्थमें प्रत्यक्ष आदिके लक्षण भी लिखे थे और वह धर्मकीर्तिके वादन्यायकी भाँति सिर्फ निग्रहस्थान ही पर नही था।

वसुबन्धुके एक ग्रन्थ तर्कशास्त्रको चीनी भाषामें परमार्थ (५५० ई०)ने अनुवाद किया था। तर्कशास्त्र ग्रन्थका नाम न हो, कर विषय मालूम होता है।

---

[१] **न्यायवार्तिकतात्पर्य-टीका, "चौखम्भासंस्कृत सीरीज", बनारस (१९२५ ई०)।**

वसुबन्धुके समयके बारेमें बहुत मतभेद हैं, कितने ही पंडित उन्हे तीसरी शताब्दीमें ले जाना चाहते हैं और जापानके विद्वान् डा० तकाकुसू ५०० ई०मे लाना चाहते हैं। डा० तकाकुसूने वसुबन्धुका समय निर्धारण करनेमें बहुत परिश्रम किया है, किन्तु उनके समयके माननेमे बहुतसी कठिनाइयाँ दीख पडती हैं। (१) वसुबन्धुके ज्येष्ठ सहोदर असंगके ग्रन्थोंका धर्म-रक्षाने चीनी भाषामें अनुवाद किया था। धर्मरक्षा ४०० ई०में चीनमें थे। (२) वसुबन्धुके शिष्य दिङ्नागका नाम कालिदास ने "मेघदूत"के प्रसिद्ध श्लोक 'दिङ्नागानां पथि परिहरन्'में किया है। वहाँ 'दिङ्नागानां'से बौद्ध विद्वान् दिङ्नागसे ही अभिप्राय है, इसकी पुष्टि मल्लिनाथकी टीका ही नही करती; बल्कि प्राचीन टीकाकार दक्षिणावर्त्तनाथ भी करते हैं। कुमारगुप्त (४१५-५५ ई०) और स्कन्दगुप्त (४५५-६७ ई०)के समकालीन कालिदाससे पूर्व दिङ् नागका होना माननेपर वसुबन्धुका समय ४०० ई० के पास हो सकता है।

(३) चीनी भाषामे अनुवादित परमार्थ-कृत वसुबन्धुकी जीवनीमें वसुबन्धुको अयोध्याके राजाका गुरु कहा है। उधर वसुबन्धुके नामसे उद्धृत एक श्लोक "सोऽय सम्प्रति चन्द्रगुप्ततनय चन्द्रप्रकाशो युवा" को मिलानेपर जान पडता है कि वसुबन्धु चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०-४१२) के समकालीन थे।

(४) ३१९ ई० से ४९५ ई० तकका गुप्त काल उत्तरी भारतमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण समय है। इस समयकी पत्थर की मूर्तियाँ भारतीय मूर्ति-कालके अत्यन्त सुन्दर नमूने समझी जाती हैं। अजन्ता और वाग् के कितने ही इस कालके चित्र उस समयकी चित्रकलाको उन्नतिके शिखर पर पहुँचा प्रदर्शित करते हैं। समुद्रगुप्त (३४०-३७५ ई०)के प्रयाग वाले अशोक स्तम्भपर खुदे श्लोक संगीत और काव्यके कौशलकी सूचना ही नही देते हैं, बल्कि कविकुलगुरु कालिदासकी कविताएँ बतलाती है कि वह संस्कृत-कविताका मध्याह्न काल था। समुद्रगुप्त (३४०-७५ ई०)

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (३८०-४१५ ई०) कुमार गुप्त (४१५-५५ ई०) और स्कन्दगुप्त (४५५-६७ ई०) जैसे पराक्रमी शासकोंको लगातार चार पीढियो तक पैदा करते रहना भी उस कालकी खास महत्ताहीको प्रदर्शित नही करता, बल्कि यह भी बतलाता है, कि उस कालमे राष्ट्रीय प्रगति सर्वतोमुखीन थी। ऐसे समयमे दर्शन क्षेत्रमें भी कितनी ही नई विभूतियाँ जरूर हुई होगी और वसुबन्धु और दिङ्नागको हम इन्ही विभूतियोंमे समझते है। इस तरहसे भी वसुबन्धुका समय ४०० ई० ठीक जँचता है।

दिङ्नाग

दिङ्नाग (४२५ ई०) वसुबन्धुके शिष्य थे, यह तिब्बतकी परम्परासे मालूम होता हैं। और तिब्बतमे इस सम्बन्धकी यह परम्परायें आठवीं शताब्दीमे भारतसे गई थी, इसलिये इन्हे भारतीय परम्परा ही कहना चाहिए। यद्यपि चीनकी परम्परामे दिङ्नागको वसुबन्धुका शिष्य होना नही लिखा हैं, तोभी वहाँ इसके विरुद्ध भी कुछ नही पाया जाता। दिङ्नागका काल वसुबन्धु और कालिदासके बीचमे हो सकता है, और इस प्रकार उन्हे ४२५ ई० के आस पास माना जा सकता है। दिङ्नागका मुख्य ग्रन्थ प्रमाणसमुच्चय है, जो सिर्फ तिब्बती भाषाहीमे मिलता है। उसी भाषामे प्रमाणसमुच्चयपर महावैयाकरणकाशिकाविवरणपञ्जिका (न्यास) के कर्त्ता जिनेन्द्रबुद्धि (७०० ई०)की टीका भी अनूदित मिलती हैं। दिङ्नाग भारतके अद्भुत प्रतिभाशाली नैयायिकोमे थे, इसमे तो सन्देह ही नही।

चीनी परम्परासे मालूम होता है, कि शङ्कर स्वामी दिङ्नागके शिष्य थे। इसकी पुष्टि मनोरथनन्दीकी प्रमाणवार्तिकवृत्तिकी टिप्पणीसे होती है। तिब्बती परम्परा हमे बतलाती हैं कि दिङ्नागके एक शिष्य ईश्वरसेन थे, जो धर्मकीर्तिके गुरु थे किन्तु यहाँ तिब्बती परम्परामे कुछ भूल मालूम होती है, जैसा कि हम आगे बतलायेगे । शङ्कर स्वामीका

न्यायपर एक ग्रन्थ 'न्यायप्रवेश' मिलता है, तिब्बती परम्पराने ईश्वर-सेनको धर्मकीर्ति (६०० ई०) का न्यायमें गुरु माना है, और इसमें सन्देहका कोई कारण नही मालूम होता किन्तु वही ईश्वरसेनको दिङ्नागका शिष्य कहा गया है। आगे हम बतलायेंगे कि धर्मकीर्ति ६२५ ई०के आस पास थे। ऐसी हालतमें धर्मकीर्ति और दिङ्नागके बीचके दो सौ वर्षोंमें सिर्फ एक व्यक्ति नही हो सकता। अक्सर पर-म्परामें अप्रधान व्यक्ति छोड दिये जाते है। मालूम होता है यहाँ भी दिङ्-नाग और ईश्वरसेनके बीचकी परम्परा छूट गयी है। ईश्वरसेनका कोई ग्रन्थ किसी भाषामे नही मिलता; किन्तु उनकी कुछ बातोका खण्डन धर्मकीर्तिने प्रमाण वार्तिकके प्रथम परिच्छेदमे किया है। दुर्वेकमिश्र (११०० ई०)ने भी अपने हेतु विन्दुकी धर्माकरदत्तीय टीकापर व्याख्या करते हुए ईश्वरसेनके मतको उद्धृत किया है, इससे मालूम होता है कि ईश्वरसेनने कोई ग्रन्थ लिखा था।

तिब्बती परम्परा बतलाती है, कि धर्मकीर्तिने जब ईश्वरसेनके पास दिङ्नागके प्रमाणसमुच्चयको पढा तब कितने ही स्थल उनके गुरुको भी स्पष्ट न लगते थे। इसके बाद धर्मकीर्तिने स्वय दूसरी बार उसे अपने आप पढा। जब उन्होने अपने अर्थको अपने गुरुको सुनाया तो उन्होने शाबाशी दी, और प्रमाणसमुच्चयके अर्थ समझनेमे धर्मकीर्तिको उन्होने दिङ्नागके बराबर बतलाया। फिर धर्मकीर्तिने तीसरी बार पढा और उन्हे उस में त्रुटियाँ मालूम हुई। इसीलिये धर्मकीर्तिने दिङ्नागके 'प्रमाणसमुच्चय' पर टीका लिखनेकी अपेक्षा वार्त्तिक (प्रमाणवार्त्तिक) लिखा जिसमे खंडन करनेमे स्वतंत्रता रहे।

धर्मकीर्ति

धर्मकीर्तिका काल (६०० ई०)—चीनी पर्यटक इचिङ्ने धर्मकीर्ति-का वर्णन अपने ग्रन्थमे किया है। इसलिये धर्मकीर्ति ६७९ ई० से पहले हुए।

किन्तु, युन्-च्वेङने धर्मकीर्तिका नाम नही लिया है, इसलिये ऐतिहासिको-का अनुमान है कि ६३५ ई०मे जब युन्-च्वेङ नालंदा पहुँचे, धर्मकीर्तिकी आयु कम रही होगी, इसलिये धर्मकीर्तिका काल ३३५-५० ई० माना है। लेकिन युन्-च्वेङके मतसे धर्मकीर्तिको पीछे लाना ठीक नही जँचता। हमारी समझमें धर्मकीर्ति युन्-च्वेङसे पहले ही नालंदामे थे, क्योकि—(१) धर्मकीर्ति नालंदाके प्रधान आचार्य धर्मपालके शिष्य थे। युन्-च्वेङके समय (६३३ ई०) धर्मपालके शिष्य शीलभद्र नालंदाके प्रधान आचार्य थे जिनकी आयु उस समय १०६ वर्ष की थी। ऐसी अवस्थामें धर्मपाल के शिष्य धर्मकीर्ति ६३५ ई० मे बच्चे नही हो सकते थे। धर्मकीर्ति सुदूर-दक्षिण तिरुमलय (द्रविड देश)के प्रतिभाशाली ब्राह्मण थे। ब्राह्मण शास्त्रो-को उन्होने खूब पढा था, और पीछे बौद्ध सिद्धान्तोंको अपनी स्वतन्त्र बुद्धिके अधिक अनुकूल पा वह बौद्ध हुए थे।

इस प्रकार नालदाके प्रधान आचार्यके शिष्य होते समय वह बच्चे नही हो सकते थे। नालंदाके विश्वविद्यालयमे प्रवेश पानेके लिये द्वार-पण्डितोकी कितनी कठिन परीक्षामे विद्यार्थियोको गुजरना पड़ता था, यह हमे मालूम है; इसमे भी धर्मकीर्ति काफी पढे लिखे होनेपर ही प्रवेशके अधिकारी हो सकते थे। शीलभद्रके प्रधान आचार्य होनेसे पूर्व ही धर्मकीर्ति विद्या समाप्त कर चुके थे, अन्यथा छोटे होनेपर उन्हे शीलभद्रके पास भी पढ़ना पडता। और वैसा कोई उल्लेख नही है। इन सब बातोपर विचार करनेसे धर्मकीर्तिकी आयु कितनी भी कम मानते युन्-च्वेङके समय हम उसे ३०, ३५ वर्षसे कम नही मान सकते? फिर धर्मकीर्तिकी प्रतिभा बौद्ध दार्शनिकोंमे अद्वितीय मानी जाती है, बल्कि उनके प्रतिद्वंद्वी ब्राह्मण नैयायिक भी उनकी प्रतिभाकी दाद देते है। ऐसा अद्भुत् प्रतिभा-शाली पुरुष २५ वर्षकी उम्रमें भी नालंदामे विना ख्याति पाये नहीं रह सकता। युन्-च्वेङकी चुप्पीका कारण हो सकता है (१) युन्-च्वेङके नालंदा निवासके समयमे पूर्व ही धर्मकीर्तिका देहान्त हो चुका था और

न्यायपर अधिक अनुराग न होनेके कारण धर्मकीर्तिकी कृतियो और व्यक्तित्वके प्रति उतना सम्मान भाव न होनेसे उन्होंने उनका जिक्र नही किया। युन्-च्वेङ न्यायके पण्डित न थे; यह तो इसीसे मालूम होता है कि उन्होंने दिङ्नागके प्रमाणसमुच्चय जैसे प्रौढ़ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थका चीनी अनुवाद न कर असंग, वसुबंधु और शंकरस्वामीके तीन छोटे छोटे न्याय निबन्धोंका ही अनुवाद कर संतोष कर लिया।

(२) यह कहा जा सकता है कि युन्-च्वेङकी जीवनीके सम्पादक उनके शिष्योंने जान-बूझकर धर्मकीर्तिका जिक्र नही आने दिया है। युन्-च्वेङ विद्वान् थे, इसमे सन्देह नही; किन्तु कितनी ही जगहो पर जीवनी-लेखकोने बहुत अतिशयोक्तिकी है। उदाहरणार्थ, यदि उड़ीसामे कोई अबौद्ध पण्डित बौद्धोंको शास्त्रार्थ करनेके लिये ललकारता है, और उसका सन्देश नालंदा आता है, तो नालदा युन्-च्वेङको अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजता है। आजकलके पण्डितोके शास्त्रार्थकी भाँति सातवी सदीमे भी शास्त्रार्थ सस्कृतमे हुआ करते थे। और आजकलकी भाँति उस समय भी वादी प्रतिवादी खूब कठिन दार्शनिक सस्कृतका प्रयोग करते थे। संस्कृत भाषाका व्याकरण ऐसे भी जटिल है और फिर उक्त प्रकारकी सस्कृतमें शास्त्रार्थ करना आसान काम न था। युन्-च्वेङ प्रौढ अवस्थामे भारत आये थे। पढ़ते पढ़ते दार्शनिक सस्कृतका समझना इनके लिये आसान हो सकता था किन्तु इतनी दक्षता प्राप्त करना सभव न था। इस जगहपर जरूर अत्युक्तिसे काम लिया गया है। ऐसी हालतमे यदि धर्मकीर्ति युन्-च्वेङके समय मौजूद थे तो उन्हे चित्रपर चित्रित करना हानिकारक समझा गया। और इसलिये उन्हे जान बूझकर वहाँ आने नही दिया गया। हमारी समझमे तो धर्मकीर्ति युन्-च्वेङके नालन्दा पहुँचनेसे पूर्व ही गुजर चुके थे।

धर्मकीर्तिकी शिष्य-परम्परा तिब्बती ग्रन्थोमे इस प्रकार मिलती है—

धर्मकीर्तिकी शिष्य-परम्परा

१ धर्मकीर्ति (६०० ई०), २ देवेन्द्रमति (६५० ई०), ३ शाक्यमति (६७५ ई०), ४ प्रज्ञाकरगुप्त (७०० ई०), ५ धर्मोत्तर (७२५ ई०), ६ यमारि (७५० ई०), ७ विनीतदेव (७७५ ई०), ८ शकरानन्द (८०० ई०), ९ बकुपण्डित (११५० ई०), १० शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०)। शाक्य श्रीभद्र विक्रमशिला बिहार (भागलपुर)के अन्तिम प्रधान आचार्य थे। विक्रम-शिलाके तुर्को द्वारा जलाये जानेपर १२०३ ई० में वह विभूतिचन्द्र (जगत्तला बगाल) दानशील, सघश्री (नेपाल) आदि बौद्ध पडितोके साथ तिब्बत गये। शाक्यश्रीभद्रके भोटवासी शिष्य स-स्क्य-पण्-छेन् आनन्दध्वज अपने ग्रन्थमे अपने गुरुकी परम्परा देते है, जिसमे बंकु पण्डितको शकरानन्दका शिष्य बतलाया गया है। यहाँ भी जान पडता है, बीचके कितने ही अप्रधान व्यक्तियोको छोड़ दिया गया है। शाक्य श्रीभद्रका काल (जन्म ११२७ ई०, मृत्यु १२२५ ई०) हीमे निश्चित है।

इनके अतिरिक्त जिनेन्द्रबुद्धि, (७०० ई०) धर्माकरदत्त (७०० ई०) कल्याणरक्षित (७०० ई०), रविगुप्त (७२५ ई०), अर्चट (८२५ ई०) शान्तरक्षित (७४०–८४० ई०), कमलशील (८५० ई०), जिनमित्र (८५० ई०), जयानन्त (९५० ई०) कर्णकगोमी, मनोरथनन्दी, जितारि (१००० ई०), रत्नकीर्ति (१००० ई०) आदि कितने ही और विद्वानोने न्यायपर अपने ग्रन्थ लिखे है। जिनेन्द्रबुद्धि वही है, जिन्होने काशिकाविवरणपजिका या न्यासको लिखा है। शान्तरक्षितके तत्वसग्रह (सस्कृत-मूल)के प्रकाशित हो जानेसे वह और उनके शिष्य कमलशील (तत्व संग्रह-पजिकाकार) विद्वानोके सामने आ चुके है।

---

(१२)

मागधी हिन्दीका विकास

भाषा भावका शरीर है। जिस समय एक ही देशमें अनेक भाषाओंका राज्य स्थापित नही था, लोग अपनी उसी एक भाषामे अपने हृदयके साधारण या कोमल भावो (काव्य)को प्रकट किया करते थे। चार सहस्र वर्ष पूर्वके हमारे कितने ही पूर्वजोके भाव हमे उन्हींकी भाषामें, वेदके रूपमे मिलते है। "छान्दम्" या वेदकी भाषा उनकी भाषा थी।

नदीके प्रवाहकी तरह भाषाका प्रवाह गतिशील है। जितनी ही भाषा बदलती गयी, उतनी ही हमारे परवर्ती पूर्वजोंको, अपने पूर्वजोकी भाषा और कृतियोमे अधिक लोकोत्तर श्रद्धा बढती गयी (और आज भी वह अपने विराट् आकार मे हमारे सस्कृत-प्रेमके रूपमे मौजूद है)। समय बीतनेके साथ वह इस फिक्रमे पडे कि, कैसे हम उसको सुरक्षित और सजीव रखे। इसके लिये उन्होने (वेद) मन्त्रोको जहाँ संहिता, पद, जटा, घन आदि नाना क्रमसे, उच्चारण और कण्ठस्थ करके, सुरक्षित किया; वहाँ उस भाषाकी भीतरी बनावटके लिये अपनी-अपनी शाखाके "प्रातिशाख्य" (व्याकरण) बनाये। जब बोल-चालकी भाषामे बहुत अन्तर हो चुका था, तब ईसा पूर्व छठी शताब्दीमें, गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए। कोई "भाषा"पर विशेष दया करके नही—बल्कि वही प्रचलित और उपयुक्त होनेसे उन्होने लोक-भाषामे लोगोको धर्मोपदेश किया। हाँ, जब मगध, कोसल, कुरु, अवन्ती, गन्धारके शिष्य, बुद्धके दिये उपदेशो (सूक्तो=सुत्तों) का अपनी-अपनी भाषा (=निरुक्ति) में पाठ करने लगे, तो कुछ शिष्योंको सूक्तोंकी भाषाका फेर-बदल खटकने लगा और उन्होने

चाहा कि, उसे हजार वर्षकी पुरानी भाषामे करके सुरक्षित कर दिया जाय। बुद्धने उसे मना ही नही किया; बल्कि ऐसा करनेको हल्के दण्डसे दण्डनीय एक अपराध करार दिया। जिस प्रकार नित्य बदलता सिक्का और तोलमान आदमीको खटकता तथा व्यवहारमें परेशानीका कारण होता है, वैसे ही बुद्धके निर्वाणकी तीनचार शताब्दियों बाद, यह आये दिनकी अदल-बदल धर्मधरोको अरुचिकर मालूम होने लगी। तब उनमेंसे कुछने तो लकीरका फकीर बन, पुरानी भाषाको (जिसे वह समझते थे कि, वह उसी रूपमे बुद्धके मुखसे निकली थी) ही अपनाये रखा और आगेसे अपनी शक्तिभर फेरबदल न होने देनेके लिये बाँध बाँधा। दूसरोने उसे मृत—किन्तु अधिक स्थायी सस्कृतमे—कर दिया। तथापि इस भाषामें पहली भाषाकी कितनी ही बाते रख छोड़ी। तीसरे, कुछ लोग और कितनी ही शताब्दियोतक धक्के खाकर, कुछ और फेर-बदल हो जाने-पर परवर्त्ती किसी भाषामे उसे सुरक्षित करनेपर मजबूर हुए। पहले वाले धर्मधर सिहलके स्थविरवादी है, जो मागधीकी सबसे बड़ी विशेषताएँ—"स" की जगह "श', "न" की जगह "ण" और "र"की जगह "ल" को सहस्राब्दियो पहले छोड चुके है, तो भी कहते है, "हमारे धर्म-ग्रन्थ मूल मागधी भाषामे है।" हाँ, यदि उच्चारणकी विशेषताको कोई नगण्य समझे, तो उनका कथन बहुत कुछ सच निकलेगा। सर्वास्तिवाद, महासाघिक आदिने अपने धर्म-ग्रन्थ सस्कृतमे कर दिये तथा महीशासक आदि कुछ निकायोंने प्राकृतमे।

शताब्दियोसे ब्राह्मण, कोसीकी भाँति, मर्यादा तोड़ भागनेवाली सस्कृत-भाषाको, व्याकरणके नियमोसे बाँध-बाँधकर स्थायी करते रहे; परन्तु उन्हे पूरी सफलता न मिली। अन्तमें जनपदोंकी सीमाएँ तोड़कर साम्राज्य स्थापित करनेवाले युगके प्रतापी शासक नन्दोंके कालमें पाणिनि[1] वह बाँध-

---

[1] मंजुश्रीमूलकल्पने पाणिनिको नन्दके समयमें माना है।

बाँधनेमें सफल हुए, जिसे तोड़नेकी शक्ति संस्कृतमें नही रही। तो भी इस बाँधसे संस्कृतके प्रचारमें अधिक फल तबतक नही हुआ, जबतक कि, ईसा पूर्व दूसरी शताब्दीके मध्यमे शुगोंके गुरु गोनर्दीय[1] पतञ्जलि अपनी कलम, ज्ञान और जबानको शुगोके[2] प्रभुत्वके साथ मिलाकर इसकी वकालतमे न खडे हो गये। शुगोके बाद गति कभी कुछ मन्द और कभी कुछ तेज होती रही; किन्तु गुप्तोके समयसे पाणिनिकी संस्कृतको वह स्थान प्राप्त हो गया, जो उसे कभी न मिला था (वह स्थान, ईसाकी बारहवी शताब्दीतक वैसे ही रहकर, आज भी हमारे सामने कुछ कम विशाल रूपमे नही दिखायी पडता है)।

यद्यपि शुगकालमे सस्कृतके प्रबल पक्षपाती उठे। और उन्होंने तथा उनके परवर्ती लोगोने सस्कृतके पक्षमे ऐसा वायुमण्डल तैयार कर दिया कि, कीर्त्ति, मान तथा शिक्षित जनतातक पहुँचनेकी इच्छा रखनेवाले विद्वान् साहित्यमे सस्कृतको ही व्यवहृत करनेपर मजबूर हो गये; तथापि बोलचाल-की भाषाओने[3] चुपचाप अपने अधिकारको अपहृत नही होने दिया। किन्तु जहाँ संस्कृतने एक स्थायी–अचल–रूप पा लिया था, वहाँ यह बेचारी

देखिये ५३ पटल, पृष्ठ ६१२–

"नन्दोऽपि नृपतिः श्रीमान् पूर्वकर्मापराधतः।

विरागयामास। मन्त्रीणां नगरे पाटलाह्वये।।

.....आयुस्तस्य च वै राज्ञः षट् षष्टीवर्षांतथा:।

.....तस्याप्यन्यतमः सख्यः पाणिनिर्नाम माणवः।।'

[1] मालवामें, विदिशा और उज्जैनके बीच, भोपालके पासमें गोनर्द कोई स्थान था।

[2] सबसे पुराने संस्कृत शिलालेख शुंगोंके समयमें मिलते है।

[3] गुणाढ्यकी बृहत्कथा, हालकी गाथासप्तशत्ती आदि इसके उदाहरण है।

प्राकृतें जबतक लड़-भिड़कर अपने लिये कुछ स्थान बनाती थी, तबतक वह स्वय मृत्युका ग्रास हो, मृतभाषा बन, अपने सबसे प्रबल शस्त्र—बोल-चालकी भाषा होनेको—खो बैठती। उन्हे इस जद्दो-जिहदका पुरस्कार यही मिलता था कि, कभी-कभी, लोग उनमे भी कुछ लिख दिया करते थे।

पाणिनिके समयमे सस्कृत स्वाभाविक रूपसे बोल-चालकी भाषा न थी; तोभी उस समयकी बोल-चालकी भाषा, उससे इतनी समीप थी कि, कुछ दर्जन नियमोके साथ उसे पाणिनीय संस्कृतमे बदला जा सकता था। पाणिनिके "भाषा" शब्दसे मतलब है इसी उच्चारणादिके परिवर्तनसे बनी कृत्रिम या "सस्कृत" भाषामे। उदीची (पंजाब), प्राची (युक्त-प्रान्त, बिहार) तथा व्यास-नदीके उत्तर-दक्षिण किनारोतकके रूप और स्वरतकके भेदोको दिखलानेसे लोग सिर्फ यही नही कह उठते है—"महतीय सूक्ष्मैक्षिकाचार्यस्य" (काशिका ४।२।७४); बल्कि साथ ही यह भी कहते है कि, पाणिनिके समय वह (पाणिनीय) सस्कृत बोली जाती थी; और, इमी लिये वह उनके कालको, नन्दोके समयमें न रखकर, बहुत पूर्व खीचना चाहते है। पाणिनिने, अपने व्याकरणके लिये, दो स्रोतोसे मसाला जमा किया। (क) मन्त्र, ब्राह्मण आदि छान्दस् वाङ्मय, (ख) कल्प, शिशुक्रन्द, यमसभ, अग्निकाश्यप आदिके वृत्तोको लेकर बने ग्रन्थ आदि से। इनमे भी शिशुक्रन्दीय आदि ग्रन्थ सस्कृतमे थे या प्राकृतमे, इसमे सन्देह ही समझना चाहिये। दूसरा स्रोत था, उदीची और प्राचीकी उस समयकी बोल-चाल्की "भाषा"का। यह कहनेकी आवश्यकता नही है कि, उन्होने अपने समयतकके इस विषयमे हुए प्रयत्नो (अपिशलि, शाकटायन आदिके व्याकरणो) से भी फायदा उठाया।

पाणिनीय सस्कृतका प्रादुर्भाव यद्यपि ईसा पूर्व चौथी शताब्दीमे हुआ; तथापि पतञ्जलिके समय अर्थात् ईसा पूर्व दूसरी शताब्दीके मध्यतक उसका बहुत कम प्रचार रहा। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दीसे ईसाकी तीसरी

शताब्दीतक वह क्रमशः अपने क्षेत्र और प्रभावको बढ़ाती गयी; और, चौथी शताब्दीसे उसका एकछत्र राज्य स्थापित हुआ। प्राकृत और अपभ्रंशके समयतक—जबतक कि, संस्कृत और भाषाके क्रियापद और प्रत्यय भी बहुत थोड़े ही फर्कसे संस्कृत किये जा सकते थे, संस्कृतभाषामे, बहुत ही प्राञ्जल, सर्वभावसम्पन्न, प्रसादयुक्त ग्रन्थ लिखे जाते थे। जब "देशीय" (आधुनिक भाषाओंका प्राचीनतम रूप)का प्रादुर्भाव हुआ और संस्कृतसे अधिक फर्क पड गया, तब जीवित स्रोतसे वञ्चित हो, संस्कृत-ग्रन्थ, भाषाकी दृष्टिसे, बिलकुल ही कृत्रिम तथा शब्द-दारिद्र्यसे पूर्ण बनने लगे।

यह तो हुआ देश-कालके भेदसे न प्रभावित होनेवाली कृत्रिम या "संस्कृत" भाषाके बारेमे। अब जीवित भाषाओंके स्रोतको लें। शताब्दियोंके परिवर्तनकी छाप रखते हुए भी वेद, ब्राह्मण आदि वैदिक साहित्यकी भाषाको पाणिनिने "छान्दस्" कहा है। वह अपने समयमे एक जीवित-भाषा थी। उस समय उसका क्षेत्र अधिकतर गङ्गा और सिन्धुकी उपत्यकाओंतक संकुचित तथा बोलनेवालोंकी संख्या कम होनेके कारण देश-भेदसे भी भाषाभेद कम हुआ था। पाणिनिके समयमे, और छोड, सिर्फ प्राची (युक्तप्रान्त, बिहार) ही, पांचाली, कोसली और मागधीके तीन क्षेत्रोंमें विभक्त मालूम होती है। विन्ध्य-हिमालयको सबकी सामान्य सीमा मानकर, उनमेसे, पाञ्चाली, घग्घर (शरावती=सरस्वती)से रामगङ्गातक, कोसली रामगङ्गासे मही (गण्डक)तक एवं मागधी गण्डकसे कोसी तथा कर्मनाशासे कलिंगतक फैली हुई थी। इनमे पांचाली तथा उदीची (पंजाब)की भाषाओंमें अधिक समानता थी; इसलिये शक्तिशाली राज्योंका केन्द्र उदीची (सिन्धु-तट)से उठकर प्राचीमे पञ्चाल तथा कोसलमे चला आया; तोभी पाञ्चालीने स्थानीय भाषाओंमें विशेष भेद न होनेके कारण' कोई विशेष स्थान न प्राप्त किया। उस समयतक तक्षशिलाका विद्या-केन्द्र बना रहना भी इसीका साधक और द्योतक है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दीमें जब मगधका विशाल साम्राज्य स्थापित हुआ और लक्ष्मीके साथ सरस्वतीने

भी मगधमे पधारकर उसे शक्ति और सभ्यताका केन्द्र बना दिया, तब अवस्था बिलकुल बदल गयी। इसमे मगधमे उत्पन्न बौद्ध, जैन जैसे महान् दार्शनिक सम्प्रदाय (जो कि, सिन्धुकी ओरतक फैलते जा रहे थे) और भी सहायक हुए। फलत. मगध, सभ्यताका केन्द्र बननेके साथ, अपनी भाषाको सारे भारतमें सम्मानित करानेमे सफल हुआ। उपर्युक्त प्रकारसे सम्राटोकी भाषा होनेसे मागधीने सारे भारतमे यहाँतक सम्मान पाया कि, पीछे नाटककारोंको, राजपुत्रो तथा दूसरे कितने ही उच्च पात्रोंकी भाषा मागधी रखनेका निर्देश करना पडा। मागधीका प्राचीनतम उपलब्ध रूप उड़ीसा, विहार और युक्तप्रान्तमे मिलने वाले सम्राट् अशोकके शिलालेख है। पाली (दक्षिणी बौद्ध-त्रिपिटककी भाषा)ने यदि "श"का बायकाट तथा "र"के स्थानपर भरसक "ल" नही आने देनेकी कसम न खायी होती, तो शायद उसे ही मागधीका प्राचीनतम रूप होनेका सौभाग्य प्राप्त होता; किन्तु सिहलके पुराने गुजराती (सौरसेनी-महाराष्ट्री भाषी) शताब्दियोंतक मागधीके उच्चारणको कैसे बनाये रखते? तोभी हम पालीके पुरातन सुत्तोमे "ल", "श"की भरमार कर उसे मागधीके पासतक पहुँचा सकते है। उसके बाद दूसरी मागधी नाटकोंकी मागधी है। हाँ, जैनमूल-ग्रन्थोंकी भाषा भी मागधी है। किन्तु शुगोंके समयसे ही जैन-धर्मका केन्द्र पूर्वमे पश्चिमकी ओर हटने लगा; और उज्जैन आदिकी सैर करते ईसाकी चौथी—पाँचवी शताब्दियोमे गुजरात पहुँच गया था, जहाँ पाँचवी शताब्दीमे (पाली-त्रिपिटकके लेख-बद्ध होनेसे पाँच सौ वर्ष बाद) जैन-ग्रन्थ लेखबद्ध हुए। जैन मागधीमें सौरसेनी, महाराष्ट्रीकी पुट पड़ जानेसे वह आधी ही मागधी रह गयी थी, इसीलिये अर्द्धमागधी भी उसे कहा गया। लेकिन अशोकके बाद (ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीसे) ईसाकी पहली शताब्दीतककी मागधी भाषाका रूप, रामगढ़ पहाड़की गुहाएँ (सरगुजा-राज्य) और बोधगया आदिके कुछ थोड़ेसे और अधिकाश आधे दर्जन शब्दोंवाले लेखोको छोड़कर और नही मिलता।

ईसाकी दूसरी शताब्दीसे पाँचवी शताब्दी तककी मागधी हमें नाटकोमें मिलती है। पाँचवीसे अपभ्रश मागधीका जमाना शुरू होता है। लेकिन महाराष्ट्री-अपभ्रशकी[1] भाँति मागधी-अपभ्रशमे कोई ग्रन्थ नही मिलता। सस्कृतका बोलबाला होनेसे शिलालेखों-ताम्रलेखोसे तो आशा ही नही। अपभ्रशका समय पाँचवीसे सातवी सदीतक था। आठवी शताब्दीमे "देशीय" या हिन्दीका समय शुरू होता है। यहाँ स्मरण रहे कि, प्राकृत, अपभ्रश, देशीय, सभीका एक एक सन्धि-काल है, जिसमे पूर्व और परकी भाषाओका सम्मिश्रण रहा है। प्राचीन देशीय-मागधी या "मगही" आठवी शताब्दीसे बारहवी शताब्दीतक रही। उसके बाद सोलहवी शताब्दीतक मध्यकालीन मगही और तबसे आधुनिक मगही हुई। इस प्रकार मागधीके निम्न रूप होते है--

१ अशोकसे पूर्वकी मागधी ई० पू० ६००--३०० अनुपलभ्य
२ अशोककी मागधी ई० पू० ३००--२०० सुलभ
३ अशोकसे पीछेकी मागधी ई० पू० २००--२०० ई० दुर्लभ
४ प्राकृत मागधी ई० २००--५०० ई० सुलभ
५ अपभ्रश मागधी ई० ५००--७०० ई० अनुपलभ्य
६ मगही प्राचीन ई० ८००--१२०० ई० सुलभ
७ मगही मध्यकालीन ई० १२००--१६०० ई० दुर्लभ
८ मगही आधुनिक ई० १६००से, जीवित

पहले बतलाया जा चुका है कि, चौथी शताब्दीमे ही मगहीका अपना क्षेत्र गण्डकसे कोसी तथा कर्मनाशासे कलिंगतक था। समय पाकर फिर भाषामे परिवर्तन होता गया। मागधीभाषा-भाषी आस-पासके प्रदेशोमे

---

[1] अपभ्रंश प्राकृत और प्राचीन "देशीय" भाषाके बीचकी भाषाके लिये यहाँ प्रयोग किया गया है। पतञ्जलिने तो आजकल "प्राकृत" कही जानेवाली भाषाओंसे भी पूर्वकी भाषाके लिये अपभ्रंशका प्रयोग किया है।

जाकर बस गये। इस प्रकार आधुनिक उडिया, बँगला, आसामी, मैथिली और मगही, प्राचीन मागधीके ही कालान्तरमे विकृत रूप है। बनारसी भाषाको भोजपुरी और कोसली या अवधीकी सीमान्त भाषा समझना चाहिये; तथापि प्राकृत और अपभ्रशके समय इनका भेद बहुत कम था। प्राचीन मगहीकालमे वह बढने लगा। अपभ्रशतककी मगहीको पूरी तरहसे, तथा प्राचीन मगहीको किसी अशमे, उक्त सभी भाषा-भाषी अपना कहनेके अधिकारी होते है; तो भी मागधी न कह, उसे आसामी, बगाली[१] या उडि-याका नाम देना उतना ही अक्षम्य होगा, जितना चासर, शेक्सपियर, मिल्टन तथा उनकी भाषाको अमेरिकन या आस्ट्रेलियन कहना।

ऊपर जिस मागधीको हमने "मगही प्राचीन" कहकर उसका काल

---

[१] प्रादेशिक पक्षपातका उदाहरण कितने ही बँगाली इतिहास-अन्वेषकोंके लेखोंमें भी मिलता है। सौ वर्ष पहले प्रिन्सेप्ने सिहल-वासियो-को बँगालसे आया कहा। उसके लिये आधार यही था कि, सिहल उपनि-वेश-स्थापक विजयकी दादी वंगराजकी लड़की थी और उनका पिता "लाल" देशका शासक था। "लाल" "राढ़" (पच्छिमी बँगाल)का अपभ्रंश रूप मान लिया गया। "महावंस" और "दीपवंस" में स्पष्ट लिखा है कि विजय अपनी राजधानीसे नावपर चढ़कर पहले भरुकच्छ (भड़ोच) फिर सुप्पारक (सोपारा, जि० ठाणा) गया; वहाँसे चलकर ताम्रपर्णीद्वीप। राढ़से सीलोन जानेका यह रास्ता (भूल जानेपर, तो ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दीके लिये और भी) कठिन है। तोभी वह बातें अब भी बहुतसे बँगाली ऐतिहासिकोंके ग्रन्थोंमें लिखी मिलेगी। मैथिल-कोकिल विद्यापति बहुत दिनोंतक बंग-भाषाके ही आदिकवि रहे है; और, यही बात हम बिहार-के दो बड़े धर्म-प्रचारकों (शान्तरक्षित और दीपंकरश्रीज्ञान—जिन्होंने आठवीं और ग्यारहवी शताब्दियोंमें, तिब्बतमें, धर्म-प्रचार किया था) के बारेमें देखते है।

आठवींसे बारहवीं शताब्दी बतलाया है, उसीमें हिन्दीकी सबसे प्राचीन कविता है। लेकिन, चूँकि उसे बंगाली विद्वानोंने बँगला साबित किया है और अभीतक हिन्दीवाले उसपर चुप थे, इसलिये उसके हिन्दी होनेके बारेमें कुछ कहना आवश्यक है। पहले तो यह सवाल होता है कि, हिन्दी वालोंने इस मागधीको बँगला बनाये जाते वक्त क्यों नहीं आपत्ति की? यदि इसमें उपेक्षा मात्र ही होती, तो और बात थी, लेकिन यहाँ हिन्दीवालोंकी यह उपेक्षा एक बड़े कारणपर निर्भर है। वह कारण हमें विद्यापतिकी बातसे भी मालूम होता है। बात यह है कि, हिन्दी-भाषासे लोग सिर्फ गद्यकी भाषा खड़ीबोली और पद्यकी भाषा व्रजभाषा लेते हैं। तुलसीकी भाषाका अवधी (कोसली) होना भी कितनोंको पहले नया ही मालूम होगा। खड़ीबोली उत्तर पांचाल (या बदायूँ, मुरादाबाद और बिजनौरके जिलों) की बोल-चालकी भाषाका साहित्यिक रूप है। बदायूँ आदिके लोग, मालूम होता है, दिल्लीमें मुसल्मानी शासन स्थापित होनेके आरम्भिक समयमें ही किसी प्रकार पहुँच गये। धर्म-परिवर्तन तथा अपने बुद्धि-विद्या-बलसे वह वहाँ अधिक प्रभावशाली बन गये। उनके सम्बन्धसे बहुतसे और भी बदायूनी, बिजनौरी दिल्ली पहुँचे। उनका और उनकी दास-दासियोंका दिल्लीमें एक अच्छा खासा उपनिवेश बस गया। इस उपनिवेशके सभी लोगोंका, यूरेशियनोंकी भाँति, अपनी भाषा भूलकर फारसी ही बोलने लगना उस समय सम्भव नहीं था—विशेषतः जब कि, राज-काज चलानेके लिये और लोगोंसे काम पड़ता था। (इस उत्तर-पाञ्चाली जमायतको, एक तरहसे, कम्पनीके आरम्भिक दिनोंके बँगालीकी रानियोंसे उपमा दे सकते हैं। फर्क इतना ही था कि, अंग्रेजोंका वर्गभेद रंगपर था, जिसका बदलना असम्भव था; और, उत्तर पाञ्चालियों तथा उनके शासकोंका फर्क धर्मपर था, जो धर्मपरिवर्तनसे बहुत-कुछ हट-सा जाता था)। मातृभाषाका प्रेम भी एक बड़ी चीज़ है, इसको वही अच्छी तरह जानेंगे, जो गुजरातके करोड़-पति मेमनों, बोरों साहुकारोंको, केपटाउन, कोलम्बो और नैरोबीतकमें

अपनी गुजराती भाषामें; एवम्, कोंकणी मुसलमान साहुकारोको तामिल, मालावार, कुर्गके प्रदेशोमे रहते हुए भी कोकणीमें अपना निजी काम चलाते देखेगे। अवधकी तरफसे बिहारमे जानेवाले कायस्थ, मुसलमान जैसे अपने साथ अपनी अवधी भाषा लेते गये (उनके प्रभावके साथ उनकी भाषाका प्रभाव इतना बढा कि, आज भी बिहारकी कचहरियोके शिक्षित लोगोको, आप इसी अवधीको, कुछ मगही, मैथिली तथा भोजपुरीके पुटके साथ बोलते पायँगे)—ठीक इसी प्रकार उत्तर पाञ्चालियोंकी अपनी भाषा दिल्लीमे अपना प्रभाव बढ़ाती रही। यह लोग आरम्भिक मुसलमान हुए लोगों (या हिन्दी मुसलमानो)मे अधिक प्रभावशाली थे; इसलिये पीछेके मुसलमानोके लिये यह सभी बातोमे उनके आदर्श बने। इस प्रकार भाषाके खयालसे दिल्लीके शासन-सूत्रधार दो भागोमे विभक्त थे, एक फारसीख्वाँ अहिन्दी मुसलमान शासक थे और दूसरे हिन्दी वज़ीर, अमीर तथा फकीर (धर्मप्रचारक), जो राज-काजके लिये फारसी सीखते-पढते थे, तोभी अपनी मातृभाषाके हामी थे। अन्तर्जातीय विवाहोसे (जोकि आजकी तरह उस समय भी मुसलमानोमें अधिक होते थे) जैसे ही जैसे हिन्दी-रुधिर शासकोमे अधिक प्रवेश करता जाता था और इस्लामके प्रचारसे जैसे ही जैसे हिन्दी मुसलमानोकी जमायत बढती जाती थी, वैसे ही वैसे उत्तर पाञ्चाली भाषा उन्नतिके पथपर अधिक अग्रसर होती गयी—प्रादेशिकसे सार्वत्रिक भाषा बनती गयी। रक्त-सम्मिश्रणके साथ भाषाका सम्मिश्रण सभी जगह देखा जाता है। इसी प्रकार उत्तरपाचालीमे भी फारसी-अरबीके वहुतसे शब्द मिल गये। शाहजहाँसे बहुत दिनो पहले ही यह भाषा बहमनियोके साथ दक्खिनमे पहुँच गयी थी; और, क्रमश: हिन्दीसे जिन देशोकी भाषाओका जितना ही अधिक फर्क था, उनमे यह उतनी ही अधिक साधारण लोगोके लिये माध्यम और मुसलमानोके लिये मातृभाषा बनी। उत्तरमे अकबरके हिन्दू-मुसलमान-विवाहोने इस भाषाको अधिक भीतर तक घुसने दिया और सभी शाहजादे जन्मसे ही दोभाषिये होने लगे। यद्यपि अंग्रेज़ोके आनेतक फारसी ही कच-

हरियो की भाषा थी; तोभी वह वैसे ही, जैसे बारहवी शताब्दीके गहड़वार राजाओंके शिलालेखोमें आप संस्कृतको देखते हैं। बात-चीततक सभी काम बादशाही कचहरियोतकमें भी हिन्दीमे ही होते थे, सिर्फ कागज लिखते वक्त फारसी आ जाती थी।

उक्त हिन्दी यद्यपि उत्तर पाञ्चालकी भाषा थी और उसमें अरबी-फारसीके शब्द उधार मात्र ले लिये गये थे; तोभी चौदहवींसे अठारहवी शताब्दीतक मुसलमानोका ही इससे घनिष्ट सम्बन्ध था। इसीलिये लोग इसमे मुसलमानियतकी बू पाते थे। फलत साहित्यकी भाषाका जब प्रश्न-उठा, तब हिन्दुओने रेखता (उर्द्-अरबी-फारसी-मिश्रित खडीबोली) को न ले, व्रजभापा, अवधी आदिको अपनाया। रेखतामे उनका कभीकभी कविता करना, फारसीकी ही तरह था। इस प्रकार अठारहवी शताब्दीमे सारे हिन्दुस्तान-प्रदेशमे सिवा रेखताके कोई दूसरी सर्वत्र प्रचलित भाषा नही थी। यद्यपि इसमे अरबी-फारसीके शब्द अधिक थे, तो भी खत्री आदि कितने ही नागरिक कुलोमे यह मातृ-भाषा थी; और, उनमे अरबी-फारसीके शब्द नाम मात्र थे (उतने सस्कृत-शब्द भी न थे)। तो भी कृष्णके नाममे और दिल्लीके पास होनेसे जैसे व्रजभाषा अनायास हिन्दीकी काव्य-भाषा बन गयी, उतनी आसानीसे खडीबोलीको सफलता नही मिली। उसे चौदहवी शताब्दीमे अठारहवी शताब्दीतक जगह-जगह-की खाक छाननी पडी, अपमान सहना पडा; और, इतनी तपस्याके बाद इस एक कोनेकी उत्तर पाञ्चाली भाषाको सारे हिन्दकी हिन्दीभाषा बनने-का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस प्रकार सूर, बिहारी आदिकी धार्मिक, शृङ्गारिक कविताओके कारण लोग व्रजभाषाको कविताकी भाषा समझते हैं; और, उपर्युक्त क्रमसे सर्वत्र प्रचलित खडीबोलीको आधुनिक व्यवहारकी भाषा। सहस्राब्दि-योमे हिन्दुस्तान-प्रदेशमे जो भाषाएँ विकसित होती रही है, वह भी कभी अपनी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेगी, इसका लोगोंको कुछ खयाल

भी न था। यही कारण है, जो भोजपुरी, मगही, मैथिली आदिकी ओर ध्यान नही गया। इस प्रकार मैथिलीके विद्यापति कितने ही वर्षोतक बँगाली ही बने रहे! जिस समय खडीबोलीने पटरानी होकर कविताके सिहासनपर भी पैर बढाना चाहा, उस समय ब्रजभाषाने लाग बाँध और डडे मारकर ब्रजकी होली शुरू कर दी। यह होली बहुत दिनोतक गम्भीरताके साथ होती रही, किन्तु जब कविताके दरबारमे खडीबोलीकी तूती बोलने लगी, तब बेचारी ब्रजभाषाको यही कहकर सन्तोष करना पड़ा—"असली पेठा तो मेरी ही दूकानपर बनता है"। लेकिन बेचारी मगही, मैथिली तथा भोजपुरी आदि भाषाएँ, सती-साध्वी कुलाङ्गनाओकी भाँति, चुपचाप ही बैठी रही। फिर आजकल तो जद्दो-जहदके बिना किसीको कुछ मिलता नही। इसीलिये इनकी ओर किसीने ध्यान न दिया। इन मूक भाषाओका भी अस्तित्व है, इस विषयमे डा० ग्रियर्सन और दूसरे सज्जनोने जो किया, उसके लिये यह अवश्य उनकी आभारी है। इधर ग्रामीण गीतोके प्रकाशनने यह भी बतला दिया कि, यह स्वभावसुन्दरी भी है।

अब सवाल यह है कि, इन भाषाओके लिये भी कोई स्थान मिलना चाहिये या नही? यह न समझे कि, खडीबोलीको अपना राजपाट बाँटकर गद्दीसे दस्त-बरदार हो जाना चाहिये। खड़ीबोलीके कारण आज भारतका दो तिहाई भाग एकताके घनिष्ट सूत्रमे बँध गया है। इस बीसवी शताब्दीमे उस एकताको तोडनेकी बात वही करेगा, जिसका समूह-शक्तिपर विश्वास नही है। तो फिर इनके लिये क्या होना चाहिये? बस, वही, जो ब्रजभाषाके लिये इस वक्त और भविष्यमे रहेगा। ब्रजभाषाको तो कोई गुजराती बनानेका साहस नही रखता, फिर मैथिली और मगहीके बारेमे ऐसा क्यो? यदि ब्रजभाषाकी नवी दसवी शताब्दियोकी कविता मिलती, तो उसके सादृश्यको देखकर गुजराती भी वही कहते, जो उस समयकी मगहीको देखकर आज बँगाली कहते है। कहा जा सकता है कि, खड़ी-

बोली तो मागधीकी उत्तराधिकारिणी नही है, साहित्यिक क्षेत्रमें उसकी उत्तराधिकारिणी तो बँगला ही है। लेकिन यहाँ पूछना है, अधिकार भी तो सापेक्ष शब्द है? मगही, मैथिली, उडिया, आसामी—इन चारोको खडी करनेपर सर्वप्रथम किसको हक मिलना चाहिये? मगहीको ही न? और बात भी है। यदि बँगला कहे कि, मैं पुरानी मगहीकी पुत्री हूँ, सो ठीक है; लेकिन यदि बँगला पुरानी मगहीका नाम मिटाकर उसे पुरानी बँगला कहने लगे, तो उसे मगहीसे ही लोहा नही लेना पडेगा, बल्कि उडिया आदिको भी अपनी ज्येष्ठ भगिनीकी सहायता करनेपर वाध्य होना पड़ेगा। यद्यपि मगहीमे आज अखबार नही निकलते, लेख नही लिखे जाते, लेकिन तीस लाख बोलने वाले उसके घरमे ही जिन्दा है! यदि कहे, उसमे हमे उज्र नही; लेकिन मगहीको हिन्दी कैसे कहेगे? हिन्दी तो पच्छाही भाषा है, उसका मगहीसे क्या सम्बन्ध? उत्तर यह है कि, हिन्दी शब्द सिर्फ खडी-बोलीके ही लिये कोई व्यवहार नही करता। ब्रजभाषा और अवधीके हिन्दी न होनेका किसीने आग्रह नही किया। ब्रजभाषा और अवधी भी तो खडी-बोलीसे, मगहीकी तरह, भिन्न है? हम पुरानी मगहीको खडीबोली नही कहते, हम उसे प्राचीन हिन्दी कहते है; जैसे ब्रजभाषा और अवधीको।

हिन्दी क्या है, पहले इसे आपको समझना चाहिये। सूबा हिन्दुस्तान (हिमालय पहाड तथा पजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, तेलगू, ओडिया, बँगला भाषाओके प्रदेशोमे घिरे प्रदेश)की आठवी शताब्दीके बादकी भाषाओको हिन्दी कहते है। इसके पुराने रूपको प्राचीन मगही, मैथिली, ब्रज-भाषा आदि कहते है; और, आजकलके रूप (आधुनिक हिन्दी)को सार्व-देशिक और स्थानीय, दो भागोमे विभक्त कर आधुनिक सार्वदेशिक हिन्दी-को खडीबोली (जिसे ही फारसी-लिपि तथा अरबी-फारसी शब्दोकी भर-मारपर उर्दू कहते है) तथा आजकल भिन्न-भिन्न स्थानोमे बोली जानेवाली मगही, मैथिली, भोजपुरी, बनारसी, अवधी, कन्नौजी, ब्रजमण्डली आदिको आधुनिक स्थानीय हिन्दी-भाषाएँ कहते हैं।

यदि आप कहे कि, दोहाकोष आदिकी भाषाको मगही कौन मानता है, वह तो ठेठ बँगला है। इसका उत्तर तो उन कवियोके निवास-देश देंगे, जिन्हे मैने उनके नाम आदिके साथ अपने दूसरे लेख (हिन्दीके प्राचीनतम कवि और उनकी कविता) मे दिया है। यहाँ सिर्फ इतना कह देना है कि, यदि (१) उन कवियोका सम्बन्ध नालन्दा और विक्रमशिलासे रहा है, यदि (२) यह दोनो विद्यापीठ मगही-मैथिली-क्षेत्रोसे बाहर नही रहे है, यदि (३) उन सभी कवियोकी भाषा एक समान रही है, और, यदि (४) उनमे प्रयुक्त हुए शब्द मगही-मैथिली-भाषाओमे, काल-सम्बन्धी आवश्यक परिवर्तनके साथ अब भी सबमे अधिक मिलते है, तो उन्हे हिन्दीसे बाहर नही ले जाया जा सकता।

---

(१३)

हिन्दी-स्थानीय भाषाओंके बृहत् संग्रहकी आवश्यकता

परिवर्तनका अटल नियम जैसे संसारकी सभी वस्तुओंपर अधिकार रखता है, वैसे ही भाषापर भी। लेकिन यह परिवर्तन हमेशा कार्य-कारण सम्बन्ध लिये हुए काम करता है, जिससे अपरवर्ती वस्तु (कार्य) पूर्ववर्ती वस्तु (कारण)से बहुत सादृश्य रखती है। यही कारण है कि, बाज वक्त हम वस्तुओंकी परिवर्तनशीलताके विषयमें सन्देहयुक्त हो जाते हैं। इस कार्य-कारण-सहित परिवर्तनका अच्छा उदाहरण हमारा अपना शरीर है। एक ही आदमीके १,२०,४०,५० और ६० वर्षकी अवस्थाओंके चित्र आप उठा लीजिये; सादृश्य और परिवर्तन आपको स्पष्ट मालूम होंगे। मनुष्यके भीतरी (आत्मिक) परिवर्तनको देखना हो, तो किसी चिन्तन-शील पुरुषकी चौदहसे पचास वर्षकी उम्रतककी डायरियाँ पढ़ डालिये। मनुष्यके इस आत्मिक और वाह्य परिवर्तनकी भाँति ही मनुष्यकी भाषाओंमे परिवर्तन होता जा रहा है। किसी जीवित भाषाके कितने ही छोटे-छोटे परिवर्तन तो कोई भी पचास वर्षका समझदार पुरुष आसानीसे बता सकता है। लेकिन सहस्राब्दियोंके परिवर्तनोंके सामने यह परिवर्तन नगण्य है। उस समय तो इतना परिवर्तन हो गया रहता है कि, पहचानना भी असम्भवसा हो जाता है। उदाहरणार्थ आधुनिक मगही (मागधी)को ले लीजिये। इसके आजकलके तथा अठारह सौ वर्ष पूर्व और बाईस सौ वर्ष पूर्वके रूपको ले लीजिये। कितना आमूल परिवर्तन मालूम होगा! चाहे वह परिवर्तन कितना ही आमूल हो, तोभी इसपर सादृश्यका नियम

लागू रहता है। यदि हमे हर शताब्दीकी भाषाओंका नमूना मिल जाय तो इनकी परस्पर समीपता हमे वैसे ही मालूम होगी, जैसे सौ मील जाने-वाले यात्रीके लिये पहले कदमसे दूसरे कदमका फासला। दर-असल भाषा-प्रवाहको भी तो एक यात्रीकी ही भाँति सहस्राब्दियोका सफर करना पडा है। इन्ही परिवर्तनके नियमोको भाषातत्व कहा जाता है।

भाषा मनुष्यके अन्दर और बाहरके भावोके प्रकाशन करनेका प्रधान साधन है। इसीलिये इसमे मनुष्यकी अपनी आकृति झलकती है। ऋग्वेदके शब्दोको सामयिक पेशो तथा गार्हस्थ, धार्मिक, सामरिक, खान-पान आदि विभागोमे सग्रह कर डालिये, आपको मालूम हो जायगा कि, ऋग्वेदीय मनुष्य समाजका क्या रूप था। यद्यपि इस प्रकारके साहित्यमे समाजके सारे अङ्गोका रूप चित्रित नही होना, इसलिये इसमे शक नही कि, यह चित्र पूर्ण न होगा।

भाषा मनुष्यके समझनेका साधन है, इसमे तो किसीको विवाद नही हो सकता। मानव-तत्त्व (*Anthropology*) भी मनुष्यके समझनेका साधन है। आजकल तो इन दोनो साधनोका परस्पर अविरोधी परिणाम देखकर और भी विद्वानोका विश्वास इनपर बढ चला है। भारतकी आर्य तथा द्रविड-जातियोकी भाषाओमे जैसी अपनी विशेषताएँ है, वैसे ही इनकी नासामितियोमे भी। जहाँ दोनो जातियोका सम्मिश्रण हुआ है, वहाँ हम भाषा और नासामितियोका भी वैसा ही सम्मिश्रण देखते है। उदाहरणार्थ कन्नड और तेलगू—दो द्रविड-जातियोको ले लीजिये। इनकी भाषाओमे आपको सस्कृतके शब्दोकी बहुलता मिलेगी, और, नासामिति भी आपको उसी परिमाणमें इनमे आर्य और द्रविड-नासाओका मिश्रण बतलायेगी। आर्य-भारतसे मालाबारका सीधा सम्बन्ध नही है, बीचमे कन्नड तथा दूसरी जातियाँ आ जाती है, तोभी मलयालम् भाषामे आपको कन्नड और तेलगूकी अपेक्षा भी अधिक सस्कृत-शब्द मिलेगे। मलाबारियोकी नासामितिमे आर्य-नासाओका बहुत अधिक प्रभाव देखकर पहले-पहल मानव-तत्त्वशास्त्रियोको

भी बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु आश्चर्यकी कोई बात नही। मालावारमे तो ब्राह्मण (प्रवासी आर्य) आजतक भी नायर-स्त्रियोके साथ, बिना रोक-टोक, सम्बन्ध रखते हैं। हजारो वर्षोमे नम्बूदरी ब्राह्मणोंके छोटे भाई इस नासामितिको बदलनेके ही लिये नियुक्त है।

उपर्युक्त सक्षिप्त कथनसे पाठकोको मालूम हो जायगा कि, भाषाओ-का परिवर्तन अपने अन्दर खास रहस्य रखता है। इसके रहस्यके उद्घाटन-के लिये मनुष्य वैसे ही व्यग्र है, जैसे गौरी-शकर-शिखर, ध्रुव-प्रदेश, भूगर्भ आदिकी जिज्ञासामे। इस रहस्यके खुलनेसे मनुष्यके इतिहासपर भी बहुत प्रकाश पडता है। भाषा-सम्बन्धी अन्वेषणने ही तो यूरोप, ईरान तथा उत्तरी भारतकी जातियोका एकवर्शीय होना सिद्ध किया। इसीने तो बिलोचि-स्तानके बर्हुई तथा मद्रासके द्राविडोका एक होना बतलाया। इसीने तिब्बती, नेवार और बर्मावालोका एक खान्दान सिद्ध किया।

इसके ऊपर यूरोपकी सभ्य जातियोने बहुत परिश्रम किया है।

इगलैडने *English Dialect Society* (इगलिश स्थानीय भाषा-सभा) कायम की थी, जिसने उपर्युक्त सामग्री सग्रह करनेमे बडी सहायता की। इसने *East Yorkshire*, *East Norfolk*, *Vale of Gloucester*, *Midland*, *West Reading of Yorkshire*, *West Devonshire*, *Derbyshire* आदि खास इगलैडके ही छोटे-छोटे भागोकी भाषाओके सम्बन्धमे बहुत ज्ञातव्य बातोकी खोज की। स्काच और वेल्स भाषाओपर भी वहाँ बहुत परिश्रम किया गया है। स्थानीय भाषाओके व्याकरण और कोष तैयार किये गये है। उदाहरणार्थ—

1. W Barnes, *A Grammar and Glossary of the Dorset dialect, with the history outspreading and bearing of South English.* 2. L. L. Bonaparte, *On the Dialects of Monmouthshire, Hertfordshire, Worcestershire, Gloucestershire, Berkshire* .. ... 3. E. Kruisigas, *A*

Grammar of the Dialect of West Somerset descriptive and historical. 4. B. A. Mackenzie, *The early London Dialect*. 5. J. Wright, *The English Dialect Grammar*. 6. J. Wright, *The English Dialect Dictionary*.

अन्य विषयोंकी भाँति फ्रासने इस विषयमे भी बहुत काम किया है। वहाँ स्थानीय भाषाओके कितने ही एटलस बने है; बहुतसे व्याकरण और कोष लिखे गये है; कहावतो और कहानियोंका भी सग्रह किया गया है। *Ch. Brunean* ने वालो, शम्पेन्वा, लोरेनकी स्थानीय भाषाओकी सीमा-निर्धारण करनेपर ही (*La limite des dialects Wallon, Champenois et Lorrain on Ardennee*) पुस्तक लिखी है। १८५२–५३ मे ही Escallier ने स्थानीय भाषाओके सम्बन्धमें अपनी पुस्तक *Remerque sur le patois* (स्थानीय भाषाओ पर टिप्पणी), *Letters sur le patois* लिखी थी। *Ch. de Tourtoulon* ने *Des dialectes de leur classification et de leur delimitation geographique* लिखी। १९०३–१९१२ मे, १९२० चित्रो सहित कई खण्डोमे *Atlas linguistique de la France* छपा, जिसका मूल्य प्राय १५० रु० है। दो वर्ष बाद *Atlas linguistique de la corse*, एक सहस्र चित्रोंके साथ, प्रकाशित हुआ। नार्मंडी भाषाका अलग ही *Atlas dialectologique de Normandie* है। इसी प्रकार और भी कितने ही एटलस छपे है। Wallon, Doubs, Bearn, Ardenne, Vinzellhs, Blonay आदिकी स्थानीय भाषाओपर तो कितने ही अलग-अलग व्याकरण और शब्द-कोष लिखे गये हैं।

जर्मनी, रूसी आदि भाषाओके सम्बन्धमे भी यही बात है। यहाँ एक बात और भी स्मरण रखनी चाहिये। फ्रास और इंगलैंडकी वह भाषाएँ वस्तुतः स्थानीय उपभाषाओंसी हैं, यदि उनके प्रचारके प्रदेश, बोलनेवालों तथा सर्वमान्य इगलिश या फ्रेंचसे उनके भेदपर ध्यान दिया जाय। किन्तु

हिन्दीकी स्थानीय भाषाओंमे कुछ तो परिस्थितिके ही फेरमे पडकर स्थानीय भाषाएँ रह गयी, अन्यथा मैथिली, ब्रजभाषा तथा राजस्थानीको एक स्वतन्त्र भाषा बननेकी उतनी ही योग्यता है, जितनी गुजराती और बँगलाको। यद्यपि इन भाषाओका साहित्यिक भाषासे सम्बन्ध सैकड़ो वर्षोसे छूटा हुआ है; तोभी मनुष्यकी आवश्यकताओके अनुसार इन भाषाओने भी विचार प्रकट करनेमे बराबर उन्नति की है। अबतक इनको अलग रहकर अपने अस्तित्व-को कायम रखने तथा वृद्धि करनेका मौका रहा है, किन्तु अब वह समय आ पहुँचा है, जब कि, इनकी अवस्था सकटापन्न हो गई है। अन्य बातोके अतिरिक्त दो बाते और है, जिनके लिये इन भाषाओके सग्रहकी बडी भारी आवश्यकता है। पहली बात तो यह है कि, खडी हिन्दीके सार्वत्रिक व्यवहार और उसीके द्वारा शिक्षा-प्रचार होनेके कारण शिक्षित समाज खडीबोलीमे ही लिखने बोलने लगा है। जो लिख-बोल नही सकते, वे भी उसे सस्कृति और भद्रताका चिन्ह समझ, बिना सकोच, उसके शब्दो और मुहाविरोको अपना रहे है, जिसके परिणाम-स्वरूप उनकी अपनी स्थानीय भाषा बिगडती जा रही है ! इसकी सत्यताके लिये आप पटनाकी मगही और कायस्थोकी भोजपुरीको लेकर देख सकते है। जिस तरह यह परिवर्तन हो रहा है, उससे तो यदि यह भाषाएँ नष्ट न हो जायँ, तो कम-से-कम थोडे ही समयमे इनके इतना बिगड जानेका डर तो जरूर है, जिससे कि, इनका वैज्ञानिक मूल्य बहुत कम रह जाय और आनेवाली पीढियाँ मानव-तत्त्वकी इस महत्त्वपूर्ण कड़ीको खो देने का इल्जाम हमपर लगावे। दूसरी बात यह है कि, खडीबोली यद्यपि मूलत उत्तर-पाञ्चाल या बिजनोर जिलेके आसपासकी भाषा है, तो भी वहाँके भाषा-भाषियोकी प्रामाणिकताको स्वीकार नही किया गया है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि, घरू काम-काज, जीवनकी साधारण अवस्थाओके उपयोगके शब्दोकी, हिन्दीमे, बडी कमी है। कभी-कभी कोई-कोई हिम्मतवाले लेखक, ऐसे समय किसी स्थानीय भाषाके शब्दका प्रयोग कर देते है, किन्तु, तोभी लोग स्थानीयताका दोष लगाते है, और,

उस शब्दके प्रचारमे रुकावट होती है। लोग यह भी खयाल करते रहते हैं कि, शायद ये शब्द हमारी ही स्थानीय भाषामे हों; यद्यपि बहुतसे शब्दोको, एक ही रूपमे, पटना और अम्बालामे प्रचलित पाया जाता है। यदि हम स्थानीय भाषाओंके शब्द आदि संग्रह कर सके, तो जहाँ हम उनका एक सुरक्षित भाण्डार रख देंगे, वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानीय भाषाओमे कितने ही सर्वसाधारण शब्दोको भी जमा कर पायेंगे, जिनको खडीबोलीमे लेनेमें फिर हिचकिचाहट न रहेगी, और, इस प्रकार, खडीबोलीका एक बडा दोष दूर हो जायगा। इस वक्त खडीबोलीमे इन कामोंके पूरा करनेका एक मात्र साधन संस्कृत है, जिसके कारण ही बाज वक्त लेखकोको अनावश्यक संस्कृत भरनेका दोषभागी बनना पडता है। यदि हमने इन भाषाओंको बिगडने या नष्ट होने दिया, तो इसका परिणाम यही नही होगा कि, हमे अपनी भाषाकी आवश्यकताओंको अस्वाभाविक रूपमे पूर्ण करना पडेगा, बल्कि वेद, ब्राह्मणसे लेकर, पाली, प्राकृतके ग्रन्थोतकमे प्रयुक्त होनेवाले उन कितने ही शब्दोके, परम्परासे चले आये अर्थोको भी, हम भूल जायँगे, जिनका प्रयोग आजकल केवल इन्ही भाषाओमे पाया जाता है।

उपर्युक्त कथनसे स्थानीय भाषाओको लेखबद्ध करके सुरक्षित कर देनेकी कितनी आवश्यकता है, यह स्पष्ट ही है। इस विषयमे ग्रियर्सनकी *Linguistic Survey of India* ने बहुत अच्छा काम किया है। शब्द-कोष, व्याकरण तथा कहानियोंपर भी उसमे लिखा गया है, तोभी वहाँ भाषाओंके सम्बन्धका स्थूल चित्र ही वाञ्छित था, उनका लक्ष्य सारी भाषाको सुरक्षित कर देनेका नही था और न साहित्यिक हिन्दीके कोषको पूर्ण करनेके ही ख्यालसे वह काम किया गया था। इसलिये वह हमारे लिये पर्याप्त नही है। हमे अपनी आवश्यकताके लिये चाहिये हर एक भाषाकी हजारो (१) कहानियाँ, (२) कहावते, (३) गीत, (४) शिल्प और व्यवसाय-सम्बन्धी शब्द तथा उन्हीपर अवलम्बित (५) विस्तृत कोष और (६) व्याकरण। कहानियोमे हमे सजीव भाषा मिलेगी। अर्थहीन, किन्तु भाषामे ओज

पैदा करनेवाले निपातोंका व्यवहार, हमें वही मालूम हो सकेगा। भाषामें भाव-चित्रणकी शक्तिका भी परिचय उन्हींसे मिलेगा। इसके अतिरिक्त इतिहास मानस-शास्त्र, समाज-शास्त्र आदिकी दृष्टिमें महत्त्वपूर्ण पदार्थोंकी प्राप्तिके बारेमें तो कहना ही क्या है। कुछ हदतक इन बातोंकी पूर्ति गीतोंसे होगी; किन्तु गीत अपना दूसरा ही महत्त्व रखते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें कृषि, वर्षा, नक्षत्रों, तारों आदिके सम्बन्धमें तथा दूसरी शिक्षाओंसे भरी कितनी ही गद्य-पद्य-मयी कहावतें प्रचलित हैं। इन कहावतोंमें, बाज वक्त, मनुष्यके शताब्दियोंके अनुभवका सार बन्द रहता है। यह भी समय पाकर नष्ट होती जा रही है। पुराने लोगोंमें अब भी ऐसे आदमी मिलेंगे, जिन्हें यह कहावतें सैकडोंकी संख्यामें याद हैं। इनके बलपर वह वर्षके भिन्न-भिन्न मासोंमें नक्षत्र देखकर रात्रिके घंटों और कृषि-वर्षाके समयका निश्चय कर लिया करते थे। किन्तु यान्त्रिक साधनोंकी सुलभतामें अब लोगों की प्रवृत्ति उधरसे उदासीन होती जा रही है, इसलिये इनके सर्वथा ही विस्मृत हो जानेकी सम्भावना है।

शिल्प-व्यवसाय-सम्बन्धी संग्रहकी तो सबसे अधिक आवश्यकता है, क्योंकि इस विषयपर तो कुछ भी नहीं किया गया है। खडी हिन्दीमें इस विषयके शब्दोंकी बडी कमी है। इस अपूर्णताके कारण कभी-कभी हमारे उपन्यास-लेखकोंको समाजका अधूरा चित्रही खींचनेपर मजबूर होना पडता है। मल्लाहको ही ले लीजिये। क्या उसको अपने काममें नाव, पतवार, पाल——इन तीन ही शब्दोंका व्यवहार करना पडता है? नावके सिर, पूँछ, पेट, वारी, पतवार आदिकी नाना किस्मोंके बारेमें तो कहना ही क्या; खोजनेपर आपको नावके ऊपरकी ओर, नीचेकी ओर, जल्दी या तिरछी चलने, चक्कर काटने तथा रस्सीपर चलने आदिके लिये भी कितने ही शब्द मिलेंगे। और, फिर, समुद्रकी नावोंके बारेमें तो कहना ही क्या है। वह तो एक पूरा संसार है, जिसके ज्ञान और आनन्दसे वञ्चित रहना या परोप-

जीवी होना हमारे लिये अच्छी बात नही है (हिन्दी-स्थानीय भाषाओंकी सीमा समुद्रसे नही मिलती, यह सही है; किन्तु यह भी याद रखना चाहिये कि, स्थानीय भाषाएँ, गुजराती, मराठी, बँगला, ओडियातकके साथ बाज वक्त गजबकी समानता रखती है)। यह तो सिर्फ मल्लाही व्यवसायकी बात हुई। अब इसमे आप उन सैकडो व्यवसायोको जोड लीजिये, जिनमेंसे कुछके नाम आगे दिये जायँगे। तब इस बातके महत्त्वको आप उपेक्षाकी दृष्टिसे न देख सकेगे। जब हमारे पास कहानियो, कहावतो, गीतो और व्यवसाय-सम्बन्धी शब्दोका एक पूरा भाण्डार जमा हो जायगा, तब उससे उस स्थानीय भाषाका एक अच्छा व्याकरण और कोष तैयार किया जा सकेगा।

अब हमे विचार करना है कि, यह काम कहाँतक साध्य है; और, इसे किस प्रकार करना चाहिये। साध्य होनेके विषयमे तो इतना ही कहना है कि, जो बाते दूसरे देशोने पचासो वर्ष पूर्व ही कर डाली, वह यहाँ आज क्यो नही हो सकती? और जगहोपर भी, सरकारकी अपेक्षा, लोगोने, इसके बारेमे, बहुत काम किया है। साध्य और असाध्य तो हम कार्यके ढँगको देखकर अच्छी तरह बतला सकेगे। हमारे कामके दो भाग होगे; एक तो सग्रहका काम, अर्थात् ढूँढ-ढूँढकर शब्दोको जमा करना और दूसरा, व्याकरण, कोषका निर्माण करना। यद्यपि दूसरे काममें बडी दक्षताकी आवश्यकता है, तोभी यह संगृहीत सामग्री लेकर एक जगह बैठे-बैठे किया जा सकता है; और, इस कामके लिये ऐसे हिन्दी-भाषी योग्य विद्वान् दुर्लभ न होगे, जो कि, बडे उत्साहपूर्वक, जल्दी, उसे समाप्त कर देगे। सबसे परिश्रमसाध्य और यदि उस तरह किया जाय, तो व्यय-साध्य कार्य है सग्रहका। इसके लिये हमे अपने जिलेको स्थानीय भाषा-विभागोंमे बाँट देना होगा। आप कहेगे, जिलेको बाँटकर क्या स्थानीय भाषाओमे भी उप-विभाग करेगे? ऐसे तो एक गाँव से दूसरेगाँवमे भी भाषामे कुछ अन्तर पडने लगता है? नही, मेरा मतलब यहाँ हर जगहके लिये नही है। यदि कही समझा जाय कि, वहाँ भाषामे वैसा कोई खास भेद नही है, तो उसे छोड दिया जाय;

किन्तु कितनी ही जगहोपर ऐसा करना जरूरी होगा। उदाहरणार्थ भोज-पुरीको ले लीजिये। सम्पूर्ण आरा, छपरा और चम्पारनके जिले तथा गोरखपुर, बलिया और गाजीपुर जिलोंके अधिकांश भाग एवम् आजमगढ़के कुछ परगने असल भोजपुरीके क्षेत्र मे आते है। बनारस आदिकी भाषा काशिका वस्तुत. सीमान्त-भाषा है; और, उसमे स्वर तो भोजपुरीका बिलकुल ही नही, जो कि, भाषाके लिये, व्याकरणके अन्य अङ्गोकी अपेक्षा, कम महत्त्वका नही है। यदि छपरा (सारन) जिलावाले अपने जिलेमे इस कामको करना चाहे, तो उन्हें अपने जिलेको तीन भागोमे बॉटना होगा। पहले भागमे गोरखपुर जिला, सरयूनदी, गण्डक-नदी, दाहा-नदी (पीछे सीवानतक), मीरगंज और गोपालगज-थानोमे घिरा खण्ड होगा। इसमे सारा कुआड़ीका परगना तथा कितने ही दूसरे भाग आ जायँगे। (इस तरहके उप-भाषाओके क्षेत्र-विभागमे परगने बाज वक्त बडा महत्त्वपूर्ण फैसला देते है। स्मरण रहे, परगने प्राय· इसी रूपमे मुसलमानी शासनके पहलेसे चले आ रहे है)। दूसरे हिस्सेमे हम मिर्जापुर, दिघवारा, परसा और सोनपुर-थानोंको रख सकते है। बाकी हिस्सेको तीसरे भागमे रखा जा सकता है। यद्यपि पहले और तीसरे हिस्सोमे "गउवै" (गये), "अउवै" (आये) तथा "गइलै", "अइलै" जैसे कितने ही भेद मिलेगे, तो भी इनको छोड़ दिया जा सकता है; किन्तु बाकी चार थानोके लिये तो विशेष ध्यान देना ही पडेगा, क्योकि वहॉके सिर्फ "न" (ह्रस्व ए नही)को ही ले लीजिये, जो कि, आसपासके किसी स्थानसे न मिलकर गण्डकपारके मुजफ्फरपुर-जिलेके अपने पड़ोसी भागसे मिलता है। ईसासे पॉच शताब्दियॉ पूर्व यह भाग वस्तुतः उस पारसे मिला हुआ था; किन्तु मुसलमानोके आनेसे पूर्व—सम्भवत. युन्-च्वेङ के आनेसे भी पूर्व—मही अपनी पुरानी धारको छोड़कर गण्डक बन चुकी थी। ऐसे उदाहरण, और जिलोमे भी, मिल सकते हैं।

इस प्रकार पहला काम तो हमें जिलोंका ऐसा विभाग करना है। यह अवश्य ही है कि, यह विभाग करना सबके बसका काम नही है। भाषा-

विज्ञानके अतिरिक्त इसमे जिलेके भाषा-विज्ञानकी भी काफी जानकारी आवश्यक होगी। लेकिन इस दिक्कतको हम बहुत कम कर सकें यदि हम पहले एक ही भाषाके एक ऐसे जिलेको ले लें, जहाँके लिये ऐसे विशेषज्ञ मिल सके। यदि वह जिला अपने सारे कामको खतम कर पावे, तो उसके अनुभवसे दूसरी जगहवाले बहुत फायदा उठा सकते है। विभाग कर चुकनेपर हमे सग्रह करनेवालोकी एक काफी सख्या चाहिये। फिर, जिस किसीको भी तो यह काम, सिर्फ लिखा-पढा होनेसे, सौपा नही जा सकता। इसके लिये, चोट-फेटकी आरम्भिक सहायताकी भाँति, एक तीन-चार सप्ताहका कोर्स रखना होगा, और, सिखलाना होगा कि, सामग्री-सञ्चयके लिये निम्न बातोका ख्याल रखे—

(१) स्थान ऐसा ढूँढे, जहाँकी भाषा बाहरी प्रभावसे कम प्रभावित हुई हो।

(२) बोलनेवाला यथासम्भव अपठित, व्यवहारकुशल तथा रूप खडाकर बेधडक बोलनेवाला हो। यदि वह स्त्री हो, तो और अच्छा।

(३) जब उपर्युक्त दोनो बाते मिल गई, तो लिखनेवाले सग्राहकको अपनेको निर्जीव ग्रामोफोन मशीन मान लेना चाहिये। वक्ताके किसी उच्चारण आदिको शुद्ध करके लिखनेका ख्याल भी कभी मनमे न आने देना चाहिये।

(४) लम्बी कथाओसे परहेज न करना चाहिये।

(५) वीरता, उदारता, प्रेम, माता-पिताकी भक्ति, साहसपूर्ण कार्य, वाणिज्य, शिक्षा, देवाराधन, तीर्थाटन, वैराग्य, जन्म, मरण आदि सभी विषयोके गद्य, पद्य और गीतिमय वर्णन इकट्ठे करने चाहिये।

(६) निपात आदिके शब्द तथा शब्दानुकरणोको न छोड़ना चाहिये।

लेकिन यहाँ एक बात और कहनी होगी। यद्यपि नागरी वर्णमाला वैसे देखनेमे पूर्ण मालूम होती है, किन्तु कुछ आवाज़ोंको जाहिर करनेके लिये इसमे अक्षर नही हैं। उनके लिये अलग स्पष्ट चिन्ह निश्चित करने होगे।

उदाहरणार्थ हमारी भाषाओंमे ह्रस्व ए और ओ का उच्चारण भी बहुत देखा जाता है। खडी बोलीतकमें "एक" कितनी ही बार ह्रस्व ए के साथ उच्चारित होता है। इस दिक्कतके कारण कितनी ही बार एके स्थानमें इ और ओके स्थानमे उका व्यवहार होने लग पड़ा है। अ का भी एक विशेष उच्चारण है, जिसे पश्चिमी युक्तप्रान्तके शहरोके लोग "कहना" के कके अको उच्चारण करते हुए करते हैं; उस वक्त इसका उच्चारण कुछ एकी ओर झुक जाता है, तोभी ह्रस्व ए नही हो जाता। इसका उच्चारण जर्मन भाषामे ȧ द्वारा प्रकट किया जाता है। हिन्दीमें अके ऊपर दो बिन्दी (अ॔) रखकर उसे किया जा सकता है। इसी प्रकार उके इकी ओर झुकते उच्चारणको उपर दो बिन्दी (उ॔)तथा ओके इकी तरफ झुकते उच्चारणको ओपर दो बिन्दी (ओ॔) देकर जाहिर किया जा सकता है। युक्तप्रान्त, बिहार और मध्यप्रदेशमे इतनेसे काम चल जायगा, किन्तु राजपूताना और दिल्ली प्रान्तमे घ, च, ड आदिके विशेष उच्चारणोके लिये अलग चिन्ह करने होंगे। नये चिन्हो और विशेष सावधानियोको समझानेके लिये ३, ४ सप्ताहका विशेष कोर्स काफी होगा। यदि जिला बोर्डो, म्युनिसिपलिटियोके शिक्षा-विभाग तथा कुछ दूसरे भी उत्साही सज्जन इसके लिये तैयार हो जायँ, तो सग्राहकोका मिलना कठिन न होगा, न व्ययके ही लिये बहुत तरद्दुद करना पडेगा।

कथाओ, कहावतो तथा गीतोकी अपेक्षा, नाना व्यवसायोमे उपयुक्त होनेवाले शब्दोके लिये, कहीं-कही कुछ विशेष परिश्रम करना पड़ेगा। इसका अन्दाज़ यहाँ दिये गये कुछ पेशोसे मालूम हो जायेगा—

१ लोहार	६ सोनार	११ मेहतर	१६ कसेरा
२ बढ़ई	७ चमार	१२ हलवाई	१७ चिडीमार
३ धोबी	८ जुलाहा	१३ कोइरी	१८ तेली
४ मल्लाह	९ पटवा	१४ ग्वाला	१९ कलाल
५ हजाम	१० मछुआ	१५ गँड़ेरिया	२० हलबाहा

२१ माली	३२ भड़भूँजा	४३ पहननेकी चीजें	५४ भेड़-बकरी सम्बन्धी शब्द
२२ ओझा	३३ तम्बोली	४४ घरके बर्तन	५५ ऊसर आदि भूमिके भेद
२३ कुम्हार	३४ पासी	४५ कालवाची शब्द	५६ वृक्ष-भेद
२४ चूड़ीवाला	३५ दर्जी	४६ नक्षत्रवाची शब्द	५७ जलचर
२५ सगतराश	३६ चोर	४७ भूतवाची शब्द	५८ थलचर
२६ रगरेज़	३७ वेश्या	४८ स्थानीय परगना, तप्पा (टप्पा) आदि के नाम	
२७ कसाई	३८ जुआरी	४९ नाप और मान	५९ नभचर
२८ धुनिया	३९ नशाखोर	५० घोडे-सम्बन्धी शब्द	६० विषधर जन्तु
२९ पहलवान	४० साधुओके शब्द	५१ हाथी ,, ,,	६१ हिंसक जन्तु
३० राजगीर	४१ खानेकी चीजे	५२ बैल ,, ,,	६२ अनाजोके नाम
३१ नुनिया	४२ सोनेकी चीजे	५३ गदहा ,, ,,	६३ बही-खाता
			६४ आभूषण

सभी कामको सुचारु रूपसे करनेके लिये एक प्रबन्धक समिति तथा एक सम्पादक-मण्डलकी आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त एक सग्राहकोका मण्डल रहेगा। सम्पादक-मण्डलमे उच्च कोटिके प्रामाणिक पुरुषोकी अनेक जगह कमी रहेगी; किन्तु उसमे बाहरके मर्मज्ञोसे सहायता ली जा सकती है। हाँ, हल्के दिलसे यह काम नही किया जा सकता। विशेषत व्याकरण और शब्द-कोषका काम तो बहुत ही सावधानीका है।

व्याकरण—हर एक उपस्थानीय भाषाका अलग व्याकरण न बनाकर किसी जगह की भाषा—जो दूसरी भाषाओ द्वारा अधिक अप्रभावित हो, या अधिक प्रचलित हो, या केन्द्रमे हो—को मध्यस्थ बनाकर बाकी भेदोको उसके द्वारा बतलाना।

कोष—इसमें खड़ीबोलीमे प्रचलित पर्यायवाची शब्दोके अतिरिक्त

सस्कृत के बिगडे तथा "देशी" शब्दोके लिये प्राकृत तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओके पर्याय भी देने चाहियें।

यह काम अच्छा है, यह तो सभी कहेगे; किन्तु इसकी दिक्कतोका लोगोको बहुत खयाल होगा। यह भय तबतक दूर न होगा, जबतक किसी एक भाषाका संग्रह पूरा न हो जाय। एकके तैयार हो जानेपर दूसरोको उस तजर्बेसे बहुत फायदा होगा और दिक्कतोका खयाल भी कम हो जायगा। यदि पहले ऐसे स्थानमे काम किया जाय जिसमे निम्न विशेषताएँ हों, तो काम आदर्श रूपमे, कम व्यय और कम समयमे, समाप्त हो जायगा; और, इसमे दूसरे भी जल्दी उत्साहित हो सकेंगे—

(१) भाषा ऐसी हो, जिसका क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा हो। (२) जिस भाषाके (कई शताब्दियोके अन्तरसे) अनेक रूप उपलब्ध हो जिससे कि, तुलनात्मक अध्ययनमे पूरी मदद मिल सके। (३) जहाँ भाषातत्त्वज्ञ तथा उस भाषाके मर्मज्ञ भी मिल सके। (४) जहाँकी स्थानीय सस्थाएँ इसके लिये तैयार हो। (५) जहाँ उत्साही लेखक और कार्यकर्ता सुलभ हो। (६) जहाँ काम जल्दी समाप्त किया जा सकता हो।

मेरे खयालमे ऐसी भाषा मगही है। इसका क्षेत्र पटना और गयाके जिले है, जिनका क्षेत्र-फल ६,७७६ वर्गमील है; और, १९२१ ई० की जन-गणनामे जनसख्या २७,२७,२१७ थी। मगही-भाषाके कितने ही रूप उपलब्ध है, जिनका जिक्र मैंने अपने दूसरे लेखमे किया है।

---

(१४)

तिब्बतमें भारतीय साहित्य और कला

तिब्बतकी यात्रा और दृष्टियोसे भी अत्यन्त मनोरजक है, लेकिन मै तो तीन बार तिब्बत सिर्फ साहित्यिक खोजके लिए ही गया हूँ। पहली बार (तिब्बत जानेसे पहले और जानेके बाद भी) मेरी यही धारणा रही कि भारतीय ग्रन्थोके तिब्बती भाषान्तर ही वहाँ मिल सकते है। भारतसे गये मूल-सस्कृत-ग्रन्थोके मिलनेकी बहुत कम सभावना है। पहली बार जिन लोगोसे मैने संस्कृत-ग्रन्थोके बारेमे पूछा, उन्हे उनका पता नही था, और उनके ऊटपटाँग उत्तरसे ही मेरी वह धारणा हुई थी। लेकिन जब मै २२ खच्चर पोथियोको लेकर पहली बार तिब्बतसे लौटा और अपनी छोटी पुस्तक 'तिब्बतमे बौद्धधर्म'के लिखनेके लिये उसकी ऐतिहासिक सामग्रीकी देखभाल करने लगा, तो मालूम हुआ कि भारतसे गये हजारों सस्कृत-ग्रन्थ तिब्बतमे भले ही न प्राप्त हो, किन्तु वहाँ कुछ संस्कृत-ग्रन्थ जरूर मिलेगे। पहली बार तिब्बतसे लौटनेके बाद महान् बौद्ध नैयायिक धर्म-कीर्ति--जिन्हे पश्चिमके सर्वश्रेष्ठ जीवित भारत-तत्त्वज्ञ आचार्य शेरबात्स्की (लेनिनग्रेड) भारतका काण्ट कहते है--के प्रधान ग्रन्थ प्रमाण-वार्तिकको तिब्बती भाषासे सस्कृतमे अनुवाद भी करने लगा था, लेकिन उसी समय मेरे मित्र श्रीजयचन्द्र विद्यालकार नैपाल गये थे और उन्होने राजगुरु प० हेमराज शर्माके पास उसकी संस्कृत प्रति देखी। सस्कृत प्रति खडित थी, तो भी उस समय मुझे जान पडा कि संस्कृत प्रतियोकी पूरी खोज किये बिना तिब्बती भाषासे सस्कृत करनेका काम हाथमें न लेना चाहिये। कही ऐसा

न हो कि तिब्बती भाषासे सस्कृत कर देनेके बाद मूल संस्कृत मिल जाय और फिर सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाय।

१९३४ ई० की दूसरी तिब्बत-यात्रा मैंने खास इसी मतलबसे की थी और १९३६ ई०मे तीसरी बार भी सस्कृत-ग्रन्थोकी खोजमें ही गया था। दूसरी यात्रामे मैने ४० के करीब संस्कृतकी ताल-पोथियोके बडल देखे और तीसरी बार ८०के करीब नयी पोथियाँ देखी। एक पोथीसे मतलब एक पुस्तक नही। पोथी मै यहाँ वेष्टनके अर्थमे ले रहा हूँ और एक पोथीमें अपूर्ण पुस्तक भी हो सकती है और अनेक पुस्तके भी। इस प्रकार दूसरी यात्रामे खंडित और अखंडित १८४ ग्रन्थ देखे थे और तीसरी बार खडित और अखंडित १५१ ग्रन्थ देखे। पिछली यात्रामे कुछ दार्शनिक ग्रन्थ मिले थे। लेकिन उस समय फोटोका सामान पूरा न होनेसे तथा लिखनेके लिये समयका अभाव रहनेसे मै धर्मकीर्तिके वादन्याय (सटीक) और प्रमाणवार्तिकके आधे अध्यायके भाष्यको ही लिख कर ला सका। अन्य ग्रन्थोंकी सिर्फ सूची बना सका था जो, १९३५के बिहार-उडीसा रिसर्च सोसाइटीके जर्नलमे छपी है। इस बार विशेषकर उन्ही दार्शनिक धर्मकीर्ति तथा दूसरे बौद्ध दार्शनिकोके ग्रन्थोकी खोजमे ही वहाँ जाना पडा था और उसमे इतनी सफलता हुई है कि जितनी मैंने कभी कल्पना भी न की थी। वस्तुत तिब्बत जाते समय एक दिन मुझे स्वप्न भी आया था। जिसमें मैंने देखा कि कोई आदमी तालकी पोथियोका एक बंडल बाँधकर मुझे दे गया। बंडलको खोलनेपर उसमे दिङ्नागका प्रमाण-समुच्चय, धर्मकीर्तिका प्रमाणवार्तिक तथा इसी तरहकी कुछ और न्यायकी पुस्तकें थी। यद्यपि इस यात्रामे भी बौद्ध न्यायका मूल ग्रन्थ दिङ्नागका प्रमाणसमुच्चय नही मिल सका, और जबतक वह नही मिल जाता तब तक मै अपने कामको अधूरा ही समझूँगा, तो भी उस स्वप्नमें मुझे जितनी पुस्तके मिली थी उनसे कही अधिक मिली है। न्याय ग्रन्थोंमे मुझे निम्न ग्रंथ मिले है।

१—**नागार्जुन**की विग्रहव्यावर्तनी-कारिका (स्ववृत्ति-सहित)। इस ग्रंथका विषय यद्यपि दर्शन है तो भी उसमें न्याय-सम्बन्धी बातें भी आती हैं और एक प्रकारसे अबतक किसी भाषामें उपलभ्य बौद्ध न्याय ग्रंथोंमें यह सबसे प्राचीन है। वात्सायनने न्याय भाष्यमें इसका खंडन किया है, और जान तो पडता है कि न्याय-सूत्रकार दूसरे अध्यायमें इस ग्रंथके कुछ मतोंका खंडन करते हैं।

२—**धर्मकीर्ति**—प्रमाणवार्तिक तीन परिच्छेद मूल।

३—**प्रमाण-वार्तिक-वृत्ति** (आचार्य मनोरथनन्दी कृत) चारों परिच्छेदपर सम्पूर्ण। प्रमाणवार्तिक बहुत ही कठिन ग्रन्थ है और उसकी यह वृत्ति आशासे अधिक सरल है।

४—**प्रमाणवार्तिक** (स्ववृत्ति)। धर्मकीर्तिने अपने मुख्य ग्रन्थके स्वार्थानुमान परिच्छेदपर स्वयं वृत्ति लिखी थी। इस वृत्तिका एक चतुर्थांश इस यात्रामें मिला।

५—**स्ववृत्ति-टीका**—(आचार्य कर्णकगोमी कृत)। यह धर्मकीर्तिकी स्ववृत्तिपर एक अच्छी टीका है जो आठ हजार श्लोकोंके बराबर है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ मिल गया है।

६—**प्रमाणवार्तिक-भाष्य** (प्रज्ञाकरगुप्त कृत)। प्रज्ञाकरने स्वार्थानुमान परिच्छेद छोडकर बाकी तीन परिच्छेदोंपर विस्तृत भाष्य लिखा है। प्रज्ञाकर नैयायिक और कवि थे। उनका १।२ ग्रन्थ पद्यमें है और कितने ही पद्योंमें काव्यका आनन्द आता है। संस्कृत दार्शनिकोंमें गद्यपद्यमिश्रित ग्रन्थ लिखनेकी प्रणाली चलानेवाले प्रज्ञाकरगुप्त ही हैं। ये नालंदाके आचार्य थे। इनकी शैलीका अनुकरण पिछली शताब्दियोंमें उदयनाचार्य और पार्थसारथिमिश्रने किया है। प्रज्ञाकर महान् बौद्ध नैयायिकोंमेंसे एक हैं। पिछली यात्रामें मुझे प्रज्ञाकरके इस ग्रन्थके डेढही अध्याय मिल सके थे, और आधा अध्याय मैं लिखकर लाया था जो बिहार-उडीसा रिसर्च सोसा-

इटीके त्रैमासिकमे निकल भी चुका है। इस यात्रामे इस सम्पूर्ण ग्रन्थका एक दूसरा तालपत्र मिल गया।

७—**दुर्वेकमिश्र**। धर्मोत्तर-प्रदीप। धर्मकीर्तिके 'न्याय विन्दु'पर आचार्य धर्मोत्तरकी पजिका सस्कृतमे छप चुकी है, उसी पजिकाकी यह टीका है और सभवतः मगधके किसी ब्राह्मण बौद्ध पण्डितने यह टीका लिखी है।

८—**धर्मकीर्तिके ग्रन्थ** 'हेतुविन्दु'पर धर्माकरदत्तकी टीका थी जो अब अनुपलब्ध है। उसी ग्रन्थपर दुर्वेकमिश्रने यह टीका लिखी है।

९—**रत्नकीर्ति**। इनके न्यायपर छोटे छोटे नौ निबध (सर्वज्ञसिद्धि, अपोहसिद्धि, क्षणभगसिद्धि, प्रमाणान्तर्भाव-प्रकरण, व्याप्तिनिर्णय, स्थिर-सिद्धिदूषण, चित्ताद्वैतप्रकरण, अवयविनिराकरण, सामान्यनिराकरण) इनमेसे तीनको छोडकर बाकी सब अनुपलभ्य थे। रत्नकीर्ति १०वी शताब्दीके चतुर्थ पादमे विक्रमशिलाके प्रधान आचार्य थे।

१०—**ज्ञानश्री**। क्षणभगाध्याय। बौद्धोके मुख्य सिद्धान्त, कि दुनिया की सभी वस्तुये क्षणिक है, इसका इसमे प्रतिपादन किया गया है और त्रिलो-चन (वाचस्पतिमिश्रके गुरु) शकर आदि प्राचीन ब्राह्मण नैयायिकोके मतका खडन किया गया है। इसी ग्रन्थके आक्षेपोके उत्तरमे उदयनाचार्यने अपने आत्मतत्त्व-विवेक (या बौद्धाधिकार)को लिखा है।

११—किसी अज्ञात आचार्यने **'तर्क-रहस्य'** नामक न्यायका एक ग्रन्थ लिखा है।

१२—शायद उसी अज्ञात आचार्यने **'वादरहस्य'** नामक दूसरा ग्रन्थ लिखा है; जिसका कि प्रथम अध्याय उदयनके आत्मतत्त्वविवेकके खडनमें लिखा गया है।

इस यात्रामें उपलब्ध हुए दार्शनिक ग्रन्थोमे निम्नलिखित ग्रन्थ बडे महत्त्वपूर्ण है—

१—**असंग** (४ थी शताब्दीका अन्त)। योगाचारभूमि। योगाचार-के सिद्धान्त आचार्य शंकरके वेदान्तसे बहुत मिलते है, इसी कारण प्रति-

द्वन्द्वियोने शंकरको प्रच्छन्न बौद्ध कहा है। आचार्य असंग बौद्ध विज्ञान-वादियोंके प्रधान आचार्य है और उनके इसी ग्रन्थके नामपर पीछे सम्प्र-दायका नाम ही योगाचार पड़ गया। इस ग्रन्थके अनुवाद तिब्बत और चीनकी भाषाओंमे हो चुके है।

२—**वसुबन्धु**। अभिधर्म-कोष-भाष्य। बौद्ध दर्शनके जाननेके लिए यह सर्वोत्तम ग्रन्थ है। चीनी और तिब्बती दोनो भाषाओमे इसके अनुवाद मिलते है। चीनी भाषासे फ्रेंचमें भी इसका अनुवाद हो चुका है, किन्तु ऐसी आशा नही थी कि वसुबन्धुका भाष्य मूल संस्कृतमे मिल जायगा।

३—**भाव्य**। तर्कज्वाला (या मध्यमकहृदय)। योगाचार-माध्य-मिक सम्प्रदायका यह एक बडा ही प्रौढ ग्रन्थ है, जिसमे अनेक बौद्ध-बाह्य भारतीय दर्शनोकी खूब आलोचना की गई है।

इनके अतिरिक्त अभिधर्म-समुच्चय, महायानोत्तर-तन्त्र मध्यमकवि-भग-भाष्य (वसुबन्धु) आदि ग्रन्थोके भी खंडित अंश मिले है। कनिष्कके समकालीन कवि मातृचेटके अध्यर्द्ध-शतककी भी एक पूरी प्रति मिली है जिसमे बुद्ध और उनके सिद्धान्तोका स्तुतिरूपमे वर्णन किया गया है। यह चीनी परिव्राजकोके भारत आनेके समय नालंदा आदि विद्यापीठोमे बहुत प्रचलित था।

तीसरी बार मैने प्राय: ४० हजार श्लोको (१ श्लोक=३२ अक्षर) के बराबर ग्रन्थोको लिखा तथा १ लाख ६० हजार श्लोकोके बराबर फोटो लिये। फोटोकी सामग्रीकी कमीसे सभी आवश्यक ग्रन्थोका फोटो नही लिया जा सका। फिर भी जो दो लाख श्लोकोकी सामग्री मै अपने साथ लाया हूँ वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और जिसके सुचारु रूपसे सम्पादन करनेमे दर्जनों विद्वानोको अगले बारह बरस लगाने होगे। ग्रन्थोकी सूचना पाते ही कितने ही भारतीय और भारतसे बाहरके विद्वानोने पत्रो-द्वारा हर्ष प्रकट किया है और इस काममे सहायता देनेकी इच्छा भी प्रकट की है। इन महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थोके प्रकाशनके लिये कितनी ही भारतीय और अभारतीय संस्थाएँ

सहर्ष तैयार हो सकती है, लेकिन मै समझता हूँ कि इनमें अधिकांश ग्रन्थोंका प्रकाशन बिहारसे ही होना चाहिए, क्योंकि इनके रचयिताओंमे अधिक बिहारके नालदा और विक्रमशिला विद्यालयोके विद्वान् थे और तालपत्र-ग्रन्थ भी प्राय सभी बिहारमे ही लिखे गये थे।

इन ग्रन्थोमे हिन्दीके आदि-कवि सिद्ध सरहपाके दोहाकोष तथा कुछ और हिन्दी पद्य है। अबतक हिन्दी कविता-कालका आरंभ ग्यारहवी शताब्दीसे माना जाता था और उसके माननेका भी कोई वैसा प्रमाण नही था। ८४ सिद्धोके कालपर मै अलग लिख चुका हूँ जो फ्रांसीसी भाषाकी अति सम्मानित अन्वेषण-पत्रिका जूर्नाल-आसियातिकमे अनूदित होकर छप चुका है, और ग्रियर्सन जैसे भाषा-तत्त्वके विद्वानोंने भी इस कालको स्वीकार कर लिया है। सरहपा ८०० ईस्वीमें मौजूद थे, क्योंकि तिब्बती भाषामे अनूदित ग्रन्थ उन्हे पालवंशी महाराज धर्मपाल (७७०-८२५ ई०)का समसामयिक मानते है। मै चाहता हूँ कि सरहपाके सभी हिन्दी काव्यग्रन्थ मूल हिन्दीमे या तिब्बती अनुवादके रूपमे आधुनिक भाषान्तरके साथ सरह-ग्रन्थावलीके नामसे प्रकाशित किये जायँ जिसमे इस महान् हिन्दी कविके चरित और व्यक्तित्वपर भी प्रकाश डाला जाय।

पिछली यात्रामे ही तिब्बतमे मैने बोध-गया-मन्दिरके पत्थरके तीन और लकड़ीका एक नमूना देखा था। इनमे पत्थरवाले नमूने गयाके पत्थर-के है। शायद बारहवी शताब्दीसे पहले गयामे ऐसे नमूने बनकर बिका करते थे। तिब्बतके यात्री अपने साथ इन नमूनोको ले गये थे और आजकल वे नर्थङ तथा स-क्याके मठोमे रखे हुए है। उनके देखनेसे मालूम होता है कि बोधगयाके प्रधान मंदिर (जिसके पूरब तरफ तीन दरवाजे थे)के पश्चिम-की ओर बोधिवृक्षके पास भी एक दरवाजा-सा था। उसके आसपास, बहुतसे स्तूप और मदिर थे और सभी एक चहारदिवारीसे घिरे थे; जिसमे दक्षिण, पूर्व, उत्तरकी ओर तीन विशाल द्वार भिन्न भिन्न आकारके थे। वर्तमान बोधगया मदिरका, जब पिछली शताब्दीमें जीर्णोद्धार हुआ तो

उसके कितने ही भाग गिर गये थे और जीर्णोद्धारकोंके सामने पुराने मंदिर-का कोई नमूना नहीं था, इसीलिये तिब्बतमें प्राप्य नमूनेसे वर्तमान मंदिरमें कहीं कहीं विभिन्नता पाई जाती है।

तिब्बतके कुछ विहारोंमे कितने ही भारतीय चित्रपट भी मिलते है, जिनका अजन्ताकी कलासे सीधा सम्बन्ध है। इन चित्रोंके फोटो लेनेकी मेरी बड़ी इच्छा थी, लेकिन उनके फोटोके लिए खास प्लेटकी जरूरत थी जो मेरे पास मौजूद न थे।

सा-स्क्य मठके ग्य-ल्ह-ग्वङमे छोटी छोटी कई सौ पीतलकी मूर्तियाँ है जिनमे सौ से अधिक भारतसे गई हुई है। इनके बननेका समय ५वींसे १२वीं शताब्दी तक हो सकता है। इनमे ढाई दर्जनसे अधिक मूर्तियाँ तो कलाकी दृष्टिसे अत्यन्त सुन्दर है। कुछ मूर्तियोंपर लेख भी है। मैंने कितनी ही मूर्तियोंका इस बार फोटो लिया है।

पहली यात्राओंकी अपेक्षा मेरी इस बारकी यात्रा ग्याची, टशील्हुन्पो, सा-स्क्या इस छोटेसे त्रिकोण—जिसकी प्रत्येक भुजा ६०-६५ मीलसे अधिक नहीं होती—तक ही परिसीमित रही है। यह त्रिकोण वस्तुत भारतसे सम्बन्ध रखनेवाली साहित्य और कलाकी अनमोल सामग्रियोंका अच्छा संग्रह रखता है। मैं कमसे कम एक बार और मध्य-तिब्बतकी यात्रा करना चाहता हूँ और अच्छी तैयारीके साथ, जिसमे कि तिब्बतके जिन जिन भागोंमे भारतीय वस्तुओंके होनेकी संभावना पाई जाती है वहाँ वहाँ जाकर सभी चीजोंकी प्रतिलिपि या फोटो लिया जा सके।

---

(१५)

सारन (बिहार)

विस्तार और सीमा

'सारन' बिहारकी तिर्हुत कमिश्नरीका एक जिला है। इसका क्षेत्र-फल २६७४ वर्गमील है। यह गोरखपुर, बलिया, आरा, पटना, मुजफ्फर-पुर और चम्पारन जिलेसे घिरा हुआ है। इसकी उत्तरी और पूर्वी सीमा, गडक, पश्चिमी सीमा घाघरा (सरयू) और दक्षिणी सीमा गगा है।

इतिहास

प्राचीन समयमे कुछ दक्षिणपूर्वी भागके अतिरिक्त, सभी सारन जिला प्राचीन मल्ल देशमे था, जिन मल्लोकी एक शाखाके गणतत्रकी राजधानी 'कुसीनारा' (वर्तमान कसया, जि० गोरखपुर) थी। बुद्धके समय-मे 'गडक'का नाम "मही" पाली-ग्रन्थोमे मिलता है; और उसीको मध्यदेशकी यमुना, गगा, सरयू, अचिरवती (राप्ती) और 'मही' मे से एक कहा गया है। आज भी महरौडा फैक्टरीसे होकर बहनेवाली नदीका निचला भाग 'मही'के नामसे ही प्रसिद्ध है। यह 'मही' शीतलपुर स्टेशनके पास आकर पूरब तरफ घूम जाती है और सोनपुरमे हरिहरनाथ महादेवके पास जाकर गडकसे मिल जाती है। बुद्धके समय गंडक इसी धारासे बहा करती थी और शीतलपुर या दिघवाराके पास कहीपर गंगासे मिलती थी। उस समय 'मही'के पूर्वका भाग—जिसमे आजकल दिघवारा, मिर्जा-पुर, परसा और सोनपुरके थाने है—गडक-पारके देशसे मिला था। यह भाग

इस प्रकार वैशालीके शक्तिशाली प्रजातत्रके अधीन था। आज भी इस भाग-की भाषा सारनके और भागोंकी भाषासे कुछ भेद रखती है, और मुजफ्फर-पुर जिलेके गडकके किनारेवाले भागकी भाषासे मेल रखती है। उदाहरणार्थ जहाँ सारनके और भागोमे "न" (नही) कहते है, वहाँ, यहाँके लोग "नँ" (नही) कहते है। वस्तुत यह बोली आसपासकी भोजपुरी, मगही और मैथिली बोलियोसे भिन्नता रखती है। यह भाग, जो पहले वैशालीके लिच्छवी क्षत्रियोके वज्जी-गणतत्र (पचायती राज्य) मे था, गडककी धाराके बदल जानेसे 'सारन' मे चला आया। आज भी "मही" के पूर्वकी भूमि अधिकतर "बलुवा" (बालुका-मिश्रित) है, और साथ ही हरदिया आदिके 'चौर' (झील) भी इसी भागमे पडते है, जो बतला रहे है कि, किसी समय गडककी धार इन्ही जगहोसे बहती थी। लोग भी कहते है कि, यह सारी भूमि गंडककी चाली हुई है।

इस प्रकार वर्तमान 'सारन' जिला प्राचीन मल्ल और बज्जी देशोके भागसे बना है। उक्त दोनो ही देश स्वतन्त्रताप्रिय और प्रजातत्रवादी थे। कौन कह सकता है कि, आज सारन-वासियोमें जो निर्भीकता, जो स्वातंत्र्य-प्रियता जो उद्योगिता, जो साहसिकता पाई जाती है, उसको उन्होने अपने सहस्रो वर्ष पूर्वके पूर्वजोसे वरासतमे नही पाया है? गण-तत्र जब आगे जाकर मगध-साम्राज्यमे मिल गये, उसी समय सारनका भी मगध-साम्राज्यमे मिल जाना सभव है। मौर्योंके समयकी यद्यपि कोई चीज़ सारनमें नही मिली है, तोभी इससे यह निष्कर्ष निकालना ठीक नही होगा कि, उस समयकी कोई सामग्री यहाँ है ही नही। बात यह है कि, सारनमे चिराँद, माझी, घूरापाली, दोन, सिवान, कल्याणपुर, बढया, दिघवा-दुबौली, अमनौर, सारन, पपउर, सोनपुर आदि कितने ही स्थान प्राचीन ध्वसाव-शेषोसे पूर्ण हैं; लेकिन आजतक उनकी खुदाई की ही नही गई। सोनपुरमें, गंडकके किनारे कालीजीके मंदिरके पीछेवाली ठाकुरवाडीके आँगनमें, तुलसी-चौतरेसे जड़ा हुआ, शुङ्गकालीन (ईसा-पूर्व दूसरी सदीका) एक

स्तम्भ है। यह स्तम्भ उस समयके और स्तम्भोकी तरह चुनारके पत्थरका बना हुआ है। यह बुद्ध-गयामे प्राप्त कठघरे (Railing) के खम्भे जैसा है। इसके अतिरिक्त और भी छोटे-मोटे पत्थर उसी जगह निकले है, यद्यपि उनका समय नही कहा जा सकता। उक्त स्थानसे उत्तर तरफ मध्य-कालीन कुछ मूर्तियाँ भी मिलती है। दिघवा-दुबौलीमे एक ताम्रपत्र भी मिला है, जिसमे कन्नौजके गुर्जर-प्रतिहार-वंशीय राजा महेन्द्रपालने 'सावर्ण-गोत्री भट्ट पद्मसर'को एक गॉव दान किया था। उसमे यह भी मालूम होता है कि, उस समय ताम्रपत्रमे दिया गया गॉव श्रावस्ती-मण्डलके 'वाल्लसिका' विषय (जिला) मे था। आज भी वह ताम्रपत्र दिघवाके पॉडे लोगोके घरमे है। मालूम होता है कि, सातवी-आठवी शताब्दीमे 'सारन' कन्नौज-के अधीन था, इसलिये कन्नौज-राज्यके भीतर बसनेवाले अन्य ब्राह्मणोकी तरह सारन जिलेके ब्राह्मण भी कनौजिया कहे जाते है। सरयू-पारके होनेसे इन्हे 'सरयूपारी' या 'सरवरिया' भी कहते है। ब्राह्मणोंके अतिरिक्त हजाम, कोइरी, अहीर आदि जातियोमे भी कनौजिया काफी मिलते है। यही नही कि गुर्जर-प्रतिहारोसे पहले, जिस समय (७ वी शताब्दीमें) कन्नौजके सिहासनपर सम्राट् हर्षवर्द्धन विराजमान थे—उस समय, यह जिला कान्य-कुब्ज-साम्राज्यके अन्तर्गत था, बल्कि उनके स्वजातीय बैस-क्षत्रियोने, मालूम होता है, इस जिलेके 'इकमा' थानेके 'घूरापाली' गॉवमे एक गढ भी बनवाया था। आज भी बैसोका वह गढ सडकसे थोडा दक्षिण हटकर 'दिजोर'के नामसे प्रसिद्ध है। समयान्तरमे जब बैसोकी शक्ति क्षीण हो गई, तब वे लोग अपने गढको छोडकर और स्थानोमे—अतरसन, कोठियॉ-नरॉव आदि—चले गये। उनके वशधर आज भी इन जगहोमे मौजूद है। अतरसन और कोठियॉ-नरॉवके बैस-क्षत्रिय आज भी 'दिजोर'की सती-माईको पूजने जाते है। आज भी उन्हे अपनी प्राचीन स्मृतिका एक धुंधला सा ख्याल है। मालूम होता है, गढ छोडनेका कारण 'लाकठ' (राष्ट्रकूट या राठौर या गहरवार) हुए थे। संभवत. जब कन्नोजमें गहरवारोंका राज्य हुआ,

तब उसी समय उनके स्वजातीय 'लाकठ' लोग इधर आये। उन्होने बैस-क्षत्रियोकी प्रभुताको हटाकर अपना सिक्का जमाया। आज भी 'दिजोर'के आसपासके गॉव 'लाकठोके है। अतरसनमे भी, बैस-क्षत्रियोकी स्थिति बहुत खराब नही हुई थी। जान पड़ता है, तुर्कोंके आनेके समय अतरसन-मे एक अच्छा विष्णु-मन्दिर था, जिसकी काले पत्थरोकी विष्णुमूर्ति आज भी उपलब्ध होकर एक शिवालयमे रखी हुई है। वहीपर विशाल गणेश-की मूर्तिके खण्ड भी मिले है। साथ ही एक छोटी-सी बोधि-सत्वकी प्रतिमा यह बतला रही है कि, कभी यहॉ बौद्ध भी थे। जान पडता है, तुर्कोंने यहॉके मन्दिरोको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। पीछे कितने ही दिनोंतक कितने ही तुर्क यहॉ रहते भी थे, जिनकी तकिया और कब्रोकी हड्डियॉ आज भी उपलब्ध होती है।

'मॉझी'मे भी पालोके समयकी बुद्ध-मूर्ति मिलती है। 'चिरॉद'मे किसी एक बौद्ध विहार या स्तूपके ऊपर बङ्गालके शाहोकी बनवायी मस्जिद है। 'दोन'मे एक पुराने स्तूपका ध्वसावशेष मिला है। और जगहोंमे यद्यपि उतना अन्वेषण नही हुआ है, तो भी बडी-बड़ी ईटे, पुराने कुएँ आदि मिलते है। मालूम पडता है, तुर्कोंके हाथमें कन्नौजके चले जानेपर भी जयचन्दके पुत्र हरिश्चन्द्रका इस जिलेपर अधिकार था। हरिश्चन्द्रके बाद (१३ वी शताब्दी मे) यह जिला दिल्लीके अधीन हो गया। मुसलमानी समयमे जिलेका प्रधान स्थान 'सारन' था, जो आज भी एक बड़े लम्बे-चौडे 'डीह' (ऊँचे स्थान)पर एक छोटा-सा गॉव है। मुसलमानी कालमे इस जिलेका नाम 'सरकार सारन' था। १३ वी शताब्दीसे १८ वी शताब्दीतक यह जिला यद्यपि मुसलमानोके हाथमे रहा, तो भी सारनके उत्तरी भागका परगना 'कुआड़ी' और उसके आसपासके कुछ हिस्से प्रतापी बगौछियोके हाथमे था। इस वंशके लोग पहले कल्याणपुरमें राज्य करते थे, पीछे राजधानी 'हुस्मेपुर' हुई। जब अँगरेज़ोके आनेपर (१७६५ ई० में) वीरश्रेष्ठ महाराज फतेह साहीने अँगरेज़ोकी ताबेदारी स्वीकार न की,

तब कम्पनीसे बहुत सघर्ष हुआ। इस सघर्षमें महाराजको हुस्सेपुर छोड-कर 'तमकुही'के जंगलोमे चला जाना पडा। सारनके इस 'प्रताप' (फतेह-साही)ने महाराणा प्रतापकी तरह न जाने कितने कष्ट सहे, लेकिन तो भी जीवन-भर उन्होंने दासता स्वीकार नहीं की। अँगरेजोने १७९१ ई० मे उनका राज्य भाईके पोते छत्रधारी साहीको दे दिया। उस समयसे राजधानी 'हथुआ' हो गई।

उक्त बगौछिया-वश 'व्याघ्रपद-गोत्र'मे बना है। मल्लोंकी ९ शाखा-ओमे कोली भी एक शाखा थी, जिसके वंशमे सिद्धार्थ गौतमकी शादी हुई थी। ये कोली लोग व्याघ्रपद-गोत्रके थे, और मल्लोकी शाखा होनेके कारण अन्य मल्लोकी तरह इनके नामके साथ भी 'मल्ल' लगना स्वाभाविक था। 'हथुआ' के राजाओकी, पचासो पुरानी पीढियो तक, कल्याणमल्ल आदिकी तरह, 'मल्ल' उपाधि होती थी। वस्तुतः 'पड़रौना'के राजा साहब (जो आज-कल सैथवार कहे जाते हैं) और हथुआ तथा तमकुहीके बगौछिया (जो आज-कल भूमिहार-ब्राह्मण कहे जाते है) एवं मझौलीके राजा साहब (जो आज-कल बिमेन-राजपूत कहे जाते है) एक ही मल्ल-क्षत्रियोके वशधर है। कालान्तरमे, भिन्न-भिन्न जातियोसे विवाह-सम्बन्ध, प्रभुता-हानि, राज्य-क्रान्ति आदि कारणोसे, इन्हे तीन जातियों मे बँट जाना पडा। मझौलीके राजवंशमे भी राजाओके नाम 'मल्ल' ही पर होते है। सैथवारोमे तो गरीब-से-गरीब सैथवार मल्ल ही के नामसे पुकारा जाता है। आज भी यह जाति मल्ल-देशके केन्द्रमे बसती है।

सारनमे 'अमनौर'के बाबू साहब एक प्रतिष्ठित राजपूत-वंशके है। यह वश गहरवारों या राठौरोकी एक शाखा से है और यहाँ 'कर्मवार'के नामसे प्रसिद्ध है। कर्मवारोके पहले अमनौर चौहानोका था। अब भी आसपास-के कितने ही गाँवोमे चौहानोकी काफी सख्या है। तुर्कोंके आनेसे पहले भी यह स्थान अवश्य कुछ महत्त्व रखता था। आज भी अमनौरमें, "रहता बाबा"के नामसे प्रसिद्ध, विशाल विष्णुमूर्तिके सिहासन वाला काले पत्थर-

का भाग मौजूद है, जिससे मालूम होता है कि, किसी समय यहाँ एक विशाल विष्णु-मन्दिर था। पुराने गढ़का निशान अभी मौजूद है। यह मन्दिर संभवत: १३ वी शताब्दीमें तोड़ दिया गया होगा। तो भी बहादुर चौहान अपने अधिकारको छोड़नेके लिये तैयार न थे। दिल्लीको यहाँसे कौडी मिलनी मुश्किल थी । जान पडता है, इसीलिये बादशाहने 'मकेर' परगना (जिसमे 'अमनौर' है) एक मुसलमानी फकीरको माफी दे दिया। उक्त फकीरके साथ, दखल करनेके लिये, कर्मवार-क्षत्रिय अमनौर पहुँचे। कहते है, फकीरने अपने लिये सिर्फ 'मकेर' गॉव रखा और बाकी कर्मवारोको दे दिया। इसी वशके दो भाइयोमेंसे एक भाई किसी कारण मुसलमान हो गया, जिसके वशधर आज-कल मुजफ्फरपुर जिलेके परसौनीके राजा साहब हैं और दूसरेके वशधर अमनौर के बाबू साहब हैं। एक बार अमनौरकी सभी सम्पत्ति नष्ट हो चुकी थी, पीछे यहाँके कोई पुरुष पेशवाके दरबारमें गये और वहाँ उन्होने अपनी बहादुरीसे बड़ा सम्मान पाया। मराठा-साम्राज्यके नष्ट होनेपर उक्त पुरुष बहुत सम्पत्तिके साथ अमनौर आये और उन्होने फिर बहुत-सी जमीन्दारी खरीदी।

इनके अतिरिक्त किसी समय इस जिलेके अधिकाशके अधिपति 'एकसरिया भूमिहार' थे। यद्यपि इनकी अवस्था अब पहलेकी-सी नहीं है, तो भी चैनपुर और बगौराके बाबू लोगोंके पास काफी जमीन्दारी है। मुसलमानोमे 'खोजवाँ'के नवाबखान्दानकी बडी प्रतिष्ठा है। ये लोग शिया मुसलमान है, इसीलिये हिन्दुओसे इनका सम्बन्ध हमेशा ही अच्छा रहा है।

सन् १७६५ ई० मे ईस्ट इण्डिया कम्पनीको बिहार और बगालकी दीवानी मिली। उसी समय सारन जिला भी अँगरेजोके हाथ आया। पहले 'सारन' और 'चम्पारन' एक ही जिलेमे सम्मिलित थे। १८३७ ई० में 'चम्पारन' एक स्वतंत्र जिला मान लिया गया, लेकिन दोनोंकी माल-गुजारी अलग न की गई। १८६६ मे यह कर-विभाग भी अलग कर दिया

गया। जिस समय सारन और चम्पारनका एक जिला था, उस समय 'परसा' (थाना परसा) में दीवानी कचहरी थी और उसकी बड़ी श्रीवृद्धि भी थी। १८४८ ई० मे 'सिवान' और १८७५ ई० में 'गोपालगंज' नामके दो सब-डिवीजन कायम हुए, जिसके कारण वहाँ कचहरियाँ भी चली गईं और इस प्रकार सिवान और गोपालगंजकी तरक्की होने लगी।

नदियाँ, उपज और व्यापार

सारन जिलेमें यद्यपि धानकी खेती काफी होती है, तो भी कितने ही भाग रब्बी और खरीफके लिये ही उपयोगी है। किसी समय इस जिलेमें नीलकी बहुत-सी कोठियाँ थी, लेकिन नीलके उठने के साथ-साथ अब वे भी खतम हो गईं। इस जिलेमें ईख भी अच्छी होती है। महरौड़ा, पँचरुखी, महाराजगज, सिवान सिधवलिया, शीतलपुरके चीनीके कारखानोके कारण ईखकी खेतीमे और भी तरक्की हुई है। यद्यपि सिचाईका समुचित प्रबन्ध नही है, तोभी कईएक इलाकोंकी ईख इन कारखानोके द्वारा खतम नही होने पाती। 'कुचायकोट'के दीयरकी कुछ ईख तो सदा जला देनी पडती है। आज भी इस जिलेमें आधे दर्जन बड़े-बड़े चीनीके कारखानोकी गुञ्जायश है। मसरखथावे-लाइन (बी० एन० डबल्यू० रेलवे) के खुल जानेसे ईख बोने वालोको और भी आसानी हो गयी है।

महाराजगंज और मीरगंजकी मण्डियोमें कपासकी काफी आमदनी होती है। यद्यपि कपासकी खेतीके लिये उत्साह और उत्तेजना देने का प्रबन्ध नही है, तो भी कपास बोई जाती है और कपास बोने योग्य भूमि भी बहुत है। किसी समय जब इन दोनो जगहोमें कपड़ेके कारखाने खुल जायेंगे, तब इसमे शक नही कि, कपासकी खेतीमें भी वैसी ही उन्नति होगी, जैसी चीनीके कारखानोसे ईखकी खेतीमें। भाठ जमीनमें रेड़ीकी भी खूब खेती होती है। इनके अतिरिक्त जौ, गेहूँ, सरसों, मटर,

चना, मकई आदिकी पैदावार भी होती है। 'कुआडी' परगनेकी तरफ कोदो और अन्य स्थानोपर मँडुएकी भी खेती होती है। जिलेके गरीब किसान अधिकतर मँडुआ, मकई, कोदो और शकरकद तथा सुथनीपर ही गुजर करते है।

यहाँकी आबादी बहुत ही घनी है। जोतने लायक भूमि सभी जोती जा चुकी है। पशुओके चरनेके लिये बहुत कम जगह बाकी है। खेतके जोतने-बोनेमे जितना परिश्रम यहाँके किसान करते है, उतना बिहारके किसी जिलेके नही। एक तरहसे, प्राचीन ढँगके अनुसार खेतीकी जितनी उन्नति की जा सकती है, उतनी यहाँ हो चुकी है। इसमें और अधिक उन्नति करनेके लिये वैज्ञानिक रीतिका अवलम्बन करना होगा, जिसमे अनेक कठिनाइयाँ है। पहली कठिनाई यह है कि, खेत बहुत छोटे-छोटे टुकडोमे बँट गये है और कई जगह बिखरे हुए है। दूसरी कठिनाई यह है कि, सिचाईका ठीक प्रबध न होनेके कारण लोगोको अधिकतर दैवपर भरोसा रखना पडता है। तीसरी बात यह कि, और जगहोकी तरह यहाँके किसानोका भी सहयोग-समितियो, सरकारी वैज्ञानिक खेतो और कीमती कलोपर विश्वास नही है, क्योकि ये चीज़े ऐसे लोगो और महकमो द्वारा उनके सामने पेश की जाती है कि, वे उन्हे अपने बस और नफेकी बात नही समझते। इन कठिनाइयोके हट जानेपर इसमे शक नही कि, यह जिला सबसे पहले नवीन ढँगकी खेतीको अपनायेगा। क्योकि घनी आबादी और अधिक जनसख्याके कारण इस जिलेमे जीवन-सघर्ष अधिक है। यहाके निवासी बहुत पहलेहीसे आमदनीके हर-एक रास्तेको स्वीकार करनेके लिये तैयार है। यहाँके स्वतंत्र-व्यवसाय-प्रेमी निवासी, किसान, दूकानदार, हजाम, मजदूर, दरवान आदि केवल बिहारहीके हर एक जिलेमे नही, बल्कि दार्जिलिङ्ग, कलकत्ता, रगून, पूर्व बगाल, आसाम, बर्मा और सिगापुर तक फैले हुए है। यहाँ तक कि, समुद्र-पार मोरिशस, दक्षिणी अफ्रीका, फीजी, ट्रिनीडाड, गायना आदिमे भी हजारोकी संख्यामे जाकर बस गये है। अपनी भाषा, भेष और व्यक्ति-

त्वका जितना खयाल सारन-निवासियोको है, उतना शायद ही किसी और जिलेके निवासियोंको होगा। यहाँके उच्चशिक्षित जन भी घर या बिदेशमे—कही भी—मिलनेपर, अपनीही बोली (भोजपुरी भाषा)का प्रयोग करते हैं। चाहे यहाँके हिन्दू और मुसलमान घरमें लड़ते भी हों, तो भी विदेशोमे जानेपर अक्सर देखा जाता है कि, वे मजहबसे भी अधिक अपने जिलेको मानते हैं।

गगा, सरयू, गंडक—इन तीन बडी नदियोके अतिरिक्त झरही, दाहा आदि कितनीही नदियाँ इस जिलेमे है, जो अधिकतर किसी झीलसे निकली हैं अथवा जो गडक, घाघरा (सरयू) या गगासे निकलनेवाले सोते (स्रोत) हैं। गंडककी धारा अनिश्चित है, इसी कारण सारे जिलेमे उसके लिये एक मजबूत बाँध बाँधा गया है। यद्यपि इस बाँधके कारण आसपासकी बस्तियाँ बाढसे सुरक्षित है, तो भी बाढकी उपजाऊ मिट्टी न मिलनेके कारण आसपासके खेतोकी उर्वरा-शक्ति बहुत ही क्षीण हो गई हैं। यह अन्तर फसलके वक्त गडकके बाँधपर खडा होकर दोनो ओर देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है। जहाँ बाँधके भीतर बिना खाद, सिचाई और काफी जुताईके ही फसल उपजकर गिर जाती है; वहाँ बाँधसे बाहर पीले-पीले पौधे एकदम मुर्झाये हुए दीख पड़ते है। गडककी धार बहुत ऊँचेसे बहती है, इसीलिये अल्प परिश्रमसे नहरे निकाली जा सकती है। पहले 'सारन-केनाल' (Saran Canal)की नहरे काम भी कर रही थी; लेकिन कितने ही वर्षोसे सरकारने उन्हे बन्द कर दिया है। इसी तरह कुछ झीलो (चौरो)से पानीका निकास न होनेके कारण फसलका नुकसान होता है। उदाहरणार्थ हरदियाका चौर है। लेकिन अभी तक सरकारको उधर ध्यान देनेकी फुरसत ही नही है। छपरा मुफस्सिल थानेके कितने ही स्थानोको सरयू और गगाका पानी नहरो द्वारा मिलता था, किन्तु न अब जमीन्दारोको उसकी परवाह है न सरकारको!

छपरा, सिवान, महाराजगंज और मीरगज इस जिलेमें व्यापारके केन्द्र

है। इसके अलावा मसरख, मैरवाँ, थावे, बरौली आदिमें भी अच्छे बाजार हैं। सिवानमें मिट्टी और काँसेके बरतन अच्छे बनते हैं। परसा (थाना इकमा)में भी काँसेके बरतनोकी अच्छी ढलाई होती है। चिराँद और दिघवारेके आसपास पानकी उपज अच्छी होती है। इस जिलेमे "परवल"की पैदावार भी खूब होती है।

जाति और सम्प्रदाय

इस जिलेमे सत्तासी फ़ीसदी से अधिक संख्या हिन्दुओकी है, बाकी मुसलमान हैं। ईसाई या दूसरे मजहबवाले नाम-मात्रके हैं। 'मुसलमान' सिवान और बड़हरिया थानेमे अधिक हैं, जिनमे जुलाहा, धुनिया आदिकी सख्या ज्यादा है। कितने ही राजपूत और भूमिहार 'मुसलमान' होकर अब पठान कहे जाते है! कितने ही बढई, माली और तेली भी मुसलमान पाये जाते हैं। इसी प्रकार 'कुआड़ी' में कितने ही हिन्दू दर्जी भी हैं। हजाम और धोबी दोनो मजहबके पाये जाते हैं। शिया मुसलमानोकी सख्या बहुत कम है, तो भी वे अधिक शिक्षित, सभ्य और धन-सम्पन्न हैं। अधिक सख्या यहाँ अहीरोकी है। परसा और मिर्जापुरके थानेमे; सरयू, हैं। हिन्दुओमें गंगा और गंडकके दीयरों और कछारोंमे, गोचर-भूमिकी अधिकताके कारण, इन (अहीरो)की संख्या अधिक मिलती है। यह बडी मेहनती और बहादुर जाति है; लेकिन गाय-भैंसोके पालनेकी पहले-जैसी सुविधा न होनेके कारण इनकी आर्थिक अवस्था बहुत गिरी हुई है। इस जिलेके लोगोंको पशु-रक्षासे बड़ा प्रेम है और वे अपने बैलोको खिला-पिलाकर जगह-जगह लगनेवाली हाटोमे बेंचते रहते हैं।

अहीरोंके बाद इस जिलेमे राजपूत, ब्राह्मण और भूमिहार ही संख्यामें अधिक हैं, जिनमे स्वावलम्बी एवं स्वाभिमानी भूमिहार-ब्राह्मण आर्थिक दृष्टिसे सबसे अच्छे हैं। शिक्षामे कायस्थोके बाद इन्हींका नम्बर है। इनके अतिरिक्त चमार, दुसाध आदि जातियाँ भी हैं। कोइरी ऐसे तो जिले

भरमें फैले हुए हैं; लेकिन 'कुआड़ी'में उनकी संख्या अधिक है। जैसवार-कुर्मीके अतिरिक्त अवधिया लोग मिर्जापुर तथा परसा थानेमें अधिक मिलते हैं। राजपूतो और भूमिहारोमे कितनी ही एक ही गोत्र और एक ही मूलकी उपजातियाँ है। जैसे टेटिहा राजपूत और टेटिहा भूमिहार दोनो ही के गोत्र काश्यप है। जान पड़ता है ये जातियाँ एक ही वंशकी दो शाखाएँ है, जो कालान्तरमे दो—ब्राह्मण और क्षत्रिय—वर्णोंमें विभक्त हो गईं। इसी प्रकार कितने ही भूमिहार 'ब्राह्मण' और कितने ही ब्राह्मण 'भूमिहार'के रूपमे परिणत हो गये। इसके अनेक उदाहरण मिलते है। हिन्दुओमे शैव, वैष्णव, कबीरपन्थी, शिवनारायणी, आर्य-समाजी आदि कितने ही मतके आदमी मिलते है।

मेले

गाय, बैल, हाथी घोडा, सभीके क्रय-विक्रयके लिये 'सोनपुर' (हरिहर-क्षेत्र) का मेला सारे हिन्दुस्तानमें प्रसिद्ध है। सोनपुरमे, कार्तिकी पूर्णिमाको, १५ दिनोके लिये, एक खासा शहर बस जाता है, जिसमे हिन्दुस्तान भरके सौदागर हर तरहकी चीज़े बेचनेको लाते है। उस वक्त तो कई हजार हाथी ही बिकनेको आते है। मेलेमे अब पानीके कलका भी प्रबन्ध हो गया है और आशा की जाती है कि, कुछ दिनोमे बिजलीकी रोशनी और स्वास्थ्यरक्षा तथा सफाईका भी पूरा प्रबन्ध हो जायगा। १८५७ के सिपाही-विद्रोहके समय भी यह मेला लगता था, तो भी वृद्धोका कहना है कि, पचास-साठ वर्ष पहले यह मेला इतना बडा न था। मुसलमानी शासनके अन्तिम दिनो या कम्पनीके आरम्भिक दिनोमे इस मेलेका आरम्भ हुआ जान पड़ता है। हाँ, हरिहरनाथकी पूजाका छोटामोटा मेला पहलेका भी हो सकता है। सोनपुरके अतिरिक्त चैत्र-रामनवमीको लगनेवाला 'डुमरसन' का घोड़ा-बैल-का मेला भी प्रसिद्ध है। बरईपट्टी, छितौली आदिमें भी घोड़ा-बैलके मेले लगते है। ऐसे तो हाटकी तरह सप्ताहमे बैल-हट्टा पचासों जगहोंमें लगा

करता है। देवताओ और स्नान-सम्बन्धी मेलोंमे सेमरिया, आमी, सिल्हौरी, ढोढ़नाथ, मेहदार, थावे और मैरवाँके भी मेले उल्लेखनीय हैं।

साहित्य और शिक्षा प्रचार

यहाँके पुराने समयके साहित्यिकोका कोई पता नही मिलता। मल्ल और वज्जी दोनो ही देशोमे अब्राह्मण धर्मोकी ही प्रधानता थी। जरूर उस समय यहाँके लोगोमें कवि और विचारक पैदा हुए होगे; लेकिन मालूम होता है कि, पीछे ब्राह्मणोकी प्रधानता ओर बौद्धधर्मके लुप्त हो जानेके कारण उनके नाम और उनकी कृतियाँ, दोनो ही लुप्त हो गये। मुसलमानी जमाने-मे, शाहजहाँके समय, माझीमे धरणीदास नामक एक सन्त और कवि हुए थे, जिनके 'ज्ञानप्रकाश' और 'प्रेमप्रकाश' नामक दो ग्रन्थ अब भी मौजूद हैं। माँझीके मुसलमान-राजपूत बाबू लोग कविताके बडे ही प्रेमी थे। जमीन्दार भी उस वक्त साहित्यकी ओर रुचि रखते थे। कबीर-पन्थियोका अत्यन्त पुराना मठ 'धनौती' में आज भी विद्यमान है। कवि धरणीदास (१७ वी शताब्दी)के बादके साहित्यिकोके नाम भी आज-कल मिलने मुश्किल हैं। १९ वीं शताब्दीके मध्यमें गयासपुर (थाना 'सिसवन')के 'सखावत' ने वीर कुँवरसिहका "कुँवर-पचासा" बनाया था, जो अभी तक अप्रकाशित है और जिसका एक पद्य इस तरह है—

> **"बारह सौ एकसट्ठमें, ग्रीषम रितु जेठ मास।**
> **बाबू कूँअर सिह ने, किय गोरनको नास॥"**

सखावतने रावण-मन्दोदरी-सवाद भी लिखा था। उनकी कविताएँ अब भी कुछ लोगोको कण्ठस्थ है, लेकिन पाठ बहुत अशुद्ध हो गये है। उनके बाद १९ वी शताब्दीके अन्तमें माँझा के स्वामी बाबू श्रीधर साही तथा पटेढ़ीके बाबू नगनारायण सिह भी अच्छे साहित्य-प्रेमी तथा स्वय कवि थे। उक्त श्रीधर कविकी एक कविता इस प्रकार है—

"एरी रसना तू रसवाली चाहबे तो,
रसका पियाला मै पिलाऊँ तोहि रहु-रहु।
यही लोभ लिये मैं तो मेवाजात काबुलको,
मोल ले खिलाऊँ औ खिलाऊँ जौन चहु-चहु।
पालि-पालि श्रीधर रिष्ट-पुष्ट कीन्हों तोहि,
पावन हुआ चाहु तो ऐसो लाहु लहु-लहु।
रैन-दिन जामहूँमें घरी-छन कामहूँमें,
राधाकृष्ण राधाकृष्ण राधाकृष्ण कहु-कहु॥"

पिछली शताब्दी और वर्तमान शताब्दीमे तो इस जिलेने कई लेखक और वक्ता पैदा किये है। सस्कृतके दिग्गज विद्वान्, हिन्दीके सुलेखक महा-महोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा को पैदा करनेका सौभाग्य इसी जिलेको है। [1]पण्डित गयादत्त त्रिपाठी, पण्डित शिवशरण शर्मा, 'सूर्योदय' सम्पादक पण्डित विन्ध्येश्वरी प्रसाद शास्त्री, पण्डित गोपालप्रसाद शास्त्री आदि कितने ही उच्च-कोटिके सस्कृतज्ञ विद्वान्, वक्ता और लेखक इस जिले-मे वर्तमान है। हिन्दी-लेखकोमे बाबू राजवल्लभ सहाय, बाबू दामोदर सहाय सिह 'कविकिंकर', बाबू पारसनाथ सिह बी० ए०, एल०-एल० बी०, पण्डित जीवानन्द शर्मा 'काव्यतीर्थ' ('श्रीकमला' और 'प्रजाबधु'-के भूतपूर्व सम्पादक), गोस्वामी भैरव गिरि, बाबू विश्वनाथ सहाय ('महावीर'-सम्पादक) आदि भी यहीके है। पटनेके अँगरेजी दैनिक 'सर्चलाइट'-के सम्पादक बाबू मुरलीमनोहरप्रसाद वर्मा भी इसी जिलेके हैं।

बिहारमें सबमे ज्यादा शिक्षाका प्रचार इसी जिलेमे है। यहाँ कही भी एक मीलमे दूरपर स्कूल नही है। इस जिलेमे २० के करीब हाईस्कूल

---

[1]स्वनामधन्य विद्या-प्रेमी स्वर्गीय खुदाबख्श खाँ भी इसी जिलेके निवासी थे, जिनकी जगत्प्रसिद्ध ओरिएण्टल लाइब्रेरी पटनेमें मौजूद है।
—लेखक

और ३५ के करीब मिडल इं० स्कूल हैं। इस जिलेमें प्रायः १० वर्षोंसे मिडिल तक हिन्दी-शिक्षा निःशुल्क है। जिला-बोर्डोंमे सुधारके साथ ही, सौभाग्यसे, इस जिलेको स्वर्गीय महात्मा मजहरुलहक साहब-जैसा चेयरमैन मिला। उन्होंने अपना सारा समय जिलेमें शिक्षा प्रचार करनेमें लगा दिया था। उसी समय स्वर्गीय बाबू राधिकाप्रसादजी इस जिलेके स्कूलोंके डिपुटी-इन्सपेक्टर थे। इस सुन्दर जोड़ीके मिल जानेसे इस जिलेने पिछले १० वर्षोंमें शिक्षामे बडी उन्नति की। लोगोंमें अंग्रेजी मिडिल स्कूल और हाईस्कूल खोलनेकी तो होड-सी लग गई। इतनी माध्यमिक शिक्षा-सस्थाओके खोलनेका उत्साह बिहारके और किमी जिलेमें देखा नही जाता। स्कूल खुलने नही पाता कि, विद्यार्थी भर जाते है।

जन-नायक

स्वर्गीय महात्मा मजहरुलहक साहब, बाबू राजेन्द्रप्रसाद और बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद-जैसे नेताओकी जन्मभूमि भी यही जिला है। यहाँ ऐसे जन-नायकोंकी काफी संख्या है, जो दूसरे जिलोमे जाकर आसानीसे सर्व-मान्य नेता बन सकते है।

मल्ल (पहलवान)

ग्रियर्सनने भोजपुरी बोलीको बहादुरोकी बोली बतालाया है, लेकिन 'सारन' केवल भोजपुरी बोली ही नही बोलता, बल्कि यहाँके निवासी बड़े सबल-शरीर भी होते है। प्राचीन मल्ल देशके सम्बन्धसे ही शायद पहल-वानोंको 'मल्ल' कहते है। यहाँके लोग बिहारके और जिलोकी अपेक्षा अधिक मजबूत और मोटे-ताजे होते है। यद्यपि कुश्तीका पहले जैसा शौक अब लोगोमें नही देखा जाता, तो भी यहाँकी भूमि कभी-कभी बड़े बड़े पहल-वानोंको पैदा कर देती है। भारत-प्रसिद्ध पहलवान स्वर्गीय बाबू सुचित

सिह यहींके थे। आज भी, अन्य कई पहलवानोंके अतिरिक्त, बाबू वंशीसिंह नामक बड़े ही प्रसिद्ध पहलवान इसी जिलेके हैं।

शहर और कस्बे

"छपरा"—अँगरेजोंके आने से पहले 'छपरा'का उतना महत्त्व न था, लेकिन कम्पनीके आनेके साथ ही यहाँकी श्रीवृद्धि हुई। अँगरेजों और दूसरी यरोपीय जातियोंने यहाँ अपनी कोठियाँ खोली। गंगा और घाघराके पास होनेके कारण यहाँ मालसे भरी नावो के आने-जानेकी आसानी भी थी। पीछे अनेक व्यवसायी आकर बसने लगे। सारन-जिलेका मुख्य केन्द्र-नगर हो जानेपर तो इसके लिये और भी तरक्की-का रास्ता खुल गया। आज-कल इस शहरकी आबादी आधे लाखके करीब है। यहाँ सरकारी कचहरियोके अतिरिक्त चार हाईस्कूल, आदमी और जानवरोके अस्पताल है। यहांसे एक रेल-पथ 'सोनपुर' होता हुआ कटिहारकी ओर गया है; दूसरा माँझी होकर बनारसकी ओर; तीसरा सिवान होकर गोरखपुरकी ओर; चौथा मसरख, गोपालगज और थावे होता हुआ सिवानमें आ मिला है। 'पटना' जानेके लिये 'सोनपुर'से पहलेजा-घाट जाना पड़ता है। इसी प्रकार दुरौधासे एक लाइन महाराजगजको और थावेसे एक लाइन कप्तान-गंज और गोरखपुरको गई है । यद्यपि यह नगर सारन जिलेके बीचमें न होकर एक किनारेपर है, तो भी यहाँ चारो ओरकी रेलोंका मिलान होता है। भोजपुरी-भाषा-भाषी प्रदेशके तो यह केन्द्र में अवस्थित है, इसीलिये यहाँकी भोजपुरीका टकसाली होना स्वाभाविक है।

"रिविलगंज"—पहले यहाँ व्यापारकी एक मण्डी थी। गंगा और सरयूका यही संगम होता था। किन्तु आज-कल रेलके हो जानेसे इसका वह महत्त्व जाता रहा । यद्यपि यहाँ म्युनिसिपैलिटी है, तो भी कस्बेकी अवस्था दिन-पर-दिन गिरती ही जाती है।

"सिवान"—सारन जिलेके एक सबडिवीजनका यह सदर है। यहाँके मिट्टी और काँसेके बरतन बहुत मशहूर हैं। इसका दूसरा नाम 'अलीगंज' भी है। यहाँ ईखके दो और रुई धुननेका एक कारखाना है। उद्योग-धन्धेकी वृद्धिकी और भी गुंजाइश है। यहाँ दो हाईस्कूल भी हैं।

"हथुआ"—यह इस जिलेके सबसे बड़े जमीन्दार महाराजा-बहादुर हथुआकी राजधानी है। यहाँ भी राजकी तरफसे एक हाईस्कूल है। इधर बहुत वर्षोंसे राजकी तरफसे किसी भी सार्वजनिक कामके लिये कोई उद्योग नहीं हुआ है और न कस्बे ही की उन्नतिके लिये कुछ किया गया है।

---

(१६)

सहोर और विक्रमशिला

आधुनिक कालमे शरच्चन्द्रदास सर्वप्रथम भारतीय है, जिन्होने भोट और भोटिया साहित्यकी खोजमे सर्वप्रथम प्रयत्न किया। उन्होंने भोटमे प्रथम भारतीय प्रचारक 'तत्त्वसग्रह' कार, महान् दार्शनिक, नालन्दाके आचार्य शान्तरक्षित (अष्टम शताब्दी)को बगाली लिखा। उन्हीका अनुकरण करते हुए डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्यने तत्त्वसग्रहकी[१] भूमिकामे सहोरको ढाका जिलेके विक्रमपुर परगनेका साभर ग्राम निश्चय कर डाला, भट्टाचार्य महाशयके इस निश्चयके लिये उन्हे कुछ नही कहा जा सकता; क्योकि उन्होनें भोटिया ग्रथोको देखा नही। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि अनेक दृढ तथा स्पष्ट प्रमाणोके होते, स्वर्गीय श्री शरच्चन्द्र दास तथा महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण इस निश्चय पर कैसे पहुँचे। इसके दो ही कारण हो सकते है, या तो उनके सामने वे सारे प्रमाण वाले ग्रथ नही थे, अथवा उन्होने भी कितने ही बगाली विद्वानोकी भाँति, भारतके सभी मस्तिष्कोको बगाली बनानेकी धुनमे ऐसा किया।

जिस स्थान सहोर तथा 'भगल' (भगल)के कारण यह गलती हुई है, वह आचार्य शान्तरक्षितके अतिरिक्त विक्रमशिलाके आचार्य दीपकर श्रीज्ञानकी भी जन्म-भूमि थी। इस स्थानके विषयमे भोटिया ग्रथोसे यहाँ कुछ उद्धरण देना चाहता हूँ।

---

[१] तत्त्वसंग्रह—Vol II. p. XIII.—Gaikevad's Oriental Series.

ल्हासाके पास ही छुन्-जे-लिङ्-गुम्वा-विहार है। इसके छापाखाना के (ङ) नामक पोथीके पृष्ठ १५२—९२ मे दीपकर श्रीज्ञानकी जीवनी है। उसमे लिखा है:—

(पृ० १५२) "सस्कृत भाषा मे दीपंकर श्रीज्ञान भोटकी भाषामे द्‌पल्-मर्-मे-म्‌ज़द्-ये-शेस्। अन्य नाम जो-वो (भट्टारक) तथा अतिशा है। ..... जन्म देश है, (१) भारतकी पूर्व दिशा में सहोर। वहाँ (२) भगल नाम का बडा पुर (नगर) है।...... जिसके अन्दर राजप्रासाद काचन-ध्वज (ग्सेर्-ग्यि-र्‌ग्यल-म्‌छन्)...... था।.....। पिता थे राजा कल्याण श्री (द्‌गे-वई-द्‌पल्).....। माता श्री प्रभावती (द्‌पल्-मो-ओद्-ज़ेर्-चन्)....। दोनो को (एक) पुत्र जल-पुरुष-अश्व-वर्ष (छु-फो-र्त-लो= मन्मथ सवत्सर १०३९ विक्रमाब्द, ९८२ सन् ई०) मे हुआ।...... (पृष्ठ १५३)...... उस प्रासाद (काचन ध्वज) के (३) नातिदूर (मि-रिङ्-व-शिग्-व) विकमल पुरि (? विक्रमशिला) नामक विहार (ग्‌चुग्-लग्-खङ) है।.....। पाँच सौ रथोको ले परिवारित राजा ... उस विहार मे गये।....(पृ० १५५)...... उस प्रासादके नातिदूर एक आवास मे जितारि .... रहते है, सुना।......।"

ल्हासा और भोटका सबमे बडा विहार डे-पुङ (ऽब्रस्-स्पु ङ्स्) है। जिसमे सात हजारसे अधिक भिक्षु वास करते है। पाँचवे दलाई लामा ब्‌लो ब्-जङ-र्‌ग्य-म्छो (सुमति सागर १६१८—८४ ई०) यही के एक महन्थ थे, जिनको मगोलो ने भोट देश सारा जीतकर, गुरु दक्षिणा मे दिया। और उन्हीके उत्तराधिकारी और अवतार वर्त्तमान तेरहवे दलाई लामा थुब्-ब्‌स्तन्-र्‌ग्य-म्छो (मुनि शासन सागर) है। इस विहारके छापाखानेके (जौ नामक पोथी मे 'गुरु गुण धर्माकर !(ब्ल्-मइ-योन्-तन्-छोस्-क्यि-ऽब्युङ-ग्‌नस्) नाम वाला दीपकरका जीवन चरित है। इसमे लिखा है—

(पृ० १) "भारत पूर्व दिशा सहोर देशोत्तममे, भगल नामक पुर है। इसके स्वामी धर्मराज कल्याण श्री.....। प्रासाद काचन ध्वज। मनुष्यो-

के घर एक लाख....। धर्मराजकी रानी श्री प्रभावती...।....(६) उस प्रासादके उत्तर दिशामें विक्रमल पुरी (=विक्रमशिला) है। उस विहार में जाकर पूजा करनेको माता पिता..पाँच सौ रथोके साथ....।"

पीछे पढ़ने तथा भिक्षु बननेके लिए नालन्दा[1] जानेपर (१००२ ई०?) दीपंकरने नालन्दाके राजा (विग्रहपाल द्वितीय ?)को कहा था—(पृ० ७) "....मै पूर्व दिशा सहोर देशसे आया हूँ। काचनध्वज प्रासाद से आया हूँ।.....नालन्दाके राजाने कहा—तुम पूर्व दिशा सहोर राजाके कुमार हो।..(७) तुमने[2] विक्रम पुरमेही अनन्त देववदन सदृश रत्न-प्रासाद मे भिक्षु बननेको मनमे नही किया.....।....(पृ०९) "मै भगलके राजाका पुत्र हूँ। काचनध्वज महलसे आया हूँ। नालन्दा विहार आया।......।"

इसी (ज) पोथीके चौथे ग्रंथ "जो-वो-द्पल-ल्दन्-मर्-मे-म्ज़द्-ये-शेस्-क्यि-र्नम्-थर्-ग्यंस्-प" (भट्टारक दीपकर श्री ज्ञानकी वृहत् जीवनी) में आता है।

(पृ० २१) "(८) श्री वज्रासन (बुद्ध गया)की पूर्व दिशामे भंगल महादेश है। उस भगल देशमे बडा नगर है भिक्रपुरी....। (९) इस (देश)का नामान्तर सहोर है। जिसके भीतर (१०) भिक्रमपुरी नामक नगर है।......" फिर लिखा है (पृ० २२) "....पूर्व दिशा देशोत्तम सहोर है। वहाँ भिक्रमलपुरी महानगर है....।"

---

[1] नालन्दा (बड़गाँव) से बिहार शरीफ ६ ही मील पर है, जो कि पाल-बंशियों की राजधानी थी।

[2] भोटिया में है—ग्योदं क्यि कं वि क्रं मं नि इं पु रं न। वकोनं चोगं कों ब्रउंङ लहं यि गशत्यं यसं अद्रं। खं तुं क्युङ् वं बसमं ग्यिसं मि ल्पवं बशुगस।—

इसी ग्रन्थमे विक्रम शिलाके निर्माणके सम्बन्धमे यह बातें मिलती है—(पृ० ३९) "···· सस्कृत भाषामे नाम 'गोपाल' है।·· ··उसके ····पुत्र····राजा धर्मपाल··· (पृ० ४०) इस राजाका पुत्र··· देवपाल नामक हुआ।·· इस राजाने·· विहार बनवाया···नाम विकमलशील हुआ।······।"

तिब्बतसे जो लोग दीपकरको बुलाने आये थे उनका विक्रम-शिला का मार्ग इस प्रकार था—

(पृ० ४९) "···नेपालसे·····भारत मध्य देशमे पहुँचे। (१०) जानेपर गगा नदी है। दिन समाप्त होते गगा नदीके घाटपर पहुँचे। ··· (पृ० ५०) ·· वहाँ गगा नदीके तटपर (११) एक पहाड़ी (ब्रग्-देउ-शिग्=शिला)के ऊपर विक्रमशिला थी। वहाँ जा उसके पश्चिमके मुसाफिरखानामे जा···।"

लामा कुन्-म्ख्येन्-पद्-मद्कर्-पो (सर्वज्ञ पुण्डरीक)के छोस्-ब्युङ (धर्मोद्भव)मे इस विषयमे यह बाते मिलती है—

(पृ० १४०) "(दीपकर) पूर्व दिशा भगलके काचनध्वज प्रासादमे बोधिसत्व शातरक्षितके जाति वाले क्षत्रिय वशमे (उत्पन्न हुये। उनके) पिता कल्याण श्री और माता श्री प्रभावती ·। अवधूतिपाद (=मैत्रिपाद=अद्वयवज्र)के पास १२ वर्षसे १८ वर्ष तक। (पृ० १३५)··· उस समय विक्रमशिलाके पूर्व दिशामे शातिपाद (=रत्नाकरशान्ति)। दक्षिण दिशामे वागीश्वर ··। पश्चिम दिशामे प्रज्ञाकर मति। उत्तर दिशामे श्री नारोपा (नाडपाद)· ··(पृष्ठ १४८) उस समय (भिक्षु) सघके चार वर्ग थे—ओडन्तपुरी[1], श्री नालन्दा, वज्रासन और विक्रमशिला। (दीपकर) पिछले (१३) अपने जन्म वाले विहार मे वास

---

[1] ओडन्तपुरी या उडयन्तपुरी वर्तमान बिहार शरीफ है, जिसके पास वाली पहाड़ी पर विहार था। वहीं पर आजकल दर्गाह है।

करते थे।·····(पृष्ठ १५६) विक्रमशिलामें छै द्वार-पंडित थे। पूर्व दिशाके द्वारपाल (पंडित) रत्नाकरशान्ति (शातिपा)···व्याकरण और न्यायमें···। दक्षिण दिशामे वागीश्वर कीर्ति व्याकरण, न्याय, काव्यमे ····। पश्चिम दिशामे प्रज्ञाकर मति····। उत्तर दिशामें भट्टारक 'नरोत्पल' महायान और तत्रमे। मध्यमे···दो (पडित) रत्न वज्र तथा ज्ञानमित्र, काश्मीरिक ज्ञानमित्र नही।"

ल्हासाके कुन्-ब्दे-ग्लिङ्‌ विहार्‌के छापाखानेके 'स्देब्-थ्तेर्-स्ङोन्-पो नामक पोथी के 'च' भागमे दीपकर श्री ज्ञानकी एक छोटी-सी जीवनी है, जिसमे लिखा है—

(पृष्ठ १) "१—भारतीय सहोर कहते है, भोटिया सहोर·····बळा देश···· ·····।"

इन उद्धरणोंसे हमें निम्न बातें मालूम होती हैं—

१ सहोर भारतीयोंका सहोर है (१४) जो भारतमे पूर्व दिशामे था (१) (४)।

२. इसका दूसरा नाम भगल या भगल्ल था (९)।

३. इसकी राजधानी विक्रमपुरी थी (१०)। जो भंगल्ल या भगलपुर के नाममे भी पुकारी जाती थी (२), (५)।

४. राजधानी (भगलपुर या विक्रमपुरी) या राजप्रासादसे थोडी दूर पर (३), उत्तर तरफ (६) विक्रमपुरी (=विक्रमशिला) विहार था।

५. यह विक्रमशिला दीपकरके जन्म-स्थानका विहार था (१३)।

६. विक्रमशिला गंगा तटपर (११) एक पहाळीके ऊपर (१२) थी।

भागलपुर भोटिया भगलपुर है। आज भी जिस पर्गनेमे भागलपुर शहर अवस्थित है, उसे सबोर कहते है। सबोर=सभोर=सहोर एक ही शब्दके भिन्न भिन्न उच्चारण हैं। विक्रमशिलाके लिये सुल्तानगञ्ज सबसे अनुकूल स्थान जँचता है। यह भागलपुरसे उत्तर है। यहाँ से पीतलकी एक गुप्तकालीन विशाल मूर्ति मिली है। मुरली और अजगैबी-

नाथकी दोनो पहाळियाँ वस्तुत. शिला ही हैं। इनपर गुप्ताक्षरमे खुदे लेख इनका गुप्त सम्राट् विक्रमसे सबध जोळ सकते हैं। वस्तुत: देवपाल (८०९-४९ ई०)के विहार बनवानेसे पूर्व भी स्थान शिला और विक्रमके सबधसे विक्रमशिलाके नाममे प्रसिद्ध रहा होगा। यह सब बाते सुल्तानगजके विक्रमशिला होनेके पक्षमे है। किन्तु सबसे बळी दिक्कत यह है, कि यहाँ इमारतोकी नीवे, मूर्तियाँ, तथा ध्वस उतने विस्तृत नही है, जितने कि विक्रमशिलाके होने चाहिये। दसवीमे बारहवी शताब्दी तक विक्रमशिला नालन्दाका समकक्ष विहार था। पालवशका राजगुरु इस विहारका प्रधान होता था। ऐसे विहारके लिये सुल्तानगजमे प्राप्त सामग्री अपर्याप्त है। कोलगजके पास पाथरघट्टा स्थानको विक्रमशिला होनेमे और भी आपत्ति है। वहाँ प्राचीन बौद्ध-चिन्होका एक तरहसे बिल्कुल अभाव है, और बौद्धोकी अपेक्षा ब्राह्मणचिन्ह अधिक मिलते है। पाथर-घट्टासे दो-तीन मीलपर अवस्थित बावन-बिगहा (?) के ध्वंसावशेष अधिक विस्तृत है। वहाँ कितने ही स्तूपोके ध्वस भी दिखाई पळते है। यद्यपि वहाँ शिला नही है, तो भी उसके पास छोटी छोटी पहाळियाँ है। गंगा भी किसी समय यहाँ तक बहती थी। यद्यपि ध्वसोके ऊपर अब मूर्तियाँ नही दीख पळती, किन्तु उनके लिये अब हम उतनी आशा भी नही कर सकते, जब कि हम जानते है कि एक शताब्दीसे अधिक तक यह स्थान निल्हे साहबोके कार्यक्षेत्रमे रहा है, और यहाँकी मूर्तियाँ बराबर स्थानान्तरित होती रही है। विक्रमशिलाकी खुदाईमे भी नालन्दाकी भाँति ढेरकी ढेर नामाकित मिट्टीकी मुहरे मिलेगी; और वह निश्चय ही धरतीके भीतर सुरक्षित होगी।

विक्रमशिलाकी खोजके लिये मुगेरसे राजमहल तककी गंगाके दक्षिणी तटपर अवस्थित सभी पहाळी भूमि—सबौर पर्गनेकी भूमिको विशेषकर—की छानबीन करनी चाहिये।

---

(१७)

भारतीय जीवनमें बुद्धिवाद

आवश्यकता होनेपर ही कोअी चीज होनी है, यह अेक माना हुआ सिद्धान्त है। मानमिक प्रवृत्तियोको यदि हम देखे तो हम मनुष्यको दो वर्गोंमे बाँट सकते है। अेक वह जो वुद्धिप्रधान है, जो किसी भी बातको तब तक मान लेनेके लिअे तैयार नही, जब तक कि अुसकी बुद्धिको संतुष्ट न कर दिया जाय। दूसरे श्रद्धाप्रधान, जिसे बुद्धिकी अुतनी परवाह नही होती, किसी चीजको अैसे रूपमे अुसके सामने रखा जाय जो अुसके हृदयको अपनी ओर आर्कापित करे, करुणा-द्वारा, प्रेम-द्वारा या अैसे किन्ही और भावोमे, तो वह अुसे मान लेना है। हो सकता है कि किसी व्यक्तिमे अिन दोनो भावोका सम्मिश्रण काफी हो, लेकिन यदि व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक रूढियोमे बद्ध न हो, तो हम अुसे अिन दोनोमेसे किसी अेक वर्गमे आसानीसे रख सकते है। हमारा समाज अैसा है—वर्तमानमे ही नही, पहिलेसे चला आ रहा है—कि किसी बातको जैसा हम सोचते-समझते है, अुसे अुसी रूपमे प्रकट करनेका अधिकार हमें बिलकुल थोळा है। साधारण और असाधारण व्यक्तिमे यही फर्क है कि जहाँ साधारण व्यक्ति रूढियोको हर हालतमे माननेके लिअे तैयार है, वहाँ असाधारण व्यक्ति अिसमे कुछ स्वतन्त्रता दिखलाता है।

व्यक्तियोसे ही मिलकर समाज बनता है, लेकिन अिसका मतलब यह नही कि हम सारे समाजको व्यक्तियोके बहुमतपर वुद्धिप्रधान या श्रद्धाप्रधान कह सकते है। समाजके बारेमे अैसे किसी निर्णयपर पहुँचनेके

लिअे हमे समाजके विचारोके नेताओकी ओर देखना पळेगा। नेताओसे मतलब सिर्फ राजनीतिक नेताओसे नही है। अिसमे कला, उद्योग, विज्ञान, दर्शन सभी क्षेत्रोके नेताओको लेना पळेगा। बल्कि ललित-कलाओके नेताओकी ओर दृष्टि डालनेपर हम बहुत सुगमताके साथ समाजके विचार-प्राधान्यको देख सकते है। चित्रकला, सगीत और कविता, वस्तुत. अिस विषयके पक्के नाप है। अिन भारतीय ललित-कलाओके पिछले तीन हजार वर्षके अितिहास और अुनकी देनको यदि हम अच्छी तरहसे देखे, तो हमें मालूम होता है कि, पहिली सात शताब्दियोमे भारत बुद्धिप्रधान रहा। अी० पू० दूसरी शताब्दीसे लेकर अी० दूसरी शताब्दी तक मिश्रित रहा और अुसके बादसे आज तक श्रद्धाप्रधान।

आअिये, अिसे हम पहिले मूर्तिकलाके क्षेत्रमे देखे। अी० पू० पाँचवी शताब्दीसे पहिलेके कमसे कम हजार-डेढ-हजार वर्ष पहिलेकी मूर्तियोके नमूने हमारे पास नही है। यदि है भी तो अुनके कालके विषयमे निश्चित-रूपसे हम कुछ नही कह सकते। अी० पू० तीसरी शताब्दीकी कितनी ही पत्थरकी मूर्तियाँ अशोकके स्तम्भो तथा कितने ही स्तूपोके कठघरोमें मिलती है। अिस कालसे दो-तीन सौ वर्ष पहिलेकी कितनी ही मिट्टीकी मूर्तियाँ या खिलौने कौशाम्बी (कोसम, जिला अिलाहाबाद) भीटा (जि० अिला-हाबाद) आदि स्थानोमे मिली है। अुन्हे देखनेसे मालूम होता है कि, अुस समयका कलाकार वस्तुको जिस पाञ्चभौतिक रूपमे देखता है, अुसीको मिट्टी या पत्थरमे अुतारना चाहता है। अिसका यह मतलब नही कि मनुष्यके मानसिक भावोकी जो छाप अुसके मुखमण्डलपर या वाह्य आकार पर पळती है, अुसको वह बिलकुल छोळ जाता है। बात यह है कि, वह अपने पैरोको ठोस भूमिपर रखना चाहता है। अुसके लिअे भौतिक पदार्थ पहिली वास्तविकता है, जिसके आधारपर वह मानसिक जगत्‌की आभाको लाना चाहता है। यदि हम प्रथम कालकी मूर्तियो या खिलौनोंको नापकर देखे,

तो मालूम होगा, कि अुस वक्त मनुष्यकी आकृति बनानेमे 'ताल-मान'[१] अुतना ही रक्खा गया था, जितना कि अेक वास्तविक मनुष्यमे होता है। पशुओकी मूर्तियोके बनानेमे भी यही ख्याल देखा जाता है, जैसा कि सारनाथके अशोकस्तम्भके शिखर पर अुत्कीर्ण, सिंह, बैल, घोळा, हाथी की मूर्तियोंसे स्पष्ट होता है। अिस कालका अन्तिम समय अी० पू० दूसरी शताब्दीका आरम्भ वह समय है जब कि भारत राजनीतिक अुत्कर्षके मध्यान्हमे पहुँचा था। मौर्य-साम्राज्यकी सीमाओतक पहुँचनेका मौका कभी भी किसी भारतीय साम्राज्यको नही मिला। समुद्रगुप्तके समय (३४०—७५ अी०)मे गुप्त-साम्राज्यका विस्तार बहुत हुआ था; किन्तु अुस समय भी अुसकी सीमा हिन्दुकुश तक पहुँचना कहाँ, दक्षिण-भारतमे भी उसका प्रवेश दूर तक नही हुआ था। कलाकी वास्तविकता मौर्य-कालमे चरम अुत्कर्षपर पहुँची थी। संसारमे जो कुछ अुत्कर्षगामी परिवर्तन होता है, वह वास्तविकताके आधारपर ही होता है, स्वप्नके आधारपर नही।

अिस प्रथम कालकी कविताओको यदि हम देखे, तो यद्यपि अुनके नमूने अुतनी अधिक संख्यामे नही मिलते, तो भी बौद्ध-सूत्रो, धम्मपदकी गाथाओको देखनेसे मालूम पळता है कि, अुसमे वास्तविकताकी तरफ ही अधिक ध्यान दिया गया है। कौटिल्यके अर्थशास्त्रको देखनेसे तो साफ पता चल जाता है कि, हजारो प्रकारके मिथ्या-विश्वास, जिन्हे अिस बीसवी शताब्दीमे भी ब्रह्मविद्या, योग और महात्माओका चमत्कार कहकर सुशिक्षित लोग प्रचारित करना चाहते है, अुन्हे मौर्य-साम्राज्यका यह महान् राजनीतिज्ञ झूठा समझता है। अिसका यह मतलब नही कि लोग अुस समय अिन झूठी धारणाओसे मुक्त थे। हाँ, विचार देनेवाली श्रेणी

---

[१] ठुड्डीसे लेकर ललाटके अन्त भागका सारे शरीरसे अनुपात।

अिससे बहुत हद तक मुक्त थी, यह जरूर मानना पळेगा। आजकी यूरपकी शक्तियोको ही ले लीजिये। अिगलैण्डमे भी जन्मपत्री, हस्तरेखा, तावीज जैसी चीजोका वैसा ही जोर है, जैसा हमारे यहाँ; लेकिन फर्क यह है कि हमारे यहाँके शासक—जिनके हाथमे अब भी शासनका थोळा-बहुत अधिकार रह गया है—अपने राष्ट्रीय महत्त्वके काममे भी शुभ मुहूर्त आदिका ख्याल लाअे विना नही रहते। लेकिन अिगलैण्डका कोअी राजनीतिज्ञ किसी अैसे भाषण देनेके लिअे—जिसके अूपर देशके भाग्यका वारा-न्यारा होनेवाला है—अैसी शुभ सायत नही पूछेगा। अिगलैण्डने हजारो लळाअियाँ लळी, अितना वळा साम्राज्य कायम किया, लेकिन अुसे कभी किसी 'जोतिसी'की जरूरत नही पळी।

प्रथम कालके चित्रकलाके नमूने हमारे सामने नही है। लेकिन अुस कालकी मूर्तियोसे हम अुसके बारेमे अनुमान कर सकते है। अुस समय भी रेखाये अवश्य मूर्तियोकी भाँति ही दृढ और वास्तविक रही होगी। चित्र और मूर्तिमे रगहीका तो भेद होता है। जब रेखाये अुस समयकी वास्त-विक थी, तो रग भी वास्तविक ही रहा होगा। अिस प्रकार चित्रकलाके भी वास्तविक होनेका ही अनुमान होता है।

सगीत-विद्याकी सभी परिभाषाओ और विशेषताओके बारेमे तो नही कह सकता, लेकिन अुस समयके वर्णनोसे मालूम होता है कि, अुसमें अितनी कृत्रिमता नही आअी थी। वीणा थी। अुसके तारोके मिलानेका भी वर्णन आता है। लेकिन छै राग और अुनमें प्रत्येकको पाँच-पाँच छै छै पटरानियोका कही पता नही। अिसका यह मतलब न समझ लें कि, मै २२ सौ वर्ष पहिलेकी वातोकी झूठमूठ तारीफ करके आपको पीछे खीचना चाहता हूँ। अधिक-से-अधिक मेरे कहनेसे आप यही भाव निकाल सकते है कि अुस समयभी प्रथम कालकी भाँति ही वास्तविकता थी। अनुभवकी मात्राके अनुसार, मानव-जगत्के वैयक्तिक और सामाजिक विकासके

अनुसार, हमारी सभी बातोमे विकास होना जरूरी है। हाँ, अुसकी धारा वास्तविकताको लिअे होनी चाहिये। अेक और बात है। अुस समय संगीतके लिअे सुमधुर कठकी अनिवार्यता भी बतलाती है कि अुसमे अुतनी कृत्रिमता नही थी। आजकल कितने ही बळे बळे अुस्ताद अपना गुण दिखलानेके लिअे बैठ जाते है। गाना तो अैसा होता है कि आस-पास किसी पेळपर शान्त बैठी चिळिया भी अुळ जाय, लेकिन लोगोके वाह-वाह और तारीफके पुलका ठिकाना नही। यदि आप अुसमे शामिल नही होते तो आप अज्ञ और अनधिकारी है।

मै जो यहाँ सगीतके बारेमे कह रहा हूँ, यही बात कविताके अूपर भी हूबहू लागू हो रही है। अुस प्राचीन कालमे और अुसके बाद भी बहुत समय तक सगीतसे नृत्यका अटूट सम्बन्ध रहा। किसी कलाकी वास्तविकता अिससे भी मालूम होती है कि, वह सार्वजनीन कितनी है। कलाकी कसौटी मनुष्यका हृदय है, कलाविदोका दिमाग अुसके लिअे पक्की कसौटी नही है। अिसीलिअे कला जब तक वास्तविक रहेगी, तब तक सार्वजनीन भी रहेगी। अिसका यह मतलब नही कि कलाको तत्कालीन सार्वजनिक मानसिक विकासके साथ गठजोळा कर दिया जाये। कला और कला-प्रेमियोका मानसिक विकास दोनो ही स्थायी वस्तु नही है—दोनों ही आगे बढती रहेगी। मतलब सिर्फ सामजस्य और अुपयोगितासे है। गुप्त-काल और अुसके बादकी नृत्यकलाके ज्ञानके लिये हमारे पास साधन है, लेकिन अुस प्राचीन कालकी नृत्यकलाका हमारे पास न साकार चित्र है, न शब्द-चित्र; तो भी अुसके अच्छे-बुरेका फैसला विशेषज्ञोके हाथमें न था, यह तो मालूम है। अिसीसे वह भी दूसरी ललित कलाओके समान ही वास्तविक थी।

कविता और साहित्यके बारेमे भी वही बात समझनी चाहिअे जो अन्य ललित कलाओके बारेमे अभी कही गअी है। अुस समयका साहित्य-दर्पण,

साधारण मनुष्यका हृदय था। अुसके लिअे कसौटीका अधिकार, अुन दिमागोको नही दिया गया था जो वास्तबिक कविताकी अेक पक्ति भी न लिख सके किन्तु, अलकार और अलकारिनियो तथा रस और ध्वनियोंकी शाखा पर शाखा पैदा करनेमें अेक-दूसरेके कान काटे।

सधिकाल (२०० अी० पू० से ३०० अी०)मे पैरको ठोस पृथ्वीपर जमाअे रखनेकी कोशिश की गअी, लेकिन वह धीरे-धीरे जमीन छोळने लगा; यदि पजेकी तरफसे नही तो अेळीकी तरफसे तो जरूर। अैसा न होनेपर पीछेके विकार कभी सम्भव न थे। गुप्तकालमे भावुकताकी प्रधानता होती है, लेकिन तब भी वास्तविकताको छोळनेमे कलाकारको मोह लगता है। कन्धा, मोढा, और छातीकी बनावट गुप्तकालकी अपनी विशेषता है। अिन तीनो अङ्गोमे सौन्दर्यके साथ पूर्ण मात्रामे बल भरने-की कोशिश की जाती है। आप अुदय-गिरि-गुफा (भिलसा)के वराहको देखिअे या छोटी-मोटी किसी भी अुस कालकी मूर्तिको; यह बात स्पष्ट हो जायगी। लेकिन साथ ही नजाकत भी शुरू होती मालूम होगी, जो पीछे चलकर ललित-कलाके लिअे अेक मात्र आदर्श बन जाती है। अुस कालकी मूर्तियोकी भाँति ही यह बात अजन्ताके तत्कालीन चित्रोमे भी देखी जाती है। अिन विशेषताओंको कालिदासकी कविताअे भी अुसी मात्रामें प्रकट करती है।

यहाँ अेक बातपर और भी ध्यान दिलाना है। यदि हम गुप्त-कालके पहिलेके अपने भोजनको ले, तो मालूम होगा कि अुसमे षट् रस तो जरूर रहा होगा, किन्तु अभी तक अुसे सोलह प्रकार और बत्तीस व्यजनोका रूप नही दिया गया था। अितने मसालोका तो अेक तरहसे अुस समय अभाव था। पान खाना तो लोग जानते ही न थे। छौक-बघार भी अितनी मात्रा तक नही पहुँचा था। अिससे हमे यह भी मालूम हो जाता है कि, मनुष्यकी प्रगति जिस किसी ओर होती है, वह अुसके जीवनके सभी अंगोमे होती है।

छठवी शताब्दी तक तब भी हमारा अगूठा धरतीपर रह जाता है। लेकिन अुसके बाद तो हम आकाशचारी हो जाते है। हमारे पैर जमीनपर पळते ही नहीं—वास्तविकतासे हम अपना नाता तोळ लेते हैं। हाँ, अुसी हद तक जिस हद तक अुसका तोळना सम्भव है। आखिर हवा पीकर तो हम जी भी नही सकते।

सातवी शताब्दीके बाद सभी क्षेत्रोमे वास्तविकतापर भावुकताकी विजय होती है। बुद्धिको श्रद्धाके सामने परास्त होना पळता है और अुसके साथ साथ हमारी राष्ट्र-नौका भी चक्के भँवरमे पळ जाती है। समयके बीतनेके साथ साथ हम अिस भावुकतामे आगे-आगे बढते जाते है। आजका यह वैज्ञानिक युग यद्यपि प्रेरित करता है कि हम स्वप्नजगत्को छोळे और वास्तविक जगत्मे आवें, लेकिन शताब्दियोके दुष्प्रभावने हमारे मनपर अितना काबू कर रखा है कि, यदि हम अेक कदम आगे बढते है तो, तीन कदम पीछे खीच लिअे जाते हैं। कोअी कहता है—'अरे यही तो भारतीयता है, यही तो भारतीय राष्ट्रकी आत्मा है। हमारा भारत हमेशा सत्य शिव सुन्दरंका पुजारी रहा।' कोअी कहता है—'यह भारतकी प्रकृतिके ही बिलकुल प्रतिकूल है। हमारे हवा-पानीमे, हमारी मिट्टीमें, हमारे खमीरमे आध्यात्मिकता कूटकूटकर भरी है। देखते नही, अिस गये-गुजरे जमानेमें भी हम रामकृष्ण और रामतीर्थको पैदा करते है। थियोसफी और सखी-समाजका स्वागत करते है। कोअी हजार कोशिश क्यो न कर ले, भारत भारत ही रहेगा।' अैसा होनेपर तो, भारतके पैरोका जमीनपर जमना असम्भव है।

यदि हमारा यही दृढ़ विश्वास है तो हमारा भविष्य भी अैसा ही रहेगा। हमारे अुद्धारका अेक मात्र अुपाय है—बुद्धिवाद, वास्तविकताको मजबूती से पकळना। अिसके रास्तेमें चाहे जो भी बाधक हो, अुससे हमे लोहा लेना होगा। अगर हमारे खमीर मे भावुकता ही बदी होती तो, भारत बौद्ध और

चार्वाक जैसे नास्तिकोको न पैदा करता। सहस्राब्दियो तक अराजक संघो और गणोके द्वारा राजशासन न चलाता। बुद्धिवाद और भावुकताके पिछले तीन हजार वर्षोंमे व्याप्त प्रवाहका अध्ययन करनेसे साफ मालूम होता है कि, हम अुत्कर्षोन्मुख तभी तक रहे, जब तक हम बुद्धिका आश्रय लेते रहे। बुद्धिका आश्रय लेनेका यह मतलब नही कि, भावुकताकी अुसमे मात्रा ही न हो। हर अेक प्रगतिके लिअे आदर्शवाद और त्यागकी आवश्यकता है; लेकिन लगाम बुद्धिके हाथमे रहनी चाहिअे।

---

(१८)

तिब्बतमें चित्रकला

१—संक्षिप्त अितिहास

६३० अी० मे स्रोङ्-ब्चन्-स्गम्पो अपने पिताके राज्यका अधिकारी बना। ६४० अी० तक अुसके साम्राज्यकी सीमा पश्चिममे गिल्गितसे लेकर पूर्वमे चीनके भीतर तक, अुत्तरमे गोबीकी मरुभूमिसे दक्षिणमें हिमाल्यकी तराअी तक फैल गअी। ६४० अी०मे सम्राट्की नेपाली रानी ख्रि-चुन्के साथ सर्वप्रथम बौद्धधर्म तिब्बतमे पहुँचा। बौद्ध-धर्म और चित्रकलाका घनिष्ठ सबध है। भारतमे सर्वप्राचीन, तथा सर्वोत्तम अजताके चित्र बौद्धोकी ही कृतियाँ है। बौद्ध-चित्रकलाके नमूने सिहल, स्याम, चीन, जापान आदि देशोमे ही—जहाँ कि बौद्धधर्म सजीव है—नही प्राप्त होते, बल्कि अुन्हे गोबीके रेगिस्तान और मध्य-अीरान तकमे सर् औरेल् स्टाअिन्ने खोज निकाला है। अिस तरह बौद्ध-धर्मके साथ साथ चित्रकलाका भी तिब्बतमे प्रवेश स्वाभाविक ही है। नेपाल-राजकुमारी स्वय अपने साथ अक्षोभ्य, मैत्रेय और ताराकी मूर्तियोके साथ कितने ही स्थापत्य-शिल्पी तथा चित्रकार लाअी थी। ६४१ अी०मे सम्राट् स्रोङ्-ब्चन्-स्गम्पोकी दूसरी रानी चीन-राजकन्या कोङ्-जो अेक बुद्ध-प्रतिमाको ल्हासा लाअी। यह प्रतिमा किसी समय भारतसे घूमते-फिरते चीन पहुँची थी। अुसने पहले ही निश्चय कर लिया था, कि मै अपनी प्रसिद्ध प्रतिमाके लिअे राजधानीमे अेक मदिर बनवाअूँगी; और ल्हासा पहुँचते ही अुसने

र-मो-छेका प्रसिद्ध मदिर बनवाना शुरू किया। नेपाली रानीकी असमर्थता देख सम्राट्ने स्वय अुसके लिअे ल्हासाके मध्यमे जो-खङका मदिर बनवाया। र-मो-छे और जो-खङके बनानेमे यद्यपि अधिकतर नेपाली (भारतीय) और चीनी शिल्पियोकी सहायता ली गअी, किंतु अुसी समय भोटको भी स्थापत्य तथा चित्रकलाका क-ख आरभ करना पळा।

सातवी शताब्दीके मध्यमे अुत्तरी भारतके सम्राट् हर्षवर्धनके प्रशात शासनमे गुप्तोके समयसे चलती आअी, कला तथा विद्याकी प्रगति बढती ही जा रही थी। चित्रकलाके कुछ अशोके अवसादका समय डेढ-दो सौ वर्ष बादसे होता है। अिसके कहनेकी आवश्यकता नही, कि नेपाल आजकी तरह अुस समय भी कला आदिके सबधमे भारतका अग था। चीनमे भी अुस समय ह्वेन्-चाङके सरक्षक थाङ-वशका राज्य था। यह काल चीनकी चित्रकलाका सर्वोत्तम समय माना जाता है। अिस प्रकार भोट देशवासियोको भारत और चीनसे अैसे समय सबध जोळनेका असवर मिला, जब कि अिन दोनो देशोमे कलाका सूर्य मध्याह्नमे पहुँचा हुआ था।

ल्हासाके र-मो-छे और जो-खङके मदिरोकी भीतोमें यद्यपि अुस समय चीनी और भारतीय चित्रकारोने सुदर चित्र अकित किअे थे, किंतु अब वह अुपलब्ध नही है। तिब्बतमे अीधनके दुर्लभ होनेके कारण चूनेकी पक्की दीवारोके बनानेका रवाज नही है। अिसीलिअे कुछ वर्षोके बाद जब प्लस्तर निर्बल होकर टूटने-फूटने लगता है, तब सारे प्लस्तरको अुखाळकर पत्थरकी बनी दीवारो पर दूसरा प्लस्तर कर नअी तरहसे चित्र बनाअे जाते है। अभी अुस दिन (२७ मअी १९३४ अी०को) हम ल्हासाका से-र विश्वविद्यालय देखने गअे। अुसके स्मद्-ग्र-सङ (महाविद्यालय)के सम्मेलन-भवनकी दीवारोका प्लस्तर अुखाळा जा रहा था। अेक ओरसे डेढ-दो सौ वर्ष पुराने चित्र टुकळे-टुकळे हो जमीन पर गिर रहे थे, और दूसरी ओरसे नया प्लस्तर लगाया जा रहा था! यद्यपि जो-खङ और

र-मो-छेके आजकलके प्लस्तर अिसमे कही अधिक दृढ सामग्रीके बने है; तो भी अुनकी आयु तेरह शताब्दियोकी नही है। अिस सुदीर्घ कालमें अुनके प्लस्तर न जाने कितनी बार नअे बने होगे, अिसीलिअे अुन आरभिक चित्रोका अब पता नही मिलता। अुस समयकी काष्ठ-पाषाणकी मूर्तियाँ एवं विशाल काष्ठ-स्तभोमे अुत्कीर्ण रूप यद्यपि आज भी मौजूद है, और अुनसे अुस समयकी चित्रकलाका कुछ अनुमान हो सकता है, तो भी वे चित्रकला न होनेसे मेरे अिस लेखका विषय नही हो सकते।

अुसके बाद प्राय दो सौ वर्ष बीत जानेपर ८२३-८३५ अी०में ब्सम्-यस् का महाविहार बना। पुराने अितिहास-लेखकोके अनुसार यह स्वय महाराज धर्मपाल (७६९-८०९ अी०)के बनवाअे अुड्यतपुरी (वर्तमान विहार-शरीफ, पटना) महाविहारके नमूने पर बनवाया गया। अिसकी पुष्टि अुस विहारकी आकृति भी करती है। अिस समय विस्तार और वैभवमे भोट-साम्राज्यका सूर्य मध्याह्नपर पहुँचा हुआ था। भोटके धर्माशोक सम्राट् खि-स्रोङ-ल्दे-ब्चन् (८०२-८४५ अी०) बौद्ध-धर्मके लिअे सब तरहका त्याग करनेके लिअे तैयार थे। विहारका निर्माण नालदाके महान् दार्शनिक शांतरक्षितके तत्त्वावधानमे हो रहा था। अिस विहारको सुमेरु, अुसके चारो महाद्वीप, आठ अुपद्वीप तथा चक्रवाल जैसी परिखाके साथ बनवाना ही अिसे अच्छी प्रकार निर्दशित करता है, कि विहार निर्माणमे कलाका कितना ख्याल किया गया होगा। अुस समय अिस विहारके केद्रवर्ती देवालय तथा १२ द्वीपोकी दीवारोमे बहुतसे सुदर चित्र अकित किअे गअे थे। आचार्य शातरक्षितके भोटदेशीय शिष्य भिक्षु (प-गोर) वैरोचन-रक्षित स्वय भी चित्रकार थे। अुनके हाथका बनाया अेक चित्र अब भी ब्सम्-यस्के ज़ोङ (कलक्टरी)मे बतलाया जाता है। वैरोचनसे पूर्व अनेक भोटदेशीय चित्रकार रहे होगे, कितु अपनी कृतियोके साथ अुनका नाम भी लोगोको विस्मृत हो गया है। ब्सम्-यस्की दीवारे अब भी चित्रित है, कितु ग्यारहवी शताब्दीमे आगसे

जल जानेसे वह चित्र पहलेके नही है। वैरोचनके बाद दूसरा प्रसिद्ध चित्रकार तोन्-छोग्-छुङ-मेद है। अिसके समयका ठीक ठीक पता नही है।

ख्रि-स्रोङ-ल्द-ब्चन्के पौत्र सम्राट् रल्-प-चन् (८७७-९०१ ई०) बौद्ध-धर्मके अध भक्त थे। अुन्होने बहुतसे मदिर और मठ बनवाअे, जिनमेसे कितने ही अब भी मौजूद है। भोट देशमे जो विहार जितना ही अधिक वैभवशाली होता है, वहाँ प्राचीन भित्ति-चित्रोकी रक्षा अुतनी ही कठिन है; क्योकि जरा भी दीवारोको बिगळने या चित्रोको मलिन होते देख मरम्मत करके अुसकी प्राचीनता लुप्त कर दी जाती है। कितु, ल्हासासे दूरके स्थानोमे वैभवहीन अुपेक्षितप्राय कुछ अैसे विहार मिल सकते है, जिनमे प्राचीन मूर्तियाँ और चित्र अपने प्राचीन रूपमे मिल सकते है। ग्चङ प्रदेशमे ग्याची, ने. स. जैसे कुछ विहारोका अस्तित्व है भी।

रल्-प-चन्के अननर थोळे समयके बाद दसवी शताब्दीके अंतमे— ये-शेस्-ओद् (=ज्ञानप्रभ) और रिन्-छेन्-ब्सङ-पो (=रत्नभद्र)के समयसे फिर बौद्ध-धर्मका अुत्कर्ष होने लगता है, और अुसके साथ नअे मंदिरो और अुनके चित्रोका प्रचार बढने लगता है। रत्नभद्रके बनवाअे लदाखके अल्ची और सुम्-दाके विहारोमे अब भी अुस समयकी कलाके सुदर नमूने मिलते है। दुर्भाग्य-वश कश्मीर-सरकार और जनता दोनोकी अुपेक्षासे चित्रकलाके यह सुदर भाडार थोळे ही समयमे नष्ट हो जानेवाले है। स्नर्-थङ (स्थापित ११५३ ई०) ग्यारहवी शताब्दीके कुछ भूले-भटके नमूने श्-लु, रे-ङिङ (ब्रोम्-स्तोन् १००३-१०६४ द्वारा स्थापित), स्पोस्-खङमे पाअे जाते है। रे-ङिङमे मौजूद कुछ चित्रपटोको तो खास ब्रोम्-स्तोन्-पका बनाया कहा जाता है। अुनमेके कितनेही चित्र भारत या नेपालसे आअे हुअे है।

बारहवी शताब्दीकी चित्रकला भी दुष्प्राप्य सी है। अुसके कुछ भित्ति चित्र द्रग्स्-पो (११२४ ई०), स्नर्-थङ (११५३ ई०), कर्-म-ल-ल्देङ

(११५३), ग्दन्-स-म्थिल् (११५८ अी०), स्तग्-लुङ (११८०), ऽब्रि-गोङ (रिन्-ब्रसङ ज० ११४३ द्वारा स्थापित) के मठोमे मिलेंगे।

तेरहवी शताब्दीके चित्रोके लिअे विक्रमशिला महाविहारके अंतिम संघनायक शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ अी०) के भोटमे दस वर्षके प्रवासके समय (१२००-९) के चार विहारो—(१) स्पोस्-खङ-छोगस्-प (ग्चङ), (२) ग्र-नङ-ग्र्य-ग्लिङ-छोग्म्-प (ल्हो-ख), (३) ग्र-फ्यि-छोङ-ऽदुस्-छोग्स्-प, (४) सेन्-ग्दोङ-चें-छोगस्-प—की ओर देखना होगा।

तेरहवी चौदहवी शताब्दीका अेक बळा सग्रह स्पोस्-खङ (ग्याचीके पास) में है। स्पोस्-खङका अेक चित्रपट तो बिलकुल भारतीय जान पळता है। अिन चित्रोपर भारतीय चित्रकलाकी भारी छाप है। चौदहवी शताब्दीके दो दर्जन सुदर चित्रपट स-स्क्य मठके, गु-रिम्-ल्ह-खङमें है।

पंद्रहवी शताब्दीमे द्गे-लुग्स्-प या पीली टोपीवाले सप्रदायके कितने ही मठ स्थापित हुअे, जिनमे द्गऽ-ल्दन (१४०५ अी०), ऽब्रस्-स्पुङ (१४१६ अी०), से-र, छब्-म्दो (१४३७ अी०), ब्क्र-शिस्-ल्हुन्-पो (१४४७ अी०) थोळेही समयमे बळे बळे विश्वविद्यालयोके रूपमे परिणत होगअे। अिनमे भित्ति-चित्र और चित्रपट बहुत है। सभव है, अुस समयके कुछ चित्रपट अिनमे प्राप्त होजायँ, किंतु भित्ति-चित्र प्राय प्रत्येक शताब्दीमे नअे होते रहे है।

सोलहवी शताब्दीके चित्रोके लिअे भी हमे अुपर्युक्त द्गेलुग्स्-प मठोकी ओर विशेष रूपसे देखना होगा। अिसी शताब्दीमे स्मन्-थङ-यब्-स्रस् और ल्हो-ख प्रदेशके ऽक्योङ-ग्र्यस् स्थानमे अुत्पन्न अेक प्रसिद्ध चित्रकार भिक्षुणी छुङ-ब्रिस् और चित्रकार चें-ग्दुङ हुअे थे।

स्मन्-थङ-यब्-स्रस्ने ल्हासाके जो-खडकी दीवारोंको चित्रित किया था। यद्यपि अुसके बनाअे चित्रोंपर पीछे कअी बार रग चढाया गया है, किंतु कहते है, रेखाअें पुरानी है। (ल्हो-ख)-छुङ-ब्रिसके अंकित ९ चित्रपट

ल्हासाकी ल्हलुङ्-ल्ह-चम्के महलमे है। अिनपर चित्रकलाका बहुत अधिक प्रभाव चीनी है। रग हल्के किंतु बळे ही सकेतपूर्ण है। चें-ग्दुङ् चित्रकारके लिखे ३५ चित्रपट ऋ-शी-ल्हुन्पो मठसे पूर्व दो दिनके रास्तेपर ब्रह्मपुत्रके दाहिने किनारे पर अवस्थित रोङ्-ब्रग्-प गाँवके मालिकके घरमे है।

ल्हासाका सुर्-खङ् सामत-गृह बहुत पुराना है। कहते है, पहले अिसी स्थान पर तिब्बतके सम्राट् रहते थे। सुर्-खङ्के स्वामी मानसरोवर प्रदेशसे, शायद पाँचवे दलाओीलामाके समयमे, आअे थे। सुर्-खङ्की वर्तमान स्वामिनी खुद आदि सम्राट् स्रोङ्-ब्चन्-स्गम्-पोके वशकी है। यदि बीच बीचके राजविप्लवोमे घर नष्ट न हुआ होता, तो यहाँ कितनी ही पुरानी वस्तुअे मिल सकती। अिनके यहाँ वज्रपाणि-मजुघोष-अवलोकिते-श्वरकी अेक सुदर पीतल-मूर्ति है। मूर्ति भारतीय ढगसे बनाअी गअी है; और अुस परका लेख—"ख्यद्-तु-ऽफग्स्-प-स्तोन्... क्यिस्... ब्शेङ्स्" बतला रहा है कि अुसे सम्राट रल्-प-चन् (८७७-९०१ अी०)के समकालीन ख्यद्-पर्-ऽफग्स्-ब्स्तोन् लो-च-वने बनवाया था। पहले अिस वशके पास १६ भारतीय अर्हतो (स्थविरो)के चित्रपट थे, जिनमे आठ १९०८ अी०की ल्ळाअीमे चीनियोके हाथ लगे, और अुन्होने ल्हासाके अेक दूसरे खानदानके हाथ अुन्हे बेच दिया। आठ अब भी सुर्-खङ्मे है। यद्यपि यह (ल्हो-ख)-छुङ्-ब्रिस्के समकालीन नही है, तो भी अिनका काल सत्रहवी शताब्दीसे पीछेका नही हो सकता। अिनमे भी छुङ्-ब्रिस्की भाँति ही भूमिको सजानेकी कोशिश नही की गअी है। नीचे हलके रगमें नदी, पहाळ, फिर अत्यत क्षीण रंगमें अतरिक्ष और सबसे अूपर हलके नीले रगमे आसमान दिखलाया गया है। रगोका छाया-क्रम अितना बारीक है कि देखते ही बनता है। जहाँ छुङ्-ब्रिस्के चित्रोमे चीनी आँख-मुँह और प्राकृतिक सौदर्यका अधिक प्रभाव है, वहाँ अिन चित्रोमे भारतीय प्रभाव मिलता है। छुङ्-ब्रिस्ने अपने चित्रोमे सोनेका बहुत

कम अुपयोग किया है और वस्त्रोको भी अुतने बेलबूटेसे सजानेकी कोशिश नही की है; वहाँ अिन चित्रोमे अुनका अुपयोग कुछ अधिक किया गया है। अितना होते हुए भी अिस बेनामवाले चित्रकारने भाव-चित्रण बळी सुदरतासे किया है। भौ, नाक, केश और अँगुलियोके अकनमे अुसकी तूलिकाने बहुत कोमलताका परिचय दिया है। छुङ-ब्रिम्के चित्रोकी भाँति कृत्रिमतासे सर्वथा न शून्य होनेपर भी अिन चित्रोमे सजीव कोमल सौदर्य काफी मात्रामे मिलना है। बुद्धके चित्रोके लिअे तो मालूम होता है, भारतहीमें सातवी शताब्दीमे कोअी महाशाप लग गया, और तबसे कही भी बुद्धकी सुदर मूर्ति या चित्र नही बन सका। यह बात छुङ-ब्रिस् और अिस सुर्-खङके अज्ञात चित्रकारके बारेमे भी ठीक घटती है।

सत्रहवी शताब्दीमे भी तिब्बतमे अनेक चित्रकार हुअे। अिसी शताब्दी (१६४८ अी०)मे पाँचवे दलाअीलामा सुमतिसागर (१६१७,८२ अी०) सारे तिब्बतके महत-राज हुअे। अिन्होने १६४५ अी०मे ल्हासाका प्रसिद्ध पोतला-प्रासाद बनवाया। कुशल शासक, विद्याव्यसनी होनेके साथ ये बळे कला-प्रेमी भी थे। छोम्-द्ब्यिङ-र्ग्य-म्छो (=धर्मधातुसागर) और स्दे-स्रिद्-ग्यऽ-सेल् अिनके समयके प्रसिद्ध चित्रकार थे। धर्मधातुसागरने ल्हासाके जो-खङकी परिक्रमाके कुछ भागको चित्रित किया था। अिन चित्रो पर भी पीछे कअी बार रग चढाया गया, किंतु पुरानी रेखाअे कायम रखी गअी है।

अठारहवी शताब्दीमे भी अच्छे चित्रकार मौजूद थे। तिब्बत देशमे प्राचीन भारतकी भाँति प्राय चित्रो पर चित्रकार अपने नाम अकित नही करते थे और न लेखकोको ही अुनकी स्मृति जीवित रखनेका ख्याल था, अिसीलिअे अुस समयके चित्रोके होने पर भी अुनका नाम जानना बहुत कठिन है। अिसी शताब्दीके पहले पादके बनाअे वह तेरह चित्रपट है, जिन्हे लेखकने अपनी पिछली यात्रामे ल्हासामे सग्रह किया था, और जो अब पटना-म्यूज़ियम्मे है।

अुन्नीसवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे ऽब्रस्-स्पुङ्स् विहारके क्लु-ऽबुम्-गे-शे चित्रकारका नाम बहुत प्रसिद्ध है। यह ग्यारहवे दलाअीलामा म्खस्-ग्रुब्-ग्र्य-म्छोके दर्बारमे था। बारहवे दलाअीलामा ख्रिन्-लस्-ग्र्य-म्छो (मृ० १८७५ अी०) के समय ल-मो-द्कुन्-द्गऽ प्रसिद्ध चित्रकार था। अिसके बनाअे तीन चित्रपट ल्हासाके म्यु-रु मठके पार्श्ववर्त्ती ग्र्युद-स्मद विहारमे अब भी मौजूद है।

अुन्नीसवी शताब्दीके अतिम पादसे आजकल तक भी कितने ही चित्रकार होते आअे है। किंतु अुनमे वह दक्षता नही रही। अुन्होने विशेषकर पहले लिखे चित्रपटोकी नकल करनेका ही काम किया है।

२—शिक्षा-क्रम

तिब्बतमे चित्रकलाके वशानुगत होनेका नियम नही है। भिक्षु या गृहस्थ जिस किसीकी अुधर रुचि हुअी, अभ्यास करने लगता है। जिन्हे अपने बालकोको पेशावाला चित्रकार बनाना होता है, वह आठ वर्षकी अवस्थामे लळकेको किसी चित्रकारके पास भेज देते है। मेधावी बालकको आवश्यक शिक्षा प्राप्त करनेमे तीन वर्षसे कुछ अूपर लगते है। यह शिक्षा तीन वर्गोमे विभाजित है—

१—रेखा-अकन	१६ मास
२—साधारण रग-अंकन	१० मास
३—सूक्ष्म मिश्रित-रग-अकन	११ मास

१—**रेखा-अंकन**—पहले खास तरहसे बने कोयला (जोकि पेसिलका काम देता है)मे चौकोर खाना बनानेवाली रेखाअे खीचना, फिर अुनपर मुख आदिकी आकृति बनाना। ठीक होने पर तूलिका-द्वारा अुन रेखाओ पर काली स्याही चढाना सीखना।

रेखा-अकन वर्ग भी छै श्रेणियो या **थिग्मे** बँटा हुआ है—

(१) **प्रथम श्रेणी**—(१५५ अंगुल) (क) पहले बुद्धका मुख अंकित करना सिखाया जाता है। अिसमे अेक मास लगता है। गुरुके दिअे नमूनेके अनुसार कागज पर पहले २६ अंगुल लंबा और १६ अंगुल चौळा आयत क्षेत्र खींचना होता है। फिर निम्न प्रकारसे आळी-बेळी रेखाअे खींचनी होती है—

लम्बाअीमे—

२ अंगुल	शिर की मणि
४ "	अुष्णीष
४ "	चूळा-ललाट
४ "	ललाट-अूर्णा
१ "	अूर्णा-नासामूल
१ "	नासामूल-नेत्रकी निम्न सीमा
२ "	नेत्रकी निम्न सीमा-नासाग्र
४ "	नासाग्र-ठुड्डी
४ "	ठुड्डी-कठकी निम्नसीमा
२६	

चौळाअीमे—

६ अंगुल	दाहिनी कनपटीसे ललाटार्ध तक
६ "	बाअी कनपटीसे ललाटार्ध तक
२ "	दाहिने कानकी चौळाअी
२ "	बाये कानकी चौळाअी
१६	

(ख) मुखके अंकनका अभ्यास हो जाने पर ३ मासमे बुद्धके **पद्मासनासीन** सारे शरीरका अंकन सीखना पळता है। पहले ८४×५२का

आयन क्षेत्र बनाना होता है। फिर निम्न प्रकार लबाअी और चौळाअीमें रेखाअें खीचनी होती है—

लबाअीमे—

२६ अगुल	शिरकी मणिसे कठकी निम्न सीमा तक (अूपर जैसे)
१२ "	कठसीमा—स्तन तक
१२ "	स्तन—केहुनी
२ "	केहुनी—नाभि
४ "	नाभि—कटि
८ "	कटि—मुळे घुटनेके प्रथम छोर तक
४ "	मुळे घुटनेके मध्य तक
४ "	मुळे घुटनेके अतिम छोर तक
१२ "	शेपके लिअे
८४	

चौळाअीमे—

१२ "	मध्य ललाटसे बगल तक
४ "	बगलसे पैरके अँगूठेके सिरे तक
२ "	पैरके अँगूठेके सिरेसे दाहिने बाजूके अत तक
८ "	दाहिने बाजूके अतसे मुळे घुटनेके अतके पास तक
२६	

२ अतिरिक्त
५२ "

(ग) फिर अेक मासमे वस्त्रोका अकन करना सीखा जाता है।

श्रेणी-क्रमसे रेखाकनका विवरण अिस प्रकार है।

श्रेणी	विषय	अगुल-परिमाण	मास
१	बुद्ध	१५५	५
२	अवलोकितेश्वर आदि बोधिसत्त्व	१२०	३
३	तारा आदि देवियाँ	१०८	३
४	वज्रपाणि आदि क्रोधी देव	९६	२
५	अर्हत् आदि		२
६	मनुष्य		१
			१६

अिस प्रकार १६ मासमे रेखाकन समाप्त होना है।

२—साधारण रंग-अंकन—अिसमे सीधे-सादे रगोको अलग अलग अकित करना सीखा जाता है। क्रम और काल अिस प्रकार है—

हरा रँगना	½ मास
आकाश रँगना	१ "
दूसरे रग (अलग अलग)	८½ "
	१०

३—सूक्ष्म, मिश्रित रंग-अंकन—पत्ते आदिके सूक्ष्म और अनेक छाया-वाले रगो, सोनेके काम तथा केश आदिका अकन अिस अतिम श्रेणीमें सीखा जाता है। क्रम और काल अिस प्रकार है —

पत्ता	१ मास
लाल	१ "
सोनेका काम	३ "
केश, भौं आदि	६ "
	११

तीनो वर्गोको समाप्त कर लेने पर भी छात्र कितने ही समय तक अपने गुरुका सहायक बन काम करता रहता है।

३—चित्रण-सामग्री

चित्रण-क्रियाके लिये चार चीजोकी आवश्यकता होती है—(१) भूमि, (२) तूलिका आदि, (३) रग, (४) रग-पात्र।

(१) **भूमि**—तिब्बतमे चित्रणकी **भूमि**के लिअे साधारणतया पट, भित्ति या काष्ठ-पाषाणके टुकळोका अुपयोग किया जाता है।

(क) **पट**को दर्पण-समान निर्मल, श्वेत, रेखा-रहित, कोमल, लचकदार तथा तिनकोनी बिनाअीमें शून्य होना चाहिए। अिसके लिअे अधिकतर कपासके कपळेका अिस्तेमाल होता है। वस्त्र को अपेक्षित आकारमें काटकर अुसके चारो ओर बॉसकी चार खपीचे सी देनी होती है। फिर लकळीके चौखटेमे अुसे रस्सीसे अिस प्रकार कसकर ताना जाता है, कि **पट** सब जगह अेक सा तन जाय। फिर $\frac{3}{4}$ **श्वेत**[1] रगमें $\frac{1}{4}$ सरेस डाल गुनगुने पानीसे मिलाकर पतली लेअी बनाअी जाती है। अिस पतली लेअीको कपळे से भिगोकर पट पर लेप दिया जाता है। चारो ओर बराबर पुत जाने पर पटको छायामे सूखनेके लिअे रख दिया जाता है। सूख जाने पर पटके नीचे लकळीका अेक चिकना पट्टा रखकर, पानीका हल्का छीटा दे दे अुसे दोनो ओर चिकने पत्थरसे रगळा जाता है ; और फिर सूखनेके लिअे छायामे छोळ दिया जाता है।

ताननेको छोळ बाकी प्लस्तर आदिका काम भित्ति और काष्ठ-पाषाणकी भूमि पर भी अेक सा ही किया जाता है।

---

[1] **खळिया जैसा एक रंग; देखो रंगोंका वर्णन।**

(२) **तूलिका**—चदन, लाल चदन या देवदारकी सीधी बिना गॉठकी लकळीको तेज चाकूसे (चाकूके अूपर दूसरी समतल सहारेकी लकळी रखकर) छीलकर अिस प्रकार गोल बनाया जाता है, कि अुसका अेक सिरा अधिक मोटा और दूसरा पतला हो जाता है। फिर मोटे सिरेको डेढ अगुलके करीब खोखला कर दिया जाता है। तब बकरी, बिल्ली या दूसरे जानवरके पानी सोखनेवाले बारीक साफ और अेकसे बालको बराबर करके अुसके आधे भाग पर सरेसकी लेअी डाल-डालकर अुसमे खूब चिपका दिया जाता है; और सरेसवाले भागको सूत लपेटकर बॉधकर सरेसके सहारे तूलिका-दडके खोखले भागमे मजबूतीसे बैठा दिया जाता है। सूख जाने पर तूलिका कामके लिअे तैयार होजाती है। तिब्बतके चित्रकार दो प्रकारकी तूलिका अिस्तेमाल करते है। भौ, केश आदिके चित्रणके लिअे अधिक सूक्ष्म किंतु परिमाणमें कम केशोवाली पतली **तूलिका** काममे लाअी जाती है, और बाकी कामोके लिअे अधिक केशोवाली मोटी **तूलिका**।

तूलिकाके अतिरिक्त दूसरा आवश्यक साधन है—परकाल। यह अेक दो, तीन अगुल चौळी, प्राय १ फुट लबी तथा अेक अगुल मोटी बॉसकी कट्ठीको लबाअीमे आधे-आध चीरकर अेक ओरके सिरेको लोहेसे छेदकर बॉध दिया जाता है। दोनो बॉहोमेसे अेकको नोकीला और दूसरेको कोयलेकी पेंसिल रखने लायक खोखला बना दिया जाता है। फिर दोनो बॉहोको मोटाअीमे चीरकर अुनके भीतर अेक पतली खपीच डाल सिरोको सूत लपेट-कर बॉध दिया जाता है। यही परकाल है।

तिब्बती चित्रकार दो प्रकारकी पेंसिले अिस्तेमाल करते है, अेक सेत-खरीके पत्थरकी और दूसरी कोयलेकी। कोयलेकी पेंसिलके बनानेका यह ढंग है। अेक हलकी लकळीको तॉबे या लोहेकी नलीमे डाल हल्की ऑचमे डाल दिया जाता है, जल जानेपर नलीसे निकाल लिया जाता है। यही पेंसिल है। बिना नलीके भी हल्की लकळीको धीमी ऑचमे जलानेसे

पेंसिल तैयार होजाती है। अिस कामके लिअे भारतमें सेंठेको काममें लाया जाता रहा होगा।

सोनेके कामको चमकानेके लिअे अेक **घर्षण-तूलिका** होती है, जिसके सिरे पर बिल्लौर या चकमक जैसा कोअी चिकना स्वच्छ पत्थर जळा रहता है। पटके पीछे अेक छोटा चिकना काष्ठ-फलक रख स्वर्ण-रेखाको अुस कलमसे रगळा जाता है, जिससे सोना चमकने लगता है।

पानीमें धोकर अेकही तूलिका कअी रंगोंमें डाली जाती है।

(२) **रंग**[1]—अब भी तिब्बतके अच्छे-अच्छे चित्रकार चित्रपटोंके तैयार करनेमें अपने हाथसे बनाअे रंगोंको अिस्तेमाल करते हैं। अिनमें खास तरहके पत्थरोंसे बननेवाले रंग यह हैं—

क. अ.मिश्रित रंग

(अ) पाषाणीय

१ **सेत-खरी** (द्कर्-रग्, **पाषाणीय**)—ल्हासाके अुत्तरवाले रोङ प्रदेशके रिङ-बुम् स्थानसे यह सफेद रंगका ढला आता है। ढलेको पीसकर अधिक पानीमें घोल दूसरे बर्तनमें पसा देते हैं। नीचे बैठी कँकरीली तलछटको फेंक देते हैं। कुछ देर छोळ देने पर नीचे गाढ़ी सफेद पंक जम जाती है। फिर अूपरके पानीको फेंक दिया जाता है। अिसमें गर्म पानीमें घुली सफेद सरेस ($\frac{1}{8}$) खूब रगळ रगळ कर मिला दी जाती है। अिस प्रकार रंग तैयार होजाता है।

२. **नीला (थिङ)**—ल्हासासे कुछ दूर पर ञि-मो स्थानसे यह नीले रंगका बालू आता है। ठंडे पानीके साथ थोळा सरेस मिला दो घंटे

---

[1] **सभी रंगोंके कच्चे पक्के नमूने मैंने पटना-म्युज़ियममें ला रक्खे हैं।**

तक अिसे खलमे पीसना होता है। फिर अधिक पानी मिला अुसे अेक बर्तनमें पसाया जाता है। फिर पन्द्रह मिनट तक थिर करके दूसरे बर्तनमे पसाया जाता है। दूसरेमे भी पन्द्रह मिनट रखकर तीसरेमे पसाया जाता है। तीसरेमे भी पन्द्रह मिनट रखकर चौथेमे पसा दिया जाता है। चौथे बर्तनमे आध घटा रख पानीको फेंक दिया जाता है। चारो बर्तनोमे बैठी पक चार प्रकारका नीला रग देती है।

(१) **अतिनील** (थिङ-ऽत्र्)—अिससे वज्रधर आदिके शरीरका रग बनाया जाता है।

(२) **अल्प-नील** (थिङ-शुन्)—अिससे आकाशका रग बनाया जाता है।

(३) **अल्पतर-नील या श्याम** (स्ङो-ब्सड्)—अिससे पानीका रग बनाया जाता है।

(४) **अल्पतम नील** (स्ङो-मि)—अिससे छाया, आकाशकी मलिनता आदि दिखलाअी जाती है।

३. **हरित** (स्पङ्)—यह भी अुपर्युक्त ञि-मो स्थानसे बालूके रूपमे आता है। बनानेका ढग **नील** जैसा ही है, किंतु अिसे चारकी जगह तीन बर्तनोहीमे पसाते हैं, जिससे तीन प्रकारके हरे रग प्राप्त होते हैं—

(१) **अति-हरित** (स्पङ-म)—जिससे हरित तारा, पत्र, तृण आदिको रँगा जाता है।

(२) **अल्प-हरित** (स्पङ-शुन्)—जिससे पृथिवी आदिको दिखलाया जाता है।

(३) **अल्पतर-हरित** (स्पङ-र्स्य)—जिससे कपळेके रग, ध्वजा मृणाल, पुष्प-दड आदि बनाअे जाते हैं।

४. **पाषाणी पीत** (ब्र-व्ल्-सेर्पो)—यह सोनामक्खी जैसा पीला नर्म पत्थर पूर्वीय तिब्बतके खम् प्रदेशमे आता है। सूखाही कूटकर बालू

जैसा बना, थोळे सरेस और पानीके साथ खरलमें दो दिन तक पीसा जाता है। फिर अधिक पानीमे घोल पसा लेना होता है। पंकके नीचे बैठ जाने पर पानीको फेंक दिया जाता है।

५. **कच्चा अिंगुर** (छल्-ल्चोग्-ल)—यह पत्थर भी खम् प्रदेशसे आता है। पहले सूखा पीस मोटे बालू-सा बना, सरेस और पानीके साथ खरलमे खूब पीस देनेपर रग तैयार हो जाता है। आज-कल अिसकी जगह चीनमे रूअीमे डालकर बना लाल रंग—यङ-टिन्—अिस्तेमाल किया जाता है।

६. **सिंदूर** (लि-खि)—यह भारतसे तिब्बतमे आता है। सरेस और पानीके साथ खरल करके रग तैयार किया जाता है। अिससे बुद्ध और भिक्षुओके काषाय वस्त्र बनाते है।

७. **लाल** (छल्)—यह पाषाणीय रंग भारतसे आता है, और सिदूरकी भाँति ही तैयार किया जाता है, और अुससे वही काम लिया जाता है।

(आ) धातुज

८. **चाँदीका रंग** (दङुल्-ब्दुल्)—नेपाली लोग चाँदीकी अिस भस्मको बनाते है। पानी और सरेसके साथ अिसे घिसकर लिखनेके लिअे तैयार किया जाता है। अिसका अुपयोग बहुत ही कम होता है।

९. **सोनेका रंग** (ग्सेर्-ब्दुल्)—अिस भस्मको भी नेपाली लोग तैयार करते है। रग, सरेस और पानीमे घोटकर बनाया जाता है। अिससे बुद्धका रंग तथा आभूषण आदि बनाअे जाते हैं।

(अि) मिट्टी

१०. **पीली मिट्टी** (ङ ङ्-प-ग्सेर्-ग्दन्)—यह मुल्तानी मिट्टी जैसी पीली चिकनी मिट्टी ल्हासासे पूर्व येर्-वा स्थानसे आती है। अिसे थोळे सरेसके साथ पानीमें दो घंटा अुबालकर तैयार किया जाता है।

सोना लगानेके पहिले **भूमि** असमे रजितकी जाती हैं, जिससे सोनेका रंग बहुत खिलने लगता है।

(औ) वानस्पत्य

११. **मसी** (स्नग्-छ)—ल्हासासे दक्खिन-पूर्ववाले कोङ-वो प्रदेशमें देवदारकी लकळीके धूअेसे कजली तैयार करते हैं। अिसीको ठडे पानी और सरेसमे रगळकर स्याहीकी गोली तैयारकी जाती है। रेखाअें और केश आदिके अकित करनेमे अिसका अुपयोग होता है।

१२. **नील** (रम्)—भारतसे नीलके पौधेसे बना यह रग आता है। सरेसके साथ पानीका छीटा दे दे १५, २० घटा खरलमे रगळने पर रग तैयार होता है। बादल, छाया और रेखाअे अिसमे बनाअी जाती हैं।

१३. **अुत्पल-जल** (अुद्-पल्-सेर्-पो)—ल्हासाके अुत्तरवाले फेम्-बो प्रदेशके रे-डिङ्, तथा दूसरे स्थानोके, सूर्यकी कळी धूप न लगनेवाली पहाळी भागोमे अेक प्रकारका फूल अुत्पन्न होता है, जिसे तिब्बतवाले अुत्पल कहते हैं। अिसकी पत्तीमे शुन्का पत्ता $\frac{1}{10}$ हिस्सा मिला पानीमे १५ मिनट पकाया जाता है। अिस हल्के पीले रंगके पानीसे पत्तोका किनारा बनाने, तथा दूसरे रगोमे मिलानेका काम लिया जाता है।

१४ **शुन्** अेक वृक्षका पत्ता है, जो भूटानकी ओरसे आता है। अिसके पकाअे पानीको दूसरे रगोमे मिलाया जाता है।

(अ) प्राणिज

१५. **लाख** (र्ग्य-छोस्)—भारत या भूटानसे आती है। लकळी आदि हटाकर अिसे साफ कर लिया जाता है। फिर अुसमे बहुत ही गर्म पानी डाला जाता है। फिर $\frac{1}{10}$ हिस्सा **शुन्**का पत्ता और थोळी फिट्किरी (छ-ल-द्कर्-पो)को डाल दिया जाता है। फिर पानीको पसाकर अुसे धीमी आँचमें पकाकर गाढा करके गोली बना ली जाती है।

१६. **सरेस** (स्प्यिन्)—भैंस या किसी भी चमळेको बाल हटाकर खूब साफ करके छोटा छोटा काट दिया जाता है। दो दिन तक अुबालने पर चमळा गलकर लेअी-सा बन जाता है। अिसे सुखाकर रख लिया जाता है, और सभी रगोमे अिसको मिलाया जाता है। यह रगको चमकीला और टिकाअू बनाता है।

(अू) अज्ञात

१७. **यङ-टिन्**—चीनमे यह लाल रग बनता है, और रूअीमे सुखाया बिकता है। पहले तिब्बतमे अिसकी जगह छल्-ल् चोग्-ल (अिगुर)का अुपयोग होता था।

ख. मिश्रित रंग

अूपरके रगोके अतिरिक्त कुछ और भी रग है, जिन्हे भोटदेशीय चित्रकार अिस्तेमाल करते है, किंतु यह सब रग अुपर्युक्त रगोके मिश्रण से बनाअे जाते है।

१. **पांडु-श्वेत** (लि-स्क्य)—सेतखरी ६/१४ + पापाणी पीत ३/१४ + सिदूर १/६ मिलाकर सरेसके साथ पानीका छीटा दे-दे घोटनेसे यह रग बनता है। अिससे मणि, किरण तथा चीवरके भीतरी भागको दिखलाया जाता है।

२ **पीतिम रक्त** (चो-म) सिदूर १/३ + पापाणी पीत ३/७ + सेतखरी १/७ को मिलाकर **पांडु श्वेत**की भाँति बनाया जाता है। अिससे मैत्रेय, मजुघोप आदिका शरीर रंजित किया जाता है।

३. **पांडु-रक्त** (स्गन्-र्य-छो-व) सिदूर ६/११ + अिगुर (म्छल्) ४/११ + सेतखरी १/११ मिलाकर पाडु-श्वेतकी भाँति बनाया जाता है। अिससे अमिताभ, अमितायु, हयग्रीव आदिके वर्णको बनाया जाता है।

४ **सिंदूर-रक्त** (स्मर्-स्क्य-स्क्य-प) सिंदूर ३/५ + अीगुर (म्छल्)

३/६ + सेतखरी ३/६ मिलाकर पाडु-श्वेतकी भाँति बनाया जाता है, अिससे आसन, कपळे आदिके रग बनाअे जाते है।

५. **लाखी श्वेत** (न-रोम्) सेतखरी ३/५ + लाख २/५ मिलाकर अुक्त क्रमसे बनाया जाता है। बुद्धके प्रभा-मडल तथा घर आदिके रँगनेमे अिसका अुपयोग होता है।

६. **नील-हरित** (ग् यु-ख) अनि नील १/२ + अति हरित १/२ मिलाकर अुक्त क्रमसे बनाया जाता है। पत्तो आदिके रँगनेमे काम आता है।

७ **मेघ-नील** (शुन्-रम्) नील (१२) २/३ + अुत्पल जल १/३ मिलाकर अुपर्युक्त क्रमसे बनाया जाता है। मेघ, मरकत आदिको अकित किया जाता है।

८. **हरीतिम-श्वेत** (स्पड्-मि) सेतखरी २/३ + अतिहरित १/३ मिलाकर अुक्त क्रमसे बनाया जाता है।

(४) **रंग-पात्र** मिट्टीके पात्र रगोके रखनेके लिअे सर्वोत्तम माने जाते है। नील और लाल रंगोके लिअे चीनी मिट्टीके पात्र भी अिस्तेमाल किअे जाते है। लाख और लाखी श्वेत जैसे रग अुनकी अवश्यकतावाले रगोके लिअे शखके टुकळे काममे आते है। अेक पात्रमे डुबाअी तूलिकाको बिना पानीवाले पात्रमे प्रक्षालित किअे दूसरे रग-पात्रमे नही डाला जाता, क्योकि अिससे रगके बिगळ जानेका डर होता है।

४—चित्रण-क्रिया

चित्रण-क्रियामे सबसे कठिन काम रेखाओका अकन करना है। प्रधान चित्रकारका काम रेखाअें अकित करना है। रंगोके भरनेका काम वह अपने सहायकके लिअे छोळ सकता है। चित्रण-क्रियामे निम्न क्रमका अनुसरण किया जाता है—

१—चित्रकी भूमि (पट, भित्ति आदि)को श्वेत प्लस्तर लगा तैयार करना।

२—कोयलेकी पेंसिल (=अंगार-तूलिका)से पटके कोनोको रेखाओ-द्वारा मिलाना। फिर केंद्र पर वृत्त, तथा अुसके चारो ओर तुल्य अर्द्धव्यासवाले चार वृत्तोका खीचना। कटे बिंदुओको सरल रेखाओसे मिलाना आदि।

३—कोयलेसे मूर्ति अकित करना।

४—रेखाओ पर स्याही चलाना।

५—अ-मिश्रित रंग लगाना।

६—मिश्रित रग लगाना।

७—फूल, मेघ आदिको रंजित करना।

८—सोनेके रगको पहलेसे पीली मिट्टी लगाअे स्थानो पर लगाना।

९—नेत्र, केश, मूँछ आदिको सूक्ष्म तूलिकासे बनाना।

१०—छोटे चिकने काठकी तख्तीको नीचे रखकर सोनेकी रेखाओको **घर्षण-तूलिका**से रगळकर चमकाना।

५—चित्रकला-सम्बन्धी साहित्य

भोटमे मौजूद चित्रकला-सबधी ग्रथोको दो भागोमे बॉटा जा सकता है। (१) अेक वे जो भारतीय सस्कृत-ग्रथोके अनुवाद है, और (२) वे, जिन्हें भोटके विद्वानोने स्वयं लिखा है। (१) प्रथम श्रेणीके ग्रथोमें (क) कुछ तो अैसे हैं, जिनका विषय दूसरा है, किंतु प्रसग-वश अुनमे चित्रण-कला की बात भी चली आअी है, जैसे **मंजुश्रीमूलकल्प**। (ख) अुनके अतिरिक्त **प्रतिमामान-लक्षण**-सदृश भारतीय आचार्योके कुछ ग्रंथ सिर्फ चित्रण-कला तथा मूर्ति-कलाके लिअे ही बनाअे गअे हैं। भोटदेशीय विद्वानोंके बनाअे ग्रंथोमे अुक्त दो श्रेणीके ग्रंथ पाअे जाते हैं। कजूरमे अनुवादित प्रायः सभी तंत्र-ग्रथोमे चित्रण-क्रियाके बारेमे कुछ न कुछ सामग्री मिलती हैं।

परिशिष्ट (१)

पुरा-लिपि

काशी—ता० २५ जुलाई १९३७

प्रिय श्री राहुल जी,

आज डाक बुक-पोस्ट से १ प्रति प्राचीन अक्षरोका फोटो आप की सेवा में भेजा है। पहुँच लिखियेगा। भेजने मे देर हुई क्षमा कीजिएगा। फोटोग्राफर ने आज ही फोटो दिये। फोटो तो बहुत साफ आये हैं, पर हेडिग (Heading Columns) के अक्षर छोटे होने के कारण बिना मैग्नीफाइग ग्लास की सहायता के पढे नही जाते। यह हेडिंग बहुत आवश्यक है, इस लिये मै, ऊपर १९ खानो के लेख जो हेडिंग में लिखे हैं, अलग लिख कर भेजता हूँ। फोटो सामने रखकर हर एक खाने का हेडिग पढ़ते हुए यदि अक्षरों को देखा जायगा तो हर शताब्दी (वैक्रम) की सब बाते व अक्षर-भेद समझ में आजावेंगे। इस चार्ट के तैयार करने मे मैने श्री गौरीशंकर जी की "भारत की प्राचीन लिपि" पुस्तक, Buhler's Indische Palaeographie और Epigraphia Indica से सहायता ली है। विशेषता यह है कि हर वैक्रम शताब्दी के अक्षर छाँट कर लिखे है। न० ७ मे दूसरी शताब्दी के अक्षर अपने संग्रह किये हुए क्षत्रपों के चाँदी के सिक्को से बड़े परिश्रम के साथ लिखे है। उसी तरह नं० ९ चौथी शताब्दी के अक्षर गुप्तवशी महाराजाओं के सोने के सिक्को वो लेखों से एकत्र करके लिखे है।

आप देखेंगे, दीर्घ 'ई' का पता ६ठी शताब्दी तक नही है। 'ऋ' और 'लृ' का पता ९०० वर्ष तक नही है। कारण केवल प्राकृत-भाषा थी, जिसमे इन अक्षरो का शताब्दियो तक प्रयोग न था। उसी तरह 'ङ' और 'क्ष' भी बर्ते नही जाते थे।

इस चार्ट की सहायता से उत्तरी भारत के शिला-लेख, ताम्र-पत्र, सिक्के केवल पढे ही नही जा सकते, बल्कि उनके समय का भी लगभग पता लग सकता है। रूपान्तर भी जो क्रमश हुए है वह भी विदित होते है।

इस चार्ट से एक बात यह भी विदित होती है कि **महर्षि पाणिनि** के समय मे 'अनुस्वार' व 'विसर्ग' के चिह्न जो अशुद्ध लिखे जाते थे जिसका उन्होने उल्लेख किया है अर्थात् केवल डाट · : से काम लिया जाता था वह अशुद्ध था और यही प्रणाली दस शताब्दी तक चलती रही। सातवी शताब्दी में फिर शुद्ध रीति अर्थात् ० ⁰₀ छोटे वृत्त से जैसा कि वह लिखे जाते है, लोगो ने संशोधन करके लिखना शुरू किया। देखिये कालम न० १२ के मात्रा के आखिरी अक्षर। यह बात एक बड़े विद्वान् पडित जी ने चार्ट बन जाने पर मुझसे कही और यह भी कहा कि आपका चार्ट अवश्य शुद्ध है। ....

दुर्गाप्रसाद

रेखांकन १
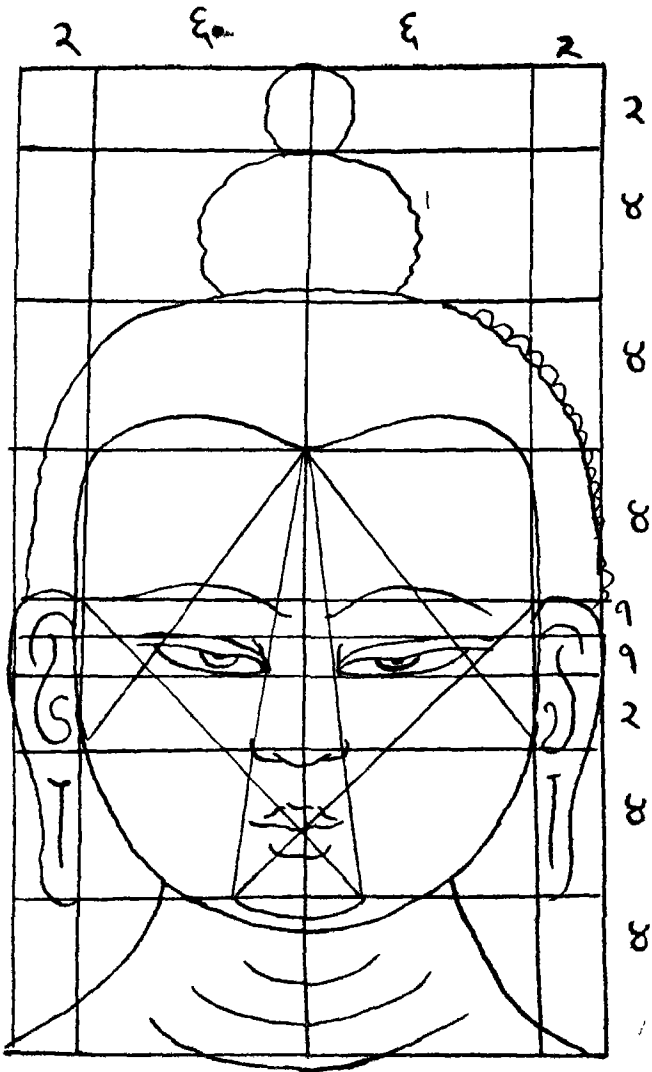
रेखांकन २
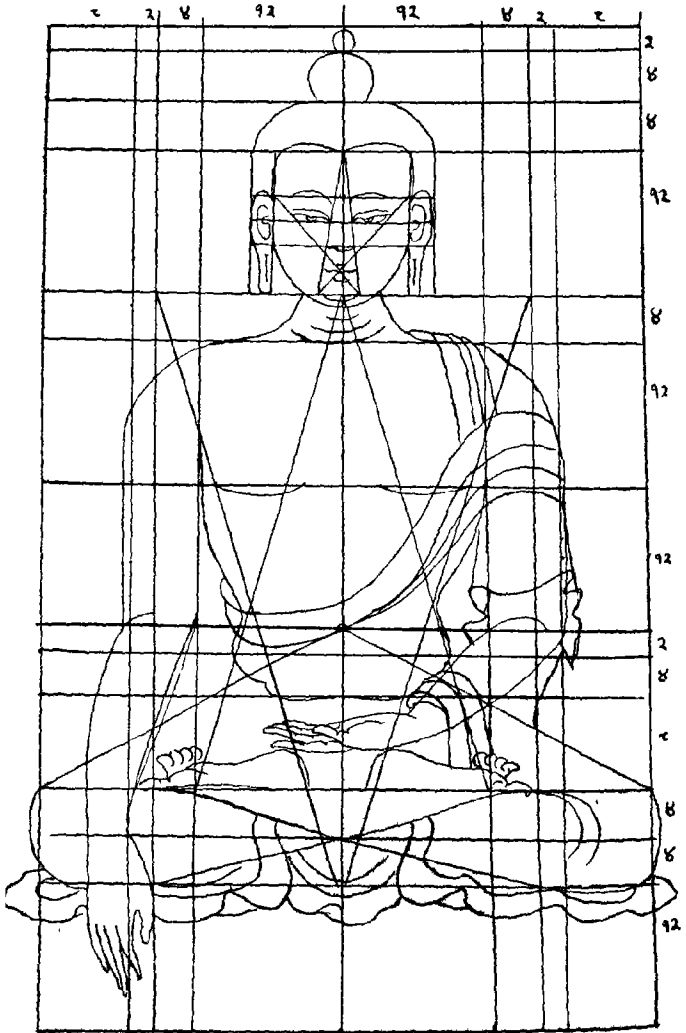
रेखांकन ३
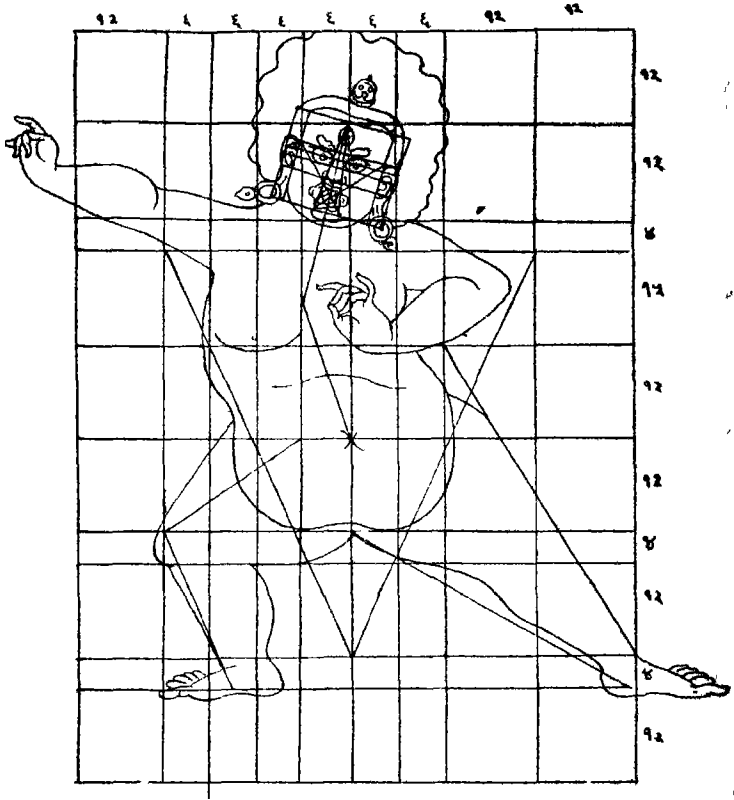
रेखांकन ४

१. देवनागरी वर्णमाला वर्तमान काल

२ ४०० ई० पूर्व के अक्षर—सोहगौरा पट्ट से

३. ३०० ई० पूर्व महाराज अशोक के समयके अक्षर—दिल्ली व कालसी के शिला-लेखों से

४ २०० ई० पूर्व के अक्षर—हाथीगुम्फा से

५. ई० पूर्व १०० के अक्षर—मथुरा मे सोडास के लेखो से

६ ई० पहिली शताब्दी के अक्षर—कुशान राजाओ के लेखो से

७. ई० दूसरी शताब्दी के अक्षर—पश्चिमी क्षत्रपो के सिक्कों से

८. ई० तीसरी शताब्दी के अक्षर—पल्लववशी शिवस्कद के लेखों से

९. ई० चौथी शताब्दी के अक्षर—गुप्तवशी राजाओ के सिक्को से

१० ई० पाँचवी शताब्दी के अक्षर—बिलसड के लेखो से

११ ई० ६०० के अक्षर—महानाम के लेखो से

१२ ई० आठवी शताब्दी के अक्षर—अप्सद के लेखो से

१३. ई० नवी शताब्दी के अक्षर—दिघवा दुबौली के लेख से

१४. ई० दसवी शताब्दी के अक्षर—पिहुवा प्रशस्ति से

१५. ई० ग्यारहवी शताब्दी के अक्षर—घोसवर के लेख से

१६ ई० बारहवी शताब्दी के अक्षर—उदयपुर प्रशस्ति और हस्तलिखित पुस्तको से

१७. ई० १३वी शताब्दी के अक्षर—भीमदेव के लेख से

१८. ई० १७वी शताब्दी के अक्षर—हस्तलिखित पुस्तक से

१९. ई० २०वी शताब्दी के छापे के तिर्छे अक्षर Type

परिशिष्ट (२)

नाम-अनुक्रमणिका

शब्द-अनुक्रमणिका (३)